शरत्चन्द्र

शुभदा

एक ऐसी नारी की व्यथा-कथा जिसकी
कर्तव्यनिष्ठा दुर्भाग्य से टकराकर चूर-चूर हो गई
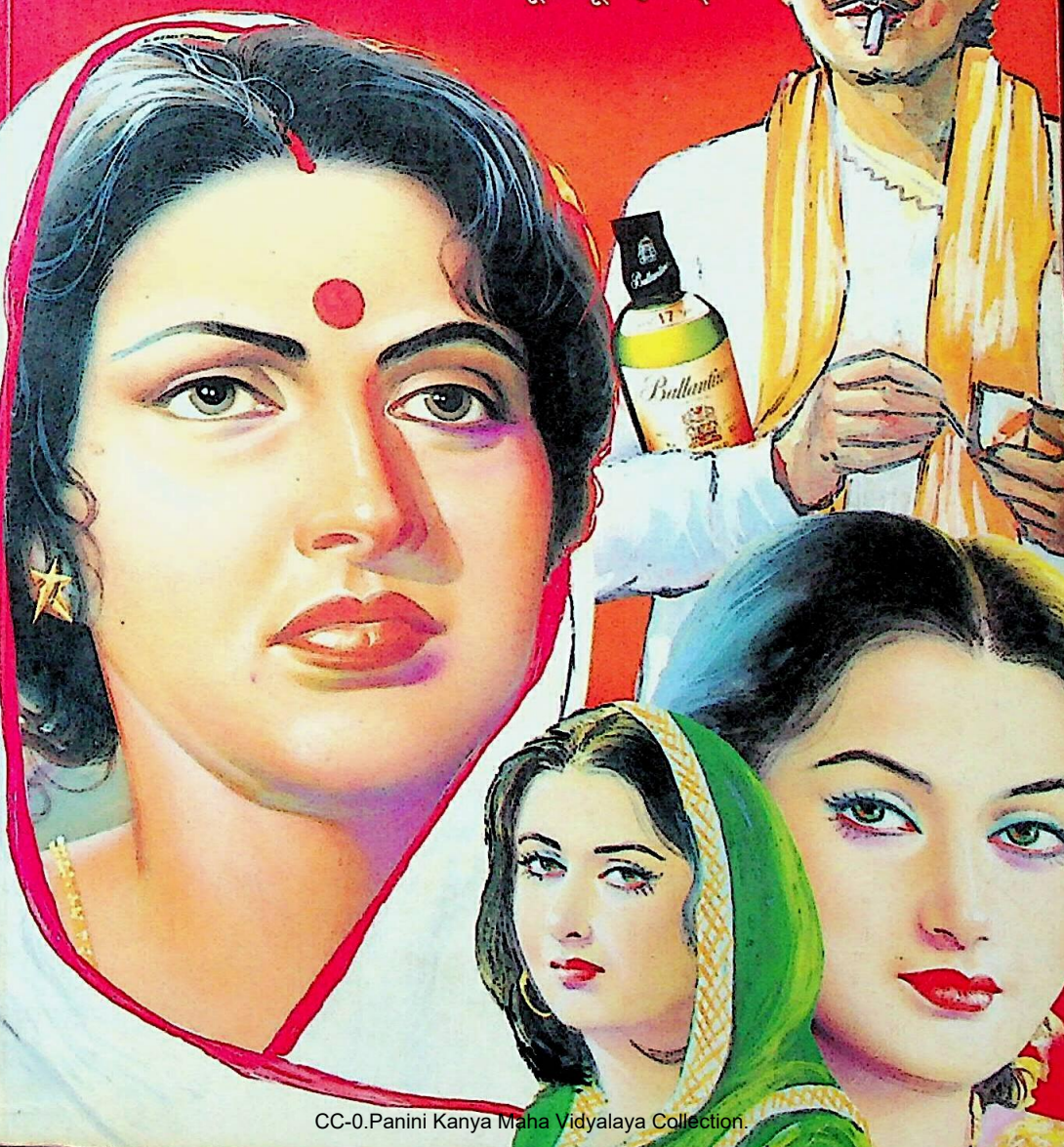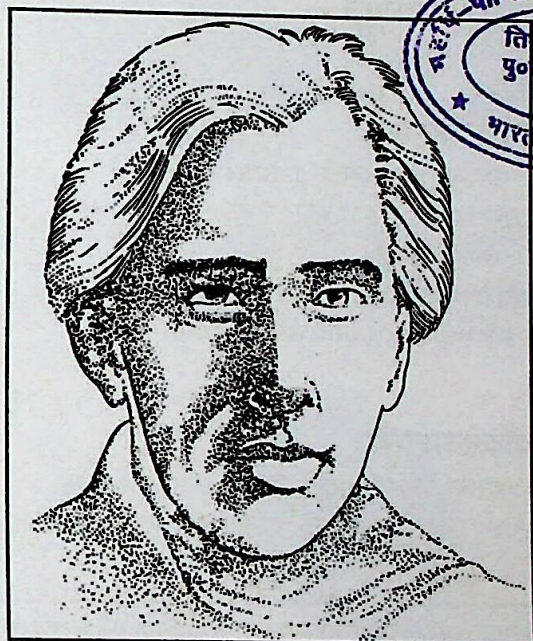
शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

(1876–1936)

भारतीय नारी को समग्र रूप से उजागर करने वाले थे शरत्। यही विशेषता उन्हें देश के अन्य साहित्यकारों से अलग करती है। बचपन में झेले कटु सत्य को इस अमर साहित्यकार ने सहज रूप में अपने शब्दों में बांधा है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का ताना-बाना बुनते समय इनके उपन्यासों का कोई भी कथानक रूमानियत से अछूता नहीं रहता। गठे कथानक और सहज भाषा के कारण ही, जब 1907 में 'बड़ी दीदी' का प्रकाशन धारावाहिक रूप में हुआ, तब पाठकों में जिज्ञासा जागी कि इसका लेखक कौन है? शरत् का नाम इसमें नहीं छपा था।

रचनाओं में विविधता ने ही इस घुमक्कड़ 'आवारा मसीहा' को सभी सीमाओं से परे का, पहले दरजे का कथाकार बना दिया है।

प्रकाशक :
मनोज पब्लिकेशन्स
761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली–110084
फोन : 27611116, 27611349, फैक्स : 27611546
मोबाइल : 9868112194
ईमेल : info@manojpublications.com
वेबसाइट : www.manojpublications.com

शोरूम :
मनोज पब्लिकेशन्स
1583-84, दरीबा कलां, चांदनी चौक, दिल्ली–110006
फोन : 23262174, 23268216, मोबाइल : 9818753569

ISBN : 978-81-310-0327-5

छठा संस्करण : 2012

₹ 60

मुद्रक :
जय माया ऑफसेट
झिलमिल इण्डस्ट्रियल एरिया, दिल्ली–110095

शुभदा : शरत्चंद्र

शुभदा

परंपरागत बंधनों, हीनता और दुर्बलताओं में जकड़ी
भारतीय नारी के मन का मार्मिक चित्रण

लेखक
शरत्चंद्र

मनोज पब्लिकेशन्स

शरत् साहित्य
अब नए कलेवर में

हिंदी के अनूठे उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों को पाठकों ने सराहा। यह प्रयोग बाजार से बिलकुल अलग हटकर था। इसका प्रकाशन करते समय हमने साहित्य की गरिमा और उसकी गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए प्रयास किया कि यह एक आम आदमी तक अपनी पहुंच बना सके। उसी का अगला कदम है—शरत् साहित्य की नए रूप में प्रस्तुति। हमें पूरा विश्वास है कि दर्द के पुजारी और घुमक्कड़ मसीहा के उपन्यासों की यह सचित्र श्रृंखला आप पाठकों को अवश्य पसंद आएगी—

- बिराज बहू
- मझली दीदी
- परिणीता
- पथ के दावेदार
- चरित्रहीन
- नव विधान
- गृहदाह
- कमला
- श्रीकांत
- बड़ी दीदी
- ब्राह्मण की बेटी
- विप्रदास
- देवदास
- अंतिम प्रश्न
- अंतिम परिचय
- काशीनाथ
- दत्ता
- शुभदा
- लेन-देन
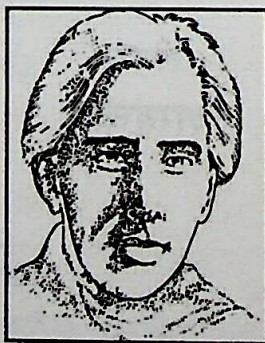
शुभदा

पहला अध्याय

कृष्णप्रिया देवी ने गंगा में गले तक पानी में खड़ी होकर, आंख और नाक बंद कर तीन डुबकियां लगाईं। इसके बाद पीतल के घड़े में पानी भरते-भरते बोलीं, 'जब नसीब फूटता है, तब इसी तरह फूटता है।'

घाट पर तीन-चार स्त्रियां और भी स्नान कर रही थीं। वे आश्चर्यचकित होकर उनके मुंह की ओर देखती रह गईं। लड़ाकू स्वभाव वाली कृष्णप्रिया से साहस करके कोई बात पूछना या उनकी किसी बात का उत्तर देना ऐरे-गैरे के लिए सरल काम नहीं था। एक बात और थी, उस समय वहां जो भी स्त्रियां नहा रही थीं, वे सभी आयु में उनसे छोटी थीं।

'विंदो, यही मैं कह रही हूं कि मनुष्य के भाग्य जब फूटते हैं, तब इसी तरह फूटते हैं।'

यह बात जिस भाग्यवती को सुनाकर कही गई थी, उसका नाम था विंध्यवासिनी। धनी परिवार में विंदो ने जन्म लिया था। धनवान घर में ही वह बहू बनी। आजकल वह मायके आई हुई थी।

विंदो ने ताड़ लिया कि यह बात मेरे ही संबंध में कहीं गई है, इसलिए साहस करके उसने कहा, 'क्यों बुआजी?'

'यही हाराण मुखर्जी की बात याद आ गई। मानो भगवान उन लोगों के पैर खींचकर उन्हें डुबा रहे हैं।'

विंध्यवासिनी ने जान लिया कि हाराण मुखर्जी की दुरावस्था की बात हो रही है। इससे वह भी दुखी हुई। लगभग एक मास हुआ, हाराण के पांच-छह वर्ष के एक लड़के की मृत्यु हो गई थी। उस घटना को याद कर उसने कहा, 'जब भगवान ने ही छीन लिया, तब उसमें किसका वश था? इसके सिवा जन्म और मृत्यु से किसका घर बचा है?'

पहले तो विंध्यवासिनी की बात कृष्णप्रिया ठीक-ठीक समझ नहीं पाई। कुछ

देर बाद वे बोलीं, 'आहा! महीना भर हुआ, उनका बच्चा भी मर गया है, लेकिन वह बात नहीं है विंदो, जिंदगी और मौत तो भगवान के हाथ की बात है मगर यह बात शायद तुमने कुछ सुनी नहीं?'

विंध्यवासिनी कुछ नहीं बोली। वह केवल उनके मुंह की ओर देखती रह गई।

कृष्णप्रिया फिर बोलीं, 'हाराण मुखर्जी का हाल शायद तुमने सुना नहीं?'

विंध्यवासिनी ने पूछा, 'उनका और क्या समाचार है?'

'आहा! वही तो बता रही थी बिटिया कि भगवान जब मारते हैं, तब इसी प्रकार मारते हैं, लेकिन उस भाग्यहीन के लिए तो मन दुखी नहीं होता। जो कुछ दुख होता है, वह सोने की प्रतिमा जैसी उसकी बहू की याद आने पर होता है। हत्भागी कबाड़ी के घर आकर एक दिन के लिए भी सुखी नहीं हुई।'

पहले की ही तरह विंदो उनका मुंह देखती रह गई। उसकी समझ में कोई विशेष बात नहीं आई, लेकिन कृष्णप्रिया के मुंह से जो इतनी बातें निकली थीं, वे निरर्थक प्रमाणित नहीं हुईं। जिस आशय से उन्होंने मूल बातों को छिपाकर डालियों और पत्तियों को हिलाया था, वह सिद्ध हो गया। घाट पर उपस्थित होने के कारण जिस किसी ने भी इस बात को सुना, उसी के विस्मय और कौतूहल की सीमा न रही। सभी के दिल में यह बात आने लगी कि हाराण मुखर्जी के विषय की कौन-सी बात हो सकती है जिसका पता उन्हें नहीं है और गांव के दूसरे लोगों को है।

कुछ देर तक सोच-विचार करने के बाद विंदो ने कहा, 'बुआजी, कौन-सी ऐसी बात है? क्या मैं भी उसे सुन सकती हूं?'

बुआ, 'सुन क्यों नहीं सकती हो? लेकिन बात कोई सुखदायक तो है नहीं, इसी से उसे कहने का मन नहीं होता। जिस समय वह याद आती है, हृदय में तीर-सा चुभने लगता है। हाय! भगवान ने इस तरह की लड़की के भाग्य में इतना कष्ट लिख रखा है।'

विंदो, 'किस बात का कष्ट?'

बुआ, 'कष्ट किस बात का है! कितनी तरह के कष्ट उसे मिल रहे हैं। कितनी तरह की मुसीबतें वह सहन कर रही है, यह मैं तुम लोगों को कहां तक समझाऊं।'

विंदो, 'तब भी तो कुछ सुनूं बुआजी?'

बुआ, 'नहीं, इस समय जाने दो इन बातों को। छिपा तो कुछ न रह सकेगा। बात सब लोगों को मालूम हो जाएगी। बहुतों को तो वह मालूम भी हो चुकी है। तुम लोगों के कानों में भी पड़े बिना वह न रह सकेगी। यह दूसरी बात है कि पहले पड़े या बाद में।'

विंदो, 'तुम्हीं क्यों नहीं बतला देती हो?'

बुआ, 'नहीं, मैं न बताऊंगी। सोचती हूं कि दूसरे की बात में पड़ना ठीक नहीं है।'

विंदो ने हंसकर कहा, 'बुआजी, हम लोग क्या तुम्हारे लिए पराये हैं? मुझे विश्वास है कि तुम मुझसे यंह बात छिपाकर न रखोगी।'

बुआ, 'गंगाजी में खड़ी होकर क्या मैं झूठ बोलूंगी?'

विंदो, 'क्या आवश्यकता है झूठ बोलने की? क्या मैं तुमसे झूठ बोलने को कह रही हूं?'

बुआ, 'तब मैं कैसे बतलाऊं? अभी तो गंगाजी में खड़ी-खड़ी मैं कह चुकी हूं कि दूसरों की बात में न पड़ूंगी।'

कलहप्रिया कृष्णा महारानी जब चली गई, तब घाट पर जितनी स्त्रियां उपस्थित थीं, वे सभी एक-दूसरे की तरफ देखने लगीं। बात किसी की समझ में न आई। उन सबके आश्चर्यचकित होने का एक कारण और भी था। आज तक उनमें से किसी के सामने ऐसा मैका कभी नहीं आया था कि कृष्णप्रिया ने कोई बात कही हो और उसे समाप्त किए बिना उन्होंने छोड़ दी हो। खैर, स्नान से निबटकर वे सब अपने-अपने घर की तरफ चलीं।

विंदो भी लौटकर घर आई। सूखा कपड़ा पहनकर वह मां के पास जाकर बैठ गई।

मां ने कहा, 'विंदो, इतनी देर तुम नहाती रही? बिटिया, देर तक जल में रहने से कहीं तबीयत खराब हो गई तो?'

विंदो, 'तो होगा क्या? चारपाई पर दो दिन पड़ी रहूंगी।'

मां ने हंसकर कहा, 'सीधी बात है, इसके लिए चिंता किस बात की!'

विंदो ने कहा, 'हाराण मुखर्जी को फिर क्या हो गया मां?'

मां, 'अब होगा क्या?'

विंदो, 'आज घाट पर कृष्णा बुआ कुछ इस प्रकार की बातें कर ही थीं कि जैसे उनके यहां पुत्र की मृत्यु के बाद कोई नई दुखदायक घटना हुई है। क्या तुमने कुछ सुना नहीं?'

मां, 'मैंने तो कुछ सुना नहीं। कृष्णा क्या कह रही थी?'

विंदो, 'वे कह रही थीं कि भगवान हाराण मुखर्जी के पैर खींचकर उन्हें डुबो रहे हैं, लेकिन उस भाग्यहीन पुरुष की अवस्था पर मुझे दुख नहीं होता, दुख होता है सोने की प्रतिमा जैसी उसकी बहू के कारण। केवल इतना ही उनके मुंह से निकला है और अधिक वे कुछ नहीं बोलीं। आग्रह करने पर उन्होंने कहा कि दूसरे की चर्चा मैं न करूंगी।'

मां, 'तो इतने दिनों के बाद महारानी के हृदय में धर्म का ज्ञान पैदा हुआ है।'

विंदो, 'मां क्या सचमुच ही तुम्हें कुछ मालूम नहीं?'

मां, 'कुछ भी नहीं।'

विंदो, 'तो आज मैं दोहपर को अवश्य उनके घर जाऊंगी?'

मां, 'क्यों? क्या यह जानने के लिए कि कौन-सी दुर्घटना उनके यहां हुई है?'

विंदो, 'हां।'

मां, 'क्या तू पागल हो गई है? जिस झमेले में पड़ने की उनकी इच्छा नहीं हुई, उसके विषय में जानने के लिए तू जाएगी?'

विंदो, 'उनकी किनकी?'

विंदो की मां ने कुछ इधर-उधर करके कहा, 'उन्हीं कृष्णप्रिया की।'

विंदो, 'क्या कृष्णप्रिया आदर्श हैं कि वे जो कुछ न करें, वह किसी को भी नहीं करना चाहिए?'

मां, 'इन सब विषयों में तो वह एक तरह से आदर्श ही है।'

विंदो, 'वे होंगी आदर्श। आज मैं तो अवश्य जाऊंगी।'

मां, 'दूसरों के मामले में न पड़ोगी तो ठीक रहोगी?'

विंदो, 'अच्छा मां, यदि एक आदमी डूब रहा है तो यह सोचकर कि दूसरे के मामले में कौन पड़े, उसे बचाने के लिए प्रयत्न न करना चाहिए?'

मां, 'लेकिन तू तो बचाने के खयाल से नहीं जा रही है विंदो?'

विंदो, 'कौन डूब रहा है, यह बात जब मालूम हो जाएगी, तब मैं क्यों नहीं जाऊंगी?'

विंदो की मां के मुंह से कुछ देर तक कोई बात नहीं निकली। बाद में उन्होंने कहा, 'बिटिया, वहां तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं। हाराण मुखर्जी भला आदमी नहीं है। तुम्हारे पिता से उनकी दुश्मनी है। उनके घर में तुम्हारा जाना क्या अच्छा लगेगा?'

विंदो, 'हाराण मुखर्जी भला आदमी नहीं है, यह मैं जानती हूं, लेकिन क्या मैं उसके पास जा रही हूं? उसकी स्त्री के पास जाने में क्या आपत्ति है? मैं अच्छी तरह समझ रही हूं कि वे लोग किसी-न-किसी मुसीबत में फंसे हुए हैं। ऐसी दशा में पास-पड़ोस में रहते हुए भी यदि हम लोग उनकी तरफ से आंखें बंद कर रखेंगे तो ससुराल में मेरा कोई मुंह न देखेगा।'

मां, 'अघोरनाथ ने क्या तुझसे यह कह रखा है कि गांव में घूम-घूमकर यह देखती रहना कि किसके घर में क्या हो रहा है और अगर तुम हाराण मुखर्जी का समाचार न जान सकोगी तो क्या वे तुम्हारा मुंह न देखेंगे? इधर मैं मां होकर जो करने के लिए तुझे रोक रही हूं, क्या तुझे मेरी बात नहीं माननी चाहिए?'

विंदो, 'नहीं मां, मुझे वहां जाना ही चाहिए।'

मां, 'जाकर तू क्या मालूम करेगी? हाराण मुखर्जी को क्या हुआ है, इसकी क्या घर में किसी को जानकारी नहीं है?'

विंदो, 'तुमने किस तरह जाना?'

मां, 'तुम्हारे बाबूजी ने मुझे बतलाया है।'

विंदो, 'तो मुझे क्यों नहीं बतलाती हो कि क्या हुआ?'

मां, 'नंदी महोदय के यहां कुछ गबन किया है, इसलिए उन्होंने हाराण मुखर्जी को पुलिस के हवाले कर दिया है।'

विंदो, 'कौन है नंदी महोदय?'

मां, 'ब्राह्मणपाड़ा के जमींदार हैं। हाराण मुखर्जी उन्हीं की रियासत में काम किया करता था।'

विंदो, 'गबन कितने रुपये का किया है?'

मां, 'दो सौ रुपये के करीब?'

विंदो, 'किसी ने जमानत नहीं की?'

मां, 'जमानत करेगा कौन? गांव में केवल तुम्हारे बाबूजी को सब लोग जानते हैं। वे ही एक ऐसे आदमी हैं, जो जमानत कर सकते हैं, लेकिन उस अभागे ने तो इन्हें दुश्मन बना रखा है। इनसे एक बार जमानत करने के लिए कहा भी, लेकिन इन्होंने स्वीकार नहीं किया।'

विंदो कुछ देर मौन भाव से सोचती रही। बाद में उसने कहा, 'जरा देर के लिए दोपहर में मैं उनके यहां जाऊंगी। जब से आई हूं, तब से एक बार भी उनकी बहू से भेंट नहीं की।'

विंदो की मां अवाक् हो उठीं। गुस्से के साथ उन्होंने कहा, 'इतनी बातें सुन लेने के बाद भी तू जाएगी?'

विंदो ने बहुत ही सरल और स्वाभाविक ढंग से सिर हिलाकर कहा, 'हां, मां!' और कुछ कह न सकी।

कुछ देर मौन रहने के बाद विंदो ने फिर कहा, 'उनके यहां मेरे जाने के कारण किसी को किसी प्रकार की हानि न होगी। मेरा तो यह कहना है मां कि पुरुषों का झगड़ा औरतों तक न पहुंचे तो भला है।'

देर होते देखकर मां ने उठते हुए कहा, 'वे सुनेंगे तो बहुत कुपित होंगे।'

विंदो, 'मैं ऐसी तरकीब से जाऊंगी कि बाबूजी को मालूम ही न हो सकेगा।'

मां, 'उन्हें मालूम हुए बिना न रह सकेगा।'

विंदो, 'तुम कह दोगी तो मालूम हो ही जाएगा।'

मां, 'लेकिन यह बात मालूम होने पर वे नाराज बहुत अधिक होंगे।'

विंदो ने अन्यमनस्क भाव से कहा, 'माता-पिता संतान से नाराज होते हैं, लेकिन उनका गुस्सा स्थाई नहीं होता। थोड़ी ही देर में उस अप्रिय बात को भूल जाते हैं, इसके लिए तुम चिंता न करो मां।'

हलुदपुर गांव जिस जिले के अंदर है, उसका जिक्र करके किसी के दिल को दुखाना अच्छा नहीं। यह कोई ऐसी जगह तो है नहीं, जहां किसी को जाने की आवश्यकता पड़ेगी। यहां देखने-सुनने योग्य कोई चीज नहीं है, फिर भी अगर किसी के दिल में जानने की प्रबल इच्छा हो तो मेरे लिखे हुए विवरण के आधार पर बहुत कुछ मालूम कर सकते हैं।

सुनने में आया है कि इस गांव में पहले कई बहुत समृद्ध परिवार थे। यह बात सच भी मालूम पड़ती है। एक तो यह गांव गंगाजी के तट पर बसा हुआ है, दूसरे यहां शिवजी के दो-चार बहुत प्राचीन मंदिर हैं। यह मंदिर टूटे-फूटे हैं और बस्ती से बिलकुल बाहर हैं। बेंत के वन तथा कुश की झाड़ियों में प्राय: अपना आधा भाग छिपाए हुए, देखने में ऐसे जान पड़ते हैं, मानो ये मौनव्रतधारी योगी हैं। वहां दो-एक पक्के तालाब भी हैं, जहां गाय-बैल घास चरते रहते हैं।

इस गांव की दशा सदा ऐसी ही नहीं रही, लेकिन आज यहां केवल ब्राह्मणों और कायस्थों के दस-बीस घर हैं और उन्हीं के आश्रय में शूद्रों के भी पचास-साठ झोंपड़े हैं। गांव के चारों ओर सिर्फ झाड़ियां और जंगल हैं। बीच-बीच में दो-एक पगडंडियां भी हैं। श्रीयुत हाराणचंद्र मुखर्जी का घर भी इसी गांव में है। यह घर पुराना है, ईंटों का बना हुआ है। दो कमरे ऊपर के हिस्से में और चार-पांच कमरे नीचे हैं। घर के चारों तरफ बांस की कोठरियां हैं, दो-चार केले के पेड़ लगे हुए हैं, दो बेल के पेड़ हैं, दो आम के पेड़ हैं और एक कैंथ का पेड़ है। यही मुखर्जी का निवास-स्थान है और यही उनकी संपूर्ण संपत्ति है।

हलुदपुर से आधा कोस की दूरी पर ब्राह्मणपाड़ा के जमींदार नंदी महोदय के यहां हाराणचंद्र नौकर थे। बीस रुपये माहवार तनख्वाह पाते थे। इससे उनके घर का खर्च आसानी से चल जाता था, लेकिन अब नहीं चलता। सदा ही हाथ तंग रहा करता, सदा ही किसी-न-किसी वस्तु की जरूरत बनी रहती थी।

हाराणचंद्र के घर में खाने वाले भी कई प्राणी थे। उनकी स्त्री, दो पुत्र, दो कन्याएं थीं और एक विधवा बहन थी। कहने का मतलब यह है कि आमतौर पर बंगाली परिवार में जितने लोग रहते हैं, वे सब थे, लेकिन पहले जब वे महीने के अंत में बीस रुपये ले जाकर स्त्री के हाथ पर रख देते, तब आजकल की तरह किसी को यह जानने का मौका न मिलता कि उनके परिवार का खर्च मुश्किल से चलता है। रोज ही किसी-न-किसी चीज की कमी बनी रहती है। उनकी स्त्री

और बड़ी बहन मिलकर गृहस्थी का काम-काज बड़े हिसाब से चलाती थीं, लेकिन अब हाराण बाबू ऐसा नहीं करते। इससे उनकी गृहस्थी की कमी दूर नहीं होती। आज चावल नहीं है तो कल दाल नहीं है। परसों लकड़ी के अभाव के कारण चूल्हा नहीं जल सका। इस तरह आज यह नहीं है, आज वह नहीं है, यह सुनते-सुनते मुखर्जी महाराज की तबीयत उकता गई और उन्होंने अनुचित उपाय का सहारा लेकर आर्थिक संकट से मुक्ति प्राप्त करने का निश्चय किया।

तहसील-वसूली का काम हाराणचंद्र के हाथ में था। इससे सरकारी रुपयों में से थोड़ा-थोड़ा निकालकर वे अपने काम में लगाने लगे। जमींदार के वे विश्वासपात्र व्यक्ति थे। इससे कुछ दिनों तक उन पर कोई शंका न कर सका, लेकिन सदा ही तो किसी की आंखों में धूल झोंकी नहीं जा सकती। धीरे-धीरे उनके प्रति अविश्वास का भाव उत्पन्न होने लगा। आखिर में वह भाव इतना प्रबल हो उठा कि नंदी महोदय का उन पर से विश्वास उठ गया और उन्होंने उनके कागज-पत्र मंगवाकर सारा हिसाब मिलाया। हिसाब में गलतियों की भरमार थी। गबन के भी काफी तथ्य मिल गए। इस बीच में हाराण बाबू बहुत-सा रुपये खा चुके थे। जमींदार श्री भगवान नंदी बड़े ही दयालु और कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। वे किसी के साथ यथासंभव कठोर व्यवहार नहीं करते थे। हाराणचंद्र को बुलाकर उन्होंने पूछा, 'तुमने कितने रुपये खा डाले हैं?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'तुम्हें मालूम ही नहीं? हिसाब-किताब देखने से मालूम पड़ता है कि तीन हजार से अधिक रुपये खा गए हो, क्या किया उन सब रुपयों का?'

'खर्च कर दिया।'

'खर्च तो कर डाले तुमने, लेकिन चोरी क्यों की?'

'बीस रुपये से निर्वाह नहीं होता था, इससे चोरी करनी पड़ी?'

'लेकिन इन्हीं बीस रुपयों से आज तक तुम्हारा निर्वाह होता आया था, अब कैसे नहीं होता? कोई ऐसा कारण तो मेरी समझ में नहीं आ रहा है। इसके सिवा यदि तुम्हें आर्थिक तंगी थी तो मुझसे कहना चाहिए था।'

'कहने पर क्या आप मुझे अधिक रुपये दे देते?'

'मुमकिन था कि मैं तुम्हारी तनख़्वाह कुछ बढ़ा देता, लेकिन अब उस बात को जाने दो। तुमने जितने रुपये चुराए हैं, उनका आधा भी दे सको तो मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूं।'

'रुपये कहां से दे सकता हूं? मेरे पास तो कुछ है ही नहीं।'

'अगर तुम्हारे पास कुछ जमीन-जायदाद हो तो उसे ही बेचकर तुम रुपया दे दो।'

'जो एक झोंपड़ी है रहने के लिए, उसे ही बेचकर जो कुछ मिले, वसूल कर लीजिए।'

'उस दशा में तुम्हारे स्त्री-बच्चे रहेंगे कहां?'

'पेड़ के नीचे रह लेंगे।'

भगवान बाबू बहुत देर तक हाराणचंद्र के मुंह की तरफ देखते रहे। बाद में उन्होंने कहा, 'तुम्हारी आंखें लाल क्यों हैं?'

'मुझे नहीं मालूम?'

अब उन्होंने हाराणचंद्र को विदा कर दिया और कर्मचारी को बुलाकर उन्होंने कहा, 'क्या तुम हाराण मुखर्जी के घर का हाल मालूम कर सकते हो?'

'किस तरह का हाल आप जानना चाहते हैं?'

'यही की उनकी पारिवारिक दशा कैसी है, कुछ संपत्ति आदि उनके पास है या नहीं और वे किसी के ऋणी हैं या नहीं?'

उस कर्मचारी को हाराण बाबू का बहुत-सा हाल मालूम था। इससे उसने कहा, 'जहां तक मैं जानता हूं, मुखर्जी महाशय की दशा अच्छी नहीं है। संपत्ति भी शायद उनके पास कुछ नहीं है, लेकिन उन पर किसी का कुछ ऋण वगैरह है या नहीं, यह बात मैं नहीं बतला सकता।'

'अच्छी तरह पता करके मुझे बतलाना।'

दो दिन के बाद उस कर्मचारी ने बाबू साहब को बतलाया कि मुखर्जी महाशय की आर्थिक दशा अत्यंत ही शोचनीय हो गई है। बाकी चीजों के विषय में मैंने जो कुछ बतलाया था, वह सब बिलकुल सत्य है।

भगवान बाबू ने पूछा, 'मुखर्जी क्या कुछ नशा आदि किया करते हैं।'

'जी हां, वे गांजा पीते हैं।'

'यही कारण है कि उस दिन उनकी आंखें लाल-लाल दिखाई दे रही थीं। क्या कोई अमानुषिक दोष भी उनमें है?'

कर्मचारी ने नीचे की ओर मुंह करके कहा, 'सुनता तो हूं।'

'तब तुम एक काम करो। कल अदालत में जाकर उसके नाम गबन का दावा दायर कर दो। साथ ही पुलिस में इसकी खबर दे दो।'

अंत में परिणाम यह हुआ कि हाराण महाशय को पुलिस के द्वारा गिरफ्तार होकर हवालात में जाना पड़ा।

समीप होने पर भी हलुदपुर में यह बात प्रायः कोई भी न जान सका, लेकिन विंदो के पिता भवतारण गांगुली को यह मालूम था। शायद नंदी महोदय ने ही इस घटना की सूचना दी थी। वे एक प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्ति थे। यदि वे चाहते तो हाराणचंद्र को उसी समय हवालात से छुड़ा सकते थे, लेकिन उन्होंने

कुछ नहीं किया। हाराणचंद्र के और कोई सहायक या साधन नहीं था, इससे वे हवालात में पड़े-पड़े सड़ते रहे। हां, एक बात है, कलह-प्रिया कृष्णप्रिया को यह बात कैसे मालूम हो गई? इस प्रश्न का उत्तर तो केवल वे दे सकती थीं।

वैशाख की दोपहर है। आकाश पर काले-काले बादल छाये हुए हैं, इससे अंधेरा हो गया है। ऐसे समय में हाराण बाबू के रसोईघर के बरामदे में उनकी स्त्री और ज्येष्ठ कन्या ललना एक से दूसरी ओर मुंह किए हुई बैठी हैं। उन दोनों का मुंह सूखा हुआ है। आज एकादशी है, ललना बाल-विधवा है। इससे उसके भोजन का कोई प्रश्न ही नहीं है और उसकी माता? उन्होंने भी अभी तक मुंह में कुछ नहीं डाला।

ललना ने कहा, 'मां, शायद आज भी बाबूजी नहीं आएंगे। बादल बराबर चढ़ते आ रहे हैं, अगर कहीं वर्षा होने लगी तो रसोईघर में पैर रखने तक की जगह न रह जाएगी। तुम कुछ खा क्यों नहीं लेतीं।'

ललना की मां ने कहा, 'तनिक और देख लूं, तीन दिन से वे नहीं आए, संभव है आ ही जाएं।'

'मां, बाबूजी ऐसा तो और कभी नहीं किया करते थे। तीन दिन से वे नहीं आए, अगर आज भी न आएं तो?'

'तब क्या कर सकती हूं? भगवान ही हैं...।'

एकादशी के दिन रासमणि (हाराण बाबू की बड़ी बहन) विलंब से स्नान-पूजा किया करती थीं, जिस समय मां-बेटी में ये बातें हो रही थीं, उसी वक्त नित्य क्रिया से छुट्टी पाकर माला फेरती-फेरती वे भी आ पहुंची और चिल्लाकर बोलीं, 'बहू, अभी तक खाया नहीं तुमने?'

बहू ने खिन्न भाव से कहा, 'तनिक और देख लूं।'

'देख लो मेरा सिर! और देखकर क्या करोगी? वह बदमाश क्या आज इस वक्त लौटकर वापस घर आएगा? गांजे के नशे में चूर होकर वह किसी बदजात औरत के घर पड़ा होगा।'

व्रत के दिन रासमणि के स्वभाव में बहुत कुछ चिड़चिड़ापन आ जाया करता था। उनकी उपर्युक्त बात के उत्तर में जब किसी के मुंह से कुछ न निकला, तब वे और कुपित हो उठीं और बोलीं, 'वह मुंहजला कब मरेगा कि हमारी छाती की आग बुझेगी।'

इस बार ललना न सह सकी। दुखित भाव से बोली, 'बुआजी एकादशी के दिन शाप क्यों दे रही हो?'

'एकादशी के दिन शाप क्यों दे रही हो' यह बात रासमणि के हृदय में जाकर

चुभ गई। भाई के संबंध में इस तरह की अशुभ बात मुंह से निकल जाने के कारण वे मन-ही-मन बहुत दुखी हुईं, साथ ही उन्होंने लज्जा का भी कम अनुभव नहीं किया, लेकिन अब कल की छोकरी ललना इस तरह की बात उन्हें कह गई, इससे उनकी क्रोधाग्नि अधिक वेग से भभक उठी।

उन्होंने क्रोधित होकर कहा, 'अभी कल तू मेरे सामने पैदा हुई है, आज मुझे एकादशी-द्वादशी सिखाने आई है! बूढ़ी हो गई मैं, इतना भी नहीं जानती हूं? तेरा ही बाप है वह, मेरा कुछ नहीं है क्या।' यह सब कहते-कहते रासमणि की आंखें भर आईं। दुखी भाव से वे कहने लगीं, 'भैया मेरा तीन दिन से घर नहीं आया। उसके लिए मेरा हृदय कितना दुखी हो उठा है, यह मेरे इष्ट देवता ही जान सकते हैं।' इतना कहकर रासमणि ने आंचल से दो बूंद आंसू पोंछ डाले और वे कहने लगीं, 'मेरी बुढ़ापे की अवस्था है, क्रोध में आती हूं तो कुछ कह बैठती हूं, लेकिन तुम लोगों से जरा भी नहीं सहा जाता। आंख में उंगली घुसेड़कर भूल दिखलाने तथा चार बातें सुनाने के लिए सदा तैयार रहा करती हो। कोई मतलब नहीं भैया, मैं तुम लोगों की बातों में न पड़ूंगी, लेकिन खाए बिना बहू सूख-सूखकर कांटा होती जा रही है, इसीलिए दो बात मुंह से निकालनी ही पड़ती हैं।'

ललना को बहुत ही दुख हुआ। उसे यह नहीं मालूम था कि मेरी इस एक बात का इतना गंभीर अर्थ निकाला जा सकता है और इसके कारण अश्रुपात भी हो सकता है। उसने कहा, 'बुआजी, मुझसे भूल हो गई, अब इस तरह की बात कभी नहीं कहूंगी।'

वास्तव में ललना ने बुआ को इतनी तीखी बात कहकर अनुचित कार्य किया था। उसकी माता ने कहा, 'बिटिया, अब तुम बड़ी हो गई हो, तुम्हें सोच-समझकर हर एक बात मुंह से निकालनी चाहिए।'

इस तरह की बातचीत के बाद आग्रह करने पर ललना की माता ने कुछ खाना खाया। उसके बाद ही अपनी पांच वर्ष की कन्या प्रमिला का हाथ पकड़े हुए विंध्यवासिनी ने हाराण बाबू के घर में प्रवेश किया।

सामने ही रासमणि खड़ी थी। विंध्यवासिनी की ओर दृष्टि जाते ही उन्होंने कहा, 'विंदो तो भाई, अब इस ओर कभी दिखाई ही नहीं देती।'

विंदो दबने वाली स्त्री नहीं थी। हंसकर वह भी झट बोल उठी, 'तुम्हीं कहां रोज खड़ी रहती हो दीदी?'

'मुझे क्या घर से पैर निकालने का अवसर मिलता है बहन? छोटे लड़के की बीमारी के कारण एक क्षण के लिए भी घर से निकलने का समय नहीं मिलता, चाहे काम कितना ही जरूरी क्यों न हो।'

'उसे क्या हुआ है?'

'बुखार है, तिल्ली बढ़ गई, पेट में रोग हो गए हैं? कुछ भी बाकी नहीं है।'

'बहू कहां गई?'

'अभी ही उन्होंने जरा-सा खाया है, उस कमरे में लड़के के पास जाकर बैठी है।'

'खाने में इतनी देर कर दी है?'

'हाराण की राह देख रही थी। वह तीन दिन से घर नहीं आया। उन्होंने सोचा कि संभव है आता ही हो, इसलिए इतनी देरी हो गई।'

विंदो वहां रुकी नहीं। वह सीधे उस कमरे में गई, जिसमें बहू, अपने रोगग्रस्त छोटे लड़के माधव के सिरहाने बैठी हुई उसे कहानी सुना रही थी।

माधव हाराणचंद्र मुखर्जी का छोटा लड़का है। उसकी आयु अभी आठ वर्ष की है। एक वर्ष हुआ, वह मलेरिया ज्वर से पीड़ित हुआ था। तब से इस रोग से एक दिन के लिए भी उसका पिंड नहीं छूट सका है। इधर उसकी तिल्ली भी बढ़ गई है। इससे अत्यधिक निर्बलता के कारण वह एक तरह से चारपाई से लग गया है। रोग उसका वैसे कुछ असाध्य नहीं है। यदि नियमित रूप से किसी अनुभवी चिकित्सक के परामर्श के अनुसार उसकी चिकित्सा की जाती तो वह अब तक कभी का ठीक हो गया होता, लेकिन अर्थाभाव के कारण उसकी चिकित्सा की कोई भी उचित व्यवस्था नहीं है। साधारण ढंग की औषधियों, चूर्णों तथा कुनैन की मदद से वह किसी तरह भी रोगमुक्त नहीं हो पाया।

अपने शांत, स्निग्ध और उज्ज्वल नेत्रों की दृष्टि माता के मुख पर स्थापित करके माधव ने कहा, 'मां! बाबूजी तीन-चार दिन से मुझे देखने के लिए क्यों नहीं आए?'

'वे यहां नहीं हैं।'

'कहां गए हैं मां?'

मां ने जरा-सा इधर-उधर करके कहा, 'तुम्हारी दवा लेने गए हैं।'

बालक प्रसन्न हो उठा। उसने कहा, 'मीठी दवा लाते तो अच्छा था मां। कड़वी दवा मुझसे नहीं खाई जाती। देखो मां, अच्छा होकर पहले की तरह फिर घूमने-फिरने की मेरी बड़ी इच्छा होती है।' जरा देर रुकने के बाद वह फिर बोल उठा, 'हां, मैं अच्छा हो जाऊंगा न?'

मां के नेत्रों में जल आ रहा था। मन-ही-मन वे कह रही थीं, 'विधाता के मन में क्या है, यह तो वे ही जानते हैं?' प्रकट रूप से वे कुछ कहने को ही थीं, इतने में तेजी से पैर बढ़ाती हुई विंदो पास आ गई और बोली, 'क्यों नहीं हो जाओगे बेटा? मैं पास रहकर तुम्हें अच्छा कर दूंगी।'

अभी तक माधव या उसकी माता ने यह नहीं देखा था कि विंदो आ रही है, इससे वे दोनों ही चकित हो उठे।

विंदो चारपाई पर बैठ गई। उसने कहा, 'शुभदा, भोजन कर लिया है तुमने?'

हाराणचंद्र की स्त्री का नाम था शुभदा। विंदो उम्र में उससे कुछ छोटी थी, लेकिन फिर भी बातचीत के मौके पर वह उसका नाम लेकर ही पुकारा करती थी। शुभदा ने सिर हिलाकर सूचित किया, 'हां।'

'तुम्हारी बड़ी लड़की कहां है?'

'शायद ऊपर है।'

'तनिक उसे बुलाओ तो।' यह कहकर विंदो स्वयं पुकारने लगी, 'ललना, ओ ललना!'

ऊपर से ही ललना बोली, 'क्या है?'

'जरा नीचे तो आओ बिटिया।'

ललना के आने पर विंदो ने अपनी कन्या को उसे देकर कहा, 'प्रमिला को लेकर थोड़ी देर तुम अपने छोटे भाई के पास बैठो तो बिटिया! बहुत दिनों के बाद तुम्हारी मां से भेट हुई है, उस कमरे में जाकर थोड़ी देर मैं इनसे बातें कर लूं तो आती हूं।'

प्रमिला को ललना को देकर विंदो शुभदा का हाथ पकड़े हुए ऊपर जाकर बैठी। कमरे का दरवाजा उसने बंद कर लिया। तब उसने कहा, 'हाराण भाई आज कितने दिन से घर पर नहीं आए?'

'तीन दिन से।'

'आए क्यों नहीं? कुछ मालूम है तुम्हें?'

विंध्यवासिनी जिस प्रकार से बातें कर रही थी, उससे शुभदा भयभीत हो उठी। शायद कुछ कह बैठे। इधर विंध्यवासिनी मौन भाव से बैठी हुई कुछ सोचने लगी। शुभदा पसीने से तर हो गई।

बड़ी देर के बाद विंदो ने कहा, 'शुभदा, ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो इच्छा करने पर भी मधुर भाव से नहीं कही जा सकती, जानती हो न!'

सूखे हुए मुख से शुभदा ने कहा, 'जानती हूं, क्यों?'

'इधर तीन-चार दिन से हाराण भैया घर नहीं आए। मान लो कि उसके संबंध में अगर कोई ऐसी बात बतलानी पड़े जो कि अशुभ हो?'

शुभदा की सारी देह में बिजली-सी दौड़ गई। कांपकर बोली, 'शायद वे अब जिंदा नहीं हैं?'

'इतना कांप क्यों रही है? कौन कहता है कि वे जीवित नहीं हैं?'

'जीवित हैं?'

'राम कहो। जीवित क्यों नहीं हैं? जीवित हैं और भले-चंगे हैं।'

सब तरह से ठीक हैं, यह सुनने पर भी शुभदा कुछ कह न सकी। बहुत देर के बाद मुरझाए हुए मुख से उसने धीरे-धीरे पूछा, 'तब हुआ क्या है?'

'यही बतलाने तो मैं आई हूं, किंतु तू जब इस तरह व्याकुल हो उठेगी, तब मैं कैसे कोई बात बलता सकूंगी?'

शुभदा ने एक लंबी सांस भरी। उसने कहा, 'अच्छी बात है, मैं घबराऊंगी नहीं। क्या हुआ है, बतलाओ तो?'

'रुपये खा गए हैं, इसलिए नंदी महोदय ने हवालात भिजवा दिया है।'

'हवालात भिजवा दिया है।' शुभदा का चेहरा फक हो गया। उसने पूछा, 'अब क्या होगा?'

'होगा क्या? उन्हें छुड़ाकर ले आना होगा।'

'क्या यह संभव है?'

'संभव क्यों नहीं है? क्या हवालात में जाते ही कोई कैद हो जाता है?'

बड़ी देर चुप रहने के बाद शुभदा ने कहा, 'विंदो, एक बार मैं तुम्हारे बाबूजी के पास जाऊंगी।'

विंदो ने सिर हिलाया। वह जानती थी कि शुभदा को देखने पर पत्थर पिघल जाएगा, लेकिन भवतारण गांगुली न पिघलेंगे। इसलिए अपनी असहमति प्रकट करती हुई बोली कि उनके पास जाकर तुम करोगी क्या?

'मेरे तो कोई है नहीं, अगर वे दया करके कुछ उपाय कर दें तो...?'

'जिसका कोई नहीं होता, उसकी रक्षा भगवान करते हैं, हाराण भैया और मेरे बाबूजी में सदा से शत्रुता का भाव था। ऐसी अवस्था में उनके पास जाने में कोई लाभ नहीं है।'

'तब क्या उपाय है?'

'उपाय मैं कर दूंगी। अगर कुछ करना नहीं है तो क्या मैं बेकार यह दुखमय समाचार ही सुनाने आई हूं? लेकिन मैं कुछ कहूंगी, वह क्या तुम कर सकोगी?'

'जरूर करूंगी।'

'चाहे कितना भी कठिन काम हो?'

शुभदा ने दृढ़ स्वर में कहा, 'हां।'

'तो सुनो। वे दो-तीन सौ रुपये खा गए हैं, इसीलिए नंदी बाबू ने उन पर दावा कर दिया है।'

'दो-तीन सौ रुपये!' शुभदा को भ्रम हुआ। उसने कहा, 'इतने रुपये क्या कोई एक साथ खा सकता है? इसके सिवा यदि वे रुपये चुरा भी लाते तो रखते कहां? नहीं विंदो, इतने रुपये उन्होंने कभी नहीं चुराए।'

'नहीं चुराए तो अच्छा ही है, लेकिन अब तो इस तरह सोच-विचार करने

से काम न बनेगा। इस समय केवल एक उपाय है। इतने रुपये नंदी महोदय को देकर उनसे अनुनय-विनय कि जाए तो संभव है कि वे मामला उठा लें।'

'लेकिन यह कैसे हो सकता है, इतने रुपये मिलेंगे कहां?'

'रुपयों के लिए भी मैं एक उपाय बताती हूं। बहू, यह लज्जा प्रदर्शित करने का समय नहीं है। मैं अपने हाथ के दोनों सोने के कड़े तुम्हें दे रही हूं। इन्हें लेकर आज रात में तुम स्वयं भगवान बाबू के पास जाओ। उनसे मुलाकात होने पर जो उचित हो, वह करना।'

शुभदा ने आश्यर्च से कहा, 'तुम्हारे हाथ के कड़े ले जाऊं!'

'हां, मैं अपने कड़े तुम्हें दे रही हूं, तुम इन्हें निःसंकोच ले जाओ। इन दोनों कड़ों का दाम तीन-चार सौ रुपये होगा। उन्हें देकर तुम उनसे अनुनय-विनय करना। संभव है कि वे हाराण भैया को छोड़ दें।'

'किंतु विंदो...!'

'किंतु क्या? पहले तुम अपने स्वामी को बचाओ, तब फिर किंतु-परंतु करना। यह क्या संकोच करने का समय है बहू? मेरे रुपये वापस करने की तुम्हें कुछ चिंता ही न करनी चाहिए। तुम्हारा लड़का बड़ा होने पर ये रुपये अदा कर देगा?'

'क्या आज ही जाऊं?'

'हां, आज ही।'

'जाऊं किसके साथ?'

'क्या कोई ऐसा विश्वासपात्र आदमी है?'

'कोई नहीं।'

'तो फिर अकेली ही जाओ। अकेली जाना और भी अच्छा है, क्योंकि जितने आदमी सुनेंगे, उतनी तरह की बातें होंगी।'

'अच्छी बात है, मैं आज ही जाऊंगी।'

'हां, तुम आज ही जाना। सांझ हो जाने के बाद एक मैली-सी धोती पहन लेना ओर मुंह ढक लेना, तब जाना। मैं कल इसी समय आऊंगी।'

विंदो के जाते वक्त शुभदा की आंखों से आंसुओं की बूंदें टपकने लगीं। विंदो ने स्नेहपूर्वक उन्हें पोंछ दिया। बाद में वह बोली, 'भगवान की कृपा होगी तो सारा संकट कट जाएगा। अगर यह उपाय समुचित उपयोगी न सिद्ध हुआ तो दूसरा उपाय बताऊंगी, तुम चिंता मत करो।'

आंचल के छोर से खोलकर विंदो ने पांच रुपये शुभदा के हाथ पर रख दिए। उसने कहा, 'बहू, समझ लो कि हम दोनों सगी बहने हैं। मुझसे किसी तरह की लज्जा करने की आवश्यकता नहीं। ये रुपये तुम ले लो, लड़के के वास्ते कोई चीज खरीद देना।'

नीचे आकर अपनी कन्या प्रमिला का हाथ पकड़कर विंदो ने कहा, 'देर बहुत हो गई। चलो बिटिया घर चलें।' अंत में विधवा ललना के ऊपर स्नहेपूर्ण करुण दृष्टि डालकर वह घर से चल दी।

दोपहरी में हवा की गति बहुत तेज हो उठी थी। उसके झकोरों से टक्कर लेने में असमर्थ होने के कारण मेघ छिन्न-भिन्न हो उठे थे। शाम होते-होते एक के बाद सभी महासमारोह में बाजा बजाते हुए आकाश में एकत्रित होने लगे। लोगों ने सोचा कि आज रात को जरूर वर्षा होगी। गर्मी कम होगी, मन शांत होगा। यह वर्षा सभी के लिए मंगलकारी जरूर थी, पर शुभदा के लिए बहुत ही प्रतिकूल थी। एक तो हलुदपुर की झाड़ियों के बीच से होकर उसे जाना था, दूसरे बादल उमड़-घुमड़ रहे थे, तो भी उसे यात्रा करनी पड़ी। दोनों कड़ों को उसने साड़ी के छोर में बांध लिया। बाद में एक बिछौने की चादर से देह को अच्छ्री तरह ढककर वह निकल पड़ी। पहले वह कभी ब्राह्मणपाड़ा गई नहीं थी। उसने यह सुना जरूर था कि सीधे उत्तर की तरफ आधा कोस चलने के बाद पक्की सड़क मिलती है और उससे होकर थोड़ी ही दूर चलने पर ब्राह्मणपाड़ा मिलता है। इतनी जानकारी के आधार पर शुभदा घर से चल पड़ी। उसने सोचा कि ब्राह्मणपाड़ा पहुंच जाने पर जमींदार की कोठी मिलने में किसी तरह की दिक्कत न होगी। उसने यह सुन रखा था कि गांव में घुसते ही नंदी महोदय की ऊंची अट्टालिका दिखाई पड़ती है। इससे वह और भी बहुत कुछ निश्चिंत थी, लेकिन हलुदपुर की अंधकारमय पगडंडी को पार करके पक्की सड़क पर पहुंचने में भी उसे अत्यधिक कष्ट सहन करना पड़ा। उसके जरा ही दूर बढ़ने पर अंधकार प्रगाढ़ हो उठा और बूंदें भी गिरने लगीं, लेकिन शुभदा साहसपूर्वक बढ़ती ही जा रही थी। थोड़ी ही देर में जब बूंदें मूसलाधार वर्षा के रूप में परिणत हो गई तब वह वृक्ष के नीचे खड़ी हो गई।

रास्ता चलना अब असंभव था। अंधकार के कारण हाथ-भर दूर की भी चीजें दिखाई नहीं दे रही थीं। जोरों की वर्षा हो रही थी, साथ-ही-साथ रह-रहकर बिजली चमकती और बादल भी गड़गड़ा जाते। इससे शुभदा की अंतरात्मा कांप उठी। वृक्ष की छाया में शुभदा अधिक समय तक नहीं रह सकी। उसने देखा कि चारों तरफ से वन के पशु दौड़ते हुए इस वृक्ष की छाया का आश्रय लेने के लिए आ रहे हैं और वहां मनुष्य की मूर्ति देखकर भय के मारे चिल्लाते हुए भाग जाते हैं। इससे शुभदा के मन में एकाएक यह बात आई कि कहीं आश्रय की इच्छा से चोर-डाकू न यहां आ टपकें। उस दशा में तो परिस्थिति बहुत ही भंयावह हो उठेगी। प्राणों के लिए शुभदा को इतना भय नहीं था, भय था उसे सोने के दोनों

कड़ों के लिए। वे कड़े उसके प्राणों से भी अधिक मूल्यवान थे। उन्हीं को लेकर वह स्वामी को छुड़ाने जा रही थी, इसलिए वे ही उसके आशा-भरोसा सब कुछ थे। बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद शंकित होकर शुभदा उस पेड़ की छाया से हट गई। वह फिर आगे की तरफ बढ़ने लगी। सारा शरीर कीचड़ से लथपथ हो गया। कांटेदार पौधों के कारण हाथ-पैर क्षत-विक्षत हो गए। पानी जैसे रुकने का नाम नहीं ले रहा था। बादल निरंतर गरजते जा रहे थे। वह बराबर आगे बढ़ती जा रही है। कहां, किस ओर जा रही है, पता नहीं चल रहा था। झाड़-झंखाड़ों को हटाती हुई वह आगे बढ़ रही थी। काफी देर बाद उसे सड़क दिखाई दी। दुगने उत्साह से चलते-चलते शुभदा ने देखा कि वह सचमुच पक्की सड़क पर आ पहुंची थी, लेकिन अब एक दूसरी चिंता ने उसे आ घेरा। जब तक उसे रास्ता नहीं मिल सका था, तब तक वह केवल इसी चिंता में थी कि मैं किस तरह निर्दिष्ट स्थान तक पहुंच पाऊंगी, परंतु अब कार्य की चिंता से अधीर हो उठी। शुभदा के मन में आया—इतनी रात में किस तरह मुलाकात हो सकेगी बाबू साहब से? मुलाकात होने पर भी क्या कार्य सिद्ध हो जाएगा। कार्य सिद्ध हो या न हो, ऐसे विकराल समय में मैं कैसे लौटकर आऊंगी? इसी तरह की कितनी ही बातें सोचते-सोचते शुभदा ने ब्राह्मणपाड़ा ग्राम में प्रवेश किया। थोड़ी दूर ही चलने पर वह एक विशाल अट्टालिका के पास पहुंच गई। उस अट्टालिका से मिला हुआ एक बगीचा था जिसके चारों तरफ तार का घेरा था। शुभदा ने समझ लिया कि यही नंदी महोदय का भवन है। इससे वह सोचने लगी कि अब सुविशाल भवन में प्रवेश किस प्रकार करूं? अगर प्रवेश कर भी पाऊं तो इतनी रात में उनसे मुलाकात कैसे कर सकूंगी? शुभदा रोने लगी। परिश्रम, अनाहार तथा दुर्भावना के कारण वह मृतप्राय हो उठी थी। नंदी महोदय की कोठी के सामने जो शिव मंदिर था, उसी के बरामदे में आकर वह एक प्रकार से लेट गई। उस समय भी पानी बंद नहीं हुआ था, लेकिन कम हो गया था। शुभदा अपने भीगे हुए कपड़ों को निचोड़ने लगी। इतने में उसने देखा कि एक वृद्ध नौकर ने जमींदार की कोठी का फाटक खोला और हाथ में दीपक लिए वह मंदिर की ओर आ रहा है। उसे देखकर शुभदा के दिल में क्षीण आशा का संचार हुआ। उसने सोचा संभव है, इस वृद्ध से कुछ पता चल जाए। इसीलिए प्रस्थान न करके मंदिर के बरामदे में ही वह एक किनारे खड़ी रही। मंदिर के द्वार के सामने आकर वृद्ध ने देखा कि घूंघट से मुंह ढके हुए एक स्त्री खड़ी है, परंतु उससे उसने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप भीतर चला गया। काफी समय तक वहां रहने के बाद जब वह बाहर निकला, तब भी वह स्त्री उसे उसी रूप में खड़ी हुई मिली। वृद्ध ने पहले अनुमान किया था कि यह किसी भले घर की स्त्री है, वर्षा के भय से यहां आ गई है,

अब चली जाएगी, परंतु इतनी देर के बाद भी उसने जब उसे उसी तरह खड़ी पाया तब कौतूहल में आकर उसने पूछा, 'तुम कौन हो?'

स्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'कहां जाओगी बेटी?'

लज्जा के कारण शुभदा के मुंह से कोई बात निकल न रही थी, परंतु विवश होकर उसे बोलना ही पड़ा। मृदु वाणी से उसने कहा, 'जमींदार साहब की कोठी में।'

'सामने ही तो कोठी है, उसमें न जाकर तुम यहां क्यों खड़ी हो?'

शुभदा कोई जवाब न दे सकी।

वृद्ध ने फिर पूछा, 'तुम जमींदार की कोठी में किसके पास जाओगी?'

'बाबू साहब के पास।'

'किन बाबू साहब के पास?'

'भगवान बाबू के पास।'

ताज्जुब करके वृद्ध ने कहा, 'भगवान बाबू के पास?'

'हां।'

'तो चलो मेरे साथ।' यह कहकर वृद्ध आगे-आगे चलने लगा। शुभदा ने चंद्रमा के प्रकाश में देखा कि वृद्ध के बाल पककर सफेद हो गए हैं और इसकी स्वभाव में सौम्यता स्पष्ट रूप से झलक रही है। इससे निःसंकोच होकर वह उसके पीछे-पीछे चलने लगी। क्रमशः फाटक के भीतर प्रवेश करने के बाद बगीचे को पार किया, अंत में एक कमरे का दरवाजा खोलकर वृद्ध ने कहा, 'इस कमरे में चली आओ।'

शुभदा ने कमरे में प्रवेश किया। खूब सजा हुआ कमरा था। सारे फर्श पर एक कीमती गलीचा बिछा हुआ था। सामने मसनद लगाकर—गृहस्वामी के बैठने के उपयुक्त एक विशिष्ट आसन लगा हुआ था। वृद्ध उसी पर विराजमान हुआ। अब दीपक के प्रकाश में शुभदा को उसने नीचे से ऊपर तक देखा। घूंघट की जरा-सी राह से उसके मुख का जितना अंश देखा जा सकता था, उसे उसने देख लिया। कोई ऐसा भी समय था, जबकि शुभदा रूपवती थी। एक तो अब अवस्था अधिक थी, दूसरे दुख-क्लेश से भी उसे बराबर की टक्कर लेनी पड़ी है। इस कारण उसमें अब वह ज्योति नहीं रह गई, परंतु उसके आभाहीन मुख पर भी जितनी ज्योति अवशिष्ट थी, उसी से वृद्ध मोहित हो उठा। कुछ देर तक उसकी तरफ देखते रहने के बाद उसने कहा, 'बेटी, तुम भूल रही हो। शायद तुम विनोद बाबू से मुलाकात करना चाहती हो।'

'कौन हैं विनोद बाबू?'

'भगवान बाबू के छोटे भाई हैं विनोद बाबू।'

शुभदा ने कहा, 'मैं उनसे नहीं मिलना चाहती।'

'तो तुम्हारा मतलब क्या भगवान बाबू से ही है?'

'हां।'

'मेरा ही नाम भगवान नंदी है, लेकिन मुझे जहां तक याद है, मैंने तो तुम्हें कभी देखा भी नहीं।'

शुभदा ने सिर हिलाकर कहा, 'नहीं।'

'तब मुझसे तुम्हारा क्या काम निकल सकता है?'

शुभदा कुछ न बोली। भगवान बाबू ने फिर कहा, 'मैंने सोचा था कि रात में एक स्त्री का काम विनोद से ही हो सकता है। इतनी रात में मुझसे तुम्हारा क्या मतलब है, यह मेरी समझ में नहीं आता।'

इस पर भी शुभदा कुछ नहीं बोली।

तब भगवान बाबू ने पूछा, 'तुम्हारा निवास-स्थान कहां है?'

'हलुदपुर में।'

'हलुदपुर में! मुझसे तुम्हारा काम है? तो क्या तुम हाराण की स्त्री हो?'

शुभदा ने मस्तक हिलाकर घूंघट के भीतर से ही कहा, 'हां।'

'तो बतलाओ तुम्हारा क्या प्रयोजन है?'

शुभदा आंचल के छोर से दोनों ही कड़ों को खोलकर, धीरे-धीरे भगवान बाबू के पैरों के पास रखकर बोली, 'उन्हें मुक्त कर दीजिए।'

वृद्ध की समझ में सारी बात आ गई। दोनों कड़ों को हाथों में लेकर उसने उनकी परीक्षा की। बाद में उसने कहा, 'यह देखकर मैं कुछ खुश हो पाया हूं। भला एक चीज तो उसने बनवा दी?' बाद में उन्हें नीचे रखकर वह बोला, 'तुम इन्हें ले जाओ। तुम ब्राह्मण की बेटी हो, तुम्हारे हाथ के कड़े ले लेना उचित नहीं है। यदि छोड़ना होगा तो मैं यों ही छोड़ दूंगा। वह मेरे इतने रुपये खा गया है कि उनकी तुलना में ये आभूषण नहीं के बराबर हैं। इससे इन्हें लेना या न लेना बराबर ही है। इससे तो यह अच्छा होगा कि मैं उसे ऐसे ही छोड़ दूं।'

आंखें पोंछते हुए शुभदा ने कहा, 'उन्हें छोड़ दीजिएगा न?'

'इच्छा तो नहीं थी। उसके जैसे दुश्चरित्र को उपयुक्त दण्ड देना ही अच्छा था। तो भी तुम्हारे कारण उसे ऐसे ही छोड़ दूंगा।'

शुभदा की आंखों से आंसू गिरने लगे। मन-ही-मन उन्हें सैकड़ों बार धन्यवाद देकर उसने ईश्वर के चरणों में सहस्त्र बार उनकी मंगल कामना की, बाद में लौटने के लिए वह उठकर खड़ी हो गई। मुंह ऊपर करके भगवान बाबू ने कहा, 'आज ही लौट जाओगी?'

शुभदा ने सिर हिलाकर स्वीकारात्मक उत्तर दिया।

'तुम्हारे साथ क्या और कोई आदमी है?'

'कोई नहीं।'

'कोई नहीं है। तब अकेली मत जाओ। एक आदमी साथ लेती जाओ।'

शुभदा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उस झाड़-झंखाड़ से होती हुई वह अकेली ही घर की ओर चली। सवेरा होते-होते वह घर पहुंच गई। ललना उससे पहले की उठ चुकी थी। अपना दैनिक कार्य वह आरंभ करने को ही थी, इतने में भीगे कपड़े पहने मां को आती देखकर उसने कहा, 'मां, आज बड़े सवेरे स्नान कर आई हो?'

'हां।'

शुभदा ने अपनी दोनों कन्याओं का नाम राममणि और दुर्गामणि न रखकर ललना और छलना रखा था, इस कारण उसकी ननद रासमणि के मनःस्ताप का ठिकाना नहीं था।

ये ऊल-जलूल नाम 'ललना और छलना' आठों पहर उनके कानों में चुभते रहते थे। 'ललना' नाम थोड़ा-बहुत अनुकूल भी पड़ता था, परंतु 'छलना' कहां का नाम था। रासमणि छलना से कभी प्रसन्न नहीं रहा करती थीं।

उसकी धारणा थी कि लोग बालक-बालिकाओं का नामकरण देवी-देवताओं के नामों के अनुसार किया करते हैं, जिससे उन्हें पुकारते समय किसी देवी या देवता का नाम मुंह से निकल आवे, लेकिन इन दोनों कन्याओं को पुकारते समय तो मन में इस प्रकार के भाव का संचार नहीं होता बल्कि ऐसा लगता है, मानो पाप का भार धीरे-धीरे करके बढ़ रहा है।

ललनामयी और छलनामयी ये हाराण बाबू की दो कन्याएं थीं। उनमें एक बड़ी थी और दूसरी छोटी। एक की उम्र सत्रह वर्ष की थी, दूसरी की ग्यारह वर्ष की। एक विधवा थी, दूसरी अविवाहिता।

यह तो हुआ उन दोनों का परिचय। उनके रूप-गुणों का वर्णन करना संभव नहीं है, परंतु गंगा-तट पर ललना जब स्नान के निमित्त जाया करती, तब वहां पर एकत्र परिपक्व अवस्था की स्त्रियां आपस में कहा करतीं, 'विधवा बनाने के लिए ही शायद भगवान ने इस छोकरी को इतना रूप दे रखा है?' ललना दूसरी ओर मुंह फेरकर जल में डुबकियां लगाया करती। नवयुवतियां भी कानाफूसी किया करतीं। वे क्या कहतीं, यह उनके सिवा और किसी के कानों तक नहीं पहुंच पाता था, लेकिन उनके चेहरे का भाव देखकर अनुमान यही होता कि वे प्रशंसा नहीं कर रही हैं। तट पर एकत्र स्त्रियों द्वारा की जा रही उनकी निंदा या प्रशंसा का

ललना पर किसी प्रकार का असर नहीं पड़ा करता था। वह अधिकतर किसी से बात नहीं किया करती थी। किसी के लेने-देने में भी वह नहीं रहती थी। उससे यदि कोई बोलता तो वह दो-चार बातें कर लेती, वरना चुपचाप स्नान करती, जल भरती और सीधी अपने घर चली आती।

छलना का स्वभाव अवश्य ललना से सर्वथा विपरीत था। वह बातें अधिक किया करती थी। दूसरों की बातों में दखल देना उसे बहुत प्रिय था। आठ बजे स्नान के लिए निकलने पर ग्यारह बजे से पहले वह कभी नहीं लौटती थी। आभूषण न होने के कारण वह प्राय: अप्रसन्नता का भाव प्रकट नहीं किया करती थी। चौके में बैठने पर वह प्राय: इस बात के लिए कलह किया करती कि मोटे चावल का भात मुझसे नहीं खाया जाता। किसी-किसी दिन तो मछली के अभाव के कारण वह थाली ठेल दिया करती थी और पूरे दिन कुछ नहीं खाती थी। दिन-भर में उसके इस तरह के सैकड़ों कांड हुआ करते थे।

छलना के भी रूप की तुलना न थी। तपाये हुए सोने का-सा उसके शरीर का वर्ण था। गुलाब के फूल के समान मुख था, जिस पर भौंहें मानो किसी ने तूलिका से चित्रित कर दी थीं। पान के खाने के बाद अपने पतले-पतले दोनों होंठों को लाल करके एकांत में बैठकर छलनायमी दर्पण में जब अपनी कांति देखती, तब वह स्वयं अपने को गौरवान्वित अनुभव किए बिना न रहती। मन-ही-मन वह कहती, 'इस उम्र में मुझमें जब इतना अधिक सौंदर्य है, उपयुक्त अवस्था आने पर तो पता नहीं क्या दशा होगी?'

छलनामयी अपने यौवन काल की मधुर मूर्ति की प्राय: कल्पना किया करती। वह मन-ही-मन सोचा करती, 'उस समय कितने आभूषण होंगे मेरे शरीर पर! यहां कड़े होंगे, यहां अनंत होगा, यहां हार होगा, यहां चिक होगा और यहां कंठा होगा, इसी प्रकार जितने तरह के भी आभूषण शरीर के जिस-जिस अंग में धारण किए जा सकते हैं, उन सभी को प्राप्त करके धारण करने की कल्पना वह किया करती थी। कल्पना के इस आनंद का वह अकेली ही नहीं उपभोग किया करती थी, बल्कि दौड़ती हुई वह बड़ी बहन के पास पहुंच जाया करती।'

ललना पूछती, 'क्यों री, तू दौड़ क्यों रही है इस तरह?'

'क्यों दीदी, मेरे शरीर का रंग क्या पहले से कुछ काला हो गया है?'

'क्यों हो जाएगा काला?'

'नहीं हुआ? अच्छा दीदी, हमारे गांव में क्या कोई ऐसा पुरुष है, जो भविष्य की बातें बतला सकता है?'

'क्यों?'

'अपना हाथ दिखलाऊंगी।'

'क्या करोगी हाथ दिखलाकर।'

'मैं चाहती हूं कि कोई हाथ देखकर यह बतलाए कि बड़ी होने पर मुझे पहनने को आभूषण मिलेंगे या नहीं?'

ललना के नेत्र आंसुओं से परिपूर्ण हो उठते। वह कहती, 'तुझे आभूषण खूब मिलेंगे बहन! तू राजरानी होगी।'

छलना शर्म से लाल हो उठती। उठकर भाग जाती। वह मन-ही-मन कहती, 'मैं केवल यही पूछ रही थी कि मुझे पहनने के लिए आभूषण मिल सकेंगे या नहीं, राजरानी होने या न होने की बात इनसे किसने पूछी है?'

आज उसने एकाएक आकर ललना से पूछा, 'दीदी, हम लोगों के पास कुछ क्यों नहीं है?'

ललना बोली, 'हम लोग दुखी हैं इसलिए!'

'हम लोग इतने दुखी क्यों हैं दीदी? गांव में और कोई तो इतना दुखी नहीं है, जो हम लोगों की तरह रहता हो, हम लोगों का-सा दुख भोगता हो?'

'ईश्वर ने जिसकी जो दशा कर दी है, उसे उसी दशा में रहना होता है।'

'ईश्वर ने और तो किसी की ऐसी दशा नहीं की। हमारी ही क्यों की है।'

'यह हम लोगों के पूर्वजन्म का पाप है।'

'कैसा पाप?'

'पाप क्या एक-दो प्रकार के होते हैं बहन? पता नहीं कितने अपकर्म कर चुकी हूं। मां-बाप के प्रति श्रद्धा नहीं की, लोगों को कष्ट दिया है—इस तरह के न जाने कितने कार्य किए हैं।'

छलना उदास होकर बोली, 'इस तरह कब तक व्यतीत करना पड़ेगा। क्या हमारा जीवन सुखी नहीं होगा?'

'मेरी बहन, दुर्दिन बीत जाने पर पुनः सुदिन आएंगे।' इसके बाद वह छलना के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेती हुई बोली, 'देखना, तू कितनी सुखी होगी, कितना धन-दौलत, नौकर-नौकरानियां होंगी। तू रानी बनेगी।'

ललना जब यह सब कह रही थी, तब बिना कुछ सोचे वह बोली, 'और तुम दीदी?'

वह जानती थी कि दीदी विधवा है। बालिका की सुलभ चंचलता के कारण ऐसी बातें मुंह से निकल गई हैं। तभी मां की पुकार सुनते ही ललना बोली, 'मां बुला रही है।'

ललना चली गई। सचमुच उस समय मां उसे बुला रही थी। पास जाकर उसने कहा, 'क्या है मां?'

'तुम्हारे बाबूजी आए हैं। उस कमरे में...।'

बात समाप्त होने से पहले ही ललना चली गई।

भोजन करते समय रासमणि ने पूछा, 'इतने दिन तक तुम कहां थे?'

मुख में ग्रास डालकर हाराण बाबू ने गंभीर भाव से कहा, 'यह एक बहुत बड़ी कहानी है।'

रासमणि का मुंह फैल गया, 'कौन-सी ऐसी बड़ी कहानी है रे?'

मुंह का ग्रास गले से नीचे उतारकर हाराण बाबू ने पहले की ही तरह गंभीर मुख से कहा, 'बहुत बड़ी कहानी यह है कि मस्तक के ऊपर से प्रलय की आंधी निकल गई।'

रासमणि के आश्चर्य की सीमा न रही। चिंता भी उनकी अनंत थी। अवरुद्ध कंठ से वे बोल उठी, 'साफ-साफ क्यों नहीं बतलाता हाराण, क्या हो गया था तुझे?'

गंभीर मुख पर जरा-सी मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए हाराणचंद्र ने कहा, 'क्या हुआ था? चांद के कलंक की बात जानती हो न? नंदी बाबू ने मुझ पर गबन का मामला दायर किया था।'

'मामला दायर किया था?'

'हां! लेकिन असत्य के बल पर वे कहां तक चलते? किसी तरह का सबूत वे न दे सके, इससे मुकद्मा जीतकर आज घर चला आया हूं।'

शुभदा ने घूंघट की आड़ में ही आंखें पोंछी। रासमणि ने नंदी बाबू की भूरि-भूरि मंगलकामना की। कुटुंबियों-सहित उनकी मुक्ति के लिए उन्होंने दुर्गाजी के चरणों में बहुत प्रार्थना की। बाद में उन्होंने कहा, 'लेकिन क्या वे अब भी नौकरी पर रखेंगे?'

हाराण बाबू ने आंखें लाल-लाल करके कहा, 'नौकरी पर रखेंगे? अब मैं उनके यहां नौकरी करने के लिए जाता ही कहां हूं। इस जन्म में मैं उस हरामजादे भगवान नंदी का मुंह फिर देखूंगा? अगर जिंदा रहा तो इस अपमान का बदला लेकर ही रहूंगा। जिस तरह उसने मुझे अपमानित किया है, उसी तरह उसका भी अपमान करूंगा।'

रासमणि कुछ भय तथा विस्मय से अपने वीर भाई की तरफ ताकती रह गई। बाद में मृदु कंठ से बोली, 'लेकिन उस अवस्था में खर्च आदि...।'

बात काटकर हाराणचंद्र ने कहा, 'इसके लिए तुम क्यों फिक्र कर रही हो दीदी। पुरुष होकर पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किया है मैंने। कल ही किसी जगह नौकरी ठीक कर लूंगा।'

हाराणचंद्र ने जो कुछ कहा, उस पर रासमणि ने पूर्णरूप से विश्वास कर लिया हो, यह बात नहीं थी तो भी उन्होंने किसी तरह धैर्य का अवलंबन किया।

अत्यधिक निराशा के कारण जब मनुष्य का हृदय द्वेष से व्यग्र हो उठता है, तब वह झूठी आशा को भी सच मानकर उस दुर्भावना से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील हो उठता है। यही हाल रासमणि का भी हुआ। उन्होंने मन को समझाया, बहुत संभव है कि हाराण जो कुछ कह रहा है, उसे कार्यरूप में भी परिणत कर दे। कोई आश्चर्य नहीं कि इस संकट काल में उसकी आंखें खुल जाएं। कुछ क्षण तक मौन रहने के बाद उन्होंने कहा, 'जो तुम्हें अच्छा मालूम पड़े, वही करना, परंतु कुछ किए बिना काम नहीं चलेगा। हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे रहने पर इस बाल-बच्चेदार परिवार की विपत्ति की सीमा न रहेगी।'

एक लंबा-चौड़ा उत्तर देकर हाराणचंद्र ने भोजन समाप्त किया और वे चौके से उठकर बाहर आए।

अब उनकी भेंट माधव से हुई। पिता के आगमन का हाल उसे मालूम हो गया था। इसलिए वह उत्कंठित होकर अभी तक शय्या पर बैठा हुआ था। पास आकर हाराण बाबू ने पुत्र की पीठ पर हाथ फेरा। उन्होंने कहा, 'कैसी तबीयत है तुम्हारी माधव?'

'आज अच्छी है बाबूजी, परंतु तुम इतने दिनों तक आए क्यों नहीं?'

हाराणचंद्र कोई उपयुक्त उत्तर खोज रहे थे, परंतु माधव ने उसके लिए प्रतीक्षा नहीं की। वह फिर बोल उठा, 'तुम तो मेरे लिए दवा लाने गए थे न? दवा ले आए हो?'

हाराणचंद्र ने सूखे हुए मुंह से कहा, 'ले आया हूं।'

'अच्छी दवा है? उसे खाते ही अच्छा हो जाऊंगा?'

'हां, अच्छे हो जाओगे।'

अत्यंत प्रसन्न होकर बालक ने हाथ बढ़ाया और कहने लगा, 'तो लाओ।'

अब हाराणचंद्र संकट में पड़ गए। जरा इधर-उधर करके उन्होंने कहा, 'इस समय नहीं, रात में खाना।'

बालक इस बात से संतुष्ट हो गया। बहुत ही धीरे-से हंसकर उसने कहा, 'अच्छी बात है, रात में ही खाऊंगा।' बाद में कुछ क्षण तक पिता की ओर देखकर उसने कहा, 'बाबूजी, मेरे लिए एक अनार खरीद लाना। लाओगे न?'

हाराणचंद्र ने सिर हिलाकर प्रकट किया, ला दूंगा।

इसके बाद ही शुभदा से उनका सामना हुआ। उसे अपने पास बुलाकर उन्होंने कहा, 'क्या तुम मुझे दो आने पैसे दे सकती हो?'

'क्यों?'

'मुझे पैसों की आवश्यकता है। एक आदमी से मैंने पैसे उधार लिए थे, वही मांग रहा था।'

बक्स खोलकर शुभदा ने दो आने पैसे निकाले। हाराणचंद्र ने झांककर देखा तो उस संदूक में और भी पैसे थे। हाथ फैलाकर दो आने पैसे लेने के बाद उन्होंने कहा, 'अगर तुम्हारे पास हों तो चार आने पैसे और दे दो, माधव के लिए अनार मोल ले आऊंगा।'

शुभदा ने कातर भाव से एक बार स्वामी के मुंह की तरफ देखा। इतने पैसे एक साथ निकालकर देने में कदाचित वह कष्ट का अनुभव कर रही थी, परंतु बाद में संदूक खोलकर उसने पैसे निकालकर दे दिए।

पैसे संभालकर हाराणचंद्र ने मुट्ठी में ले लिए। बाद में जरा जोर देकर हंसने के बाद उन्होंने कहा, 'ये पैसे मैं तुम्हें कल ही लौटा दूंगा।'

शुभदा ने अन्यमनस्क भाव से सिर हिलाया। उसे यह अच्छी तरह मालूम था कि स्वामी की आधी से अधिक बातें निरर्थक होती हैं। पैसे हाथ में आते ही वे बाहर जाने के लिए तैयार हो गए। यह देख शुभदा बोली, 'इस समय कहीं मत जाओ, थोड़ी देर आराम कर लो।'

हाराणचंद्र ने मुंह फेर लिया। उन्होंने कहा, 'ऐसा कैसे हो सकता है? क्या घर बैठे रहने में मेरी गुजर है? दुनिया-भर के काम का भार तो सिर पर है।'

'तो जाओ।'

हाराणचंद्र के चले जाने पर शुभदा ने संदूक में देखा। उसमें सिर्फ एक रुपया था। विंध्यवासिनी ने उस दिन जो कुछ दिया था, वह लगभग समाप्त हो चला था, केवल वही एक रुपया उस परिवार का सहारा था। शुभदा ने उसे संदूक के एक कोने में छिपाकर रख दिया। बाद में वह माधव के पास आकर बैठ गई।

माधव ने कहा, 'मां, बाबूजी मेरे लिए अनार कब ले आएंगे?'

'संध्या को।'

संध्या का समय आ गया, फिर रात हो गई, परंतु फिर भी हाराण बाबू दिखाई नहीं पड़े। माधव ने कई बार उनकी खोज की, उनके संबंध में उसने कई बातें पूछीं, बाद में वह रोने लगा।

शुभदा आकर माधव के पास बैठ गई। ललना ने भी उसे फुसलाने के लिए बहुत प्रयत्न किया, परंतु वह किसी प्रकार भी शांत नहीं हो रहा था। अंत में रोते-रोते थककर वह बहुत रात गए सो गया।

प्रातःकाल उसकी नींद टूटी तो उठकर उसने कहा, 'मां, आया है मेरा अनार?'

किसी तरह आंसू रोककर शुभदा ने कहा, 'तुम्हें अनार न खाना चाहिए बेटा।'

'क्यों?'

'अनार खाओगे तो तुम्हें नुकसान करेगा।'

माधव अभी तक उठकर बैठा था, अब वह लेट गया। दूसरे दिन दोपहर बाद हाराण बाबू घर आए। गुस्से के मारे रासमणि उनसे बोली तक नहीं। ललना हाथ-पैर धोने के लिए पानी ले आई। उसने उनके स्नान की व्यवस्था की और हुक्का तैयार कर दिया। हाराणचंद्र ने स्नान आदि से छुट्टी पाकर भोजन किया। तब शुभदा ने धीरे-से पूछा, 'क्या माधव का अनार ले आए हो?'

'ओह! कहां ला सका भाई! मैंने जेब में पैसे रख लिए थे। मुझे ध्यान ही नहीं था कि जेब फटी हुई है। सारे पैसे, पता नहीं कहां गिर गए। अगर हों तो चार आने उधार दे दो, संध्या तक तुम्हारे सब पैसे लौटा दूंगा।'

शुभदा ने खिन्न भाव से कहा, 'अब पैसे नहीं हैं।'

इस पर हंसते हुए हाराणचंद्र ने कहा, 'यह तो मैं नहीं मान सकता। लक्ष्मी का भंडार क्या कभी खाली होता है?'

शुभदा ने मन-ही-मन लक्ष्मी के भंडार की अवस्था पर विचार किया। बाद में प्रकट भाव से वह बोली, 'सचमुच पैसे नहीं हैं।'

'पैसे हैं क्यों नहीं? कल तो मैंने देखा था, बहुत-से पैसे थे और एक रुपया भी देखा था।'

शुभदा चुप रह गई।

हाराणचंद्र ने फिर कहा, 'छिः, थोड़े-से पैसों के लिए तुम मेरा विश्वास नहीं कर सकती हो। पूरे रुपये के लिए चाहे विश्वास न करो, चार आने का तो कर ही लेना चाहिए।'

अब शुभदा ने आपत्ति नहीं की। हाथ धोकर उसने अपेक्षित धन बक्स से निकाल दिया।

रुपये का खूब सदुपयोग हुआ। हाराणचंद्र हलुदपुर ग्राम से चलकर ब्राह्मणपाड़ा पहुंचे। वहां वे एक गली से होकर गुजरे। थोड़ी ही दूर बढ़ने के बाद चटाई से घिरे हुए एक घर में उन्होंने प्रवेश किया। वहां बहुत-से लोग इकट्ठे होकर कोने में बैठे हुए थे। उन्हें देखते ही वे सब प्रसन्न होकर हल्ला करने लगे। प्रीति का झोंका जोरों से चलने लगा। किसी ने बाबू कहकर हाराण का संबोधन किया, तो किसी ने चाचा कहा, किसी ने भैया कहा, किसी ने मामा कहा, किसी ने फूंफा कहा और किसी ने मौसा कहा। हाराण बाबू ने भी बहुत ही प्रसन्न होकर उन सबके बीच में स्थान ग्रहण किया।

अब तरह-तरह के किस्से छिड़े। उन सबकी कथाओं द्वारा कितने राजाओं, राजकुमारों तथा मंत्रियों के शिरोच्छेद का बखान हुआ, कितना धन खर्च किया गया। वह अफीम की दुकान थी। संसार के एक छोर में यदि श्मशान है तो दूसरे

छोर में अफीम की दुकान है। श्मशान में पहुंचने पर महाराजा भी भिक्षुक के समान हो उठता है। इसके विपरीत अफीम की दुकान में पहुंचकर भिक्षुक भी महाराजा बन बैठता है। जैसे-जैसे अफीम का नशा जमता जाता है, वैसे-ही-वैसे हृदय के महत्व, वीर्य-पराक्रम, शौर्य, धैर्य, गांभीर्य और पांडित्य आदि एक-एक करके फूल-फूलकर बड़े-से-बड़े आकार धारण करते जाते हैं। उस समय कितने दान, कितने मणिरत्न, कितना सुवर्ण, कितने राज्य, कितनी राजकुमारियां एक-एक झोंक में कहां-की-कहां हो जाती हैं। संध्या हो चली। यह देखकर कितने ही कालिदास, कितने ही दिल्ली के बादशाह, कितने नवाब सिराजुद्दौला, कितने मियां तानसेन बारी-बारी से चटाई छोड़कर निकलने लगे। संसार के निम्न श्रेणी के प्राणियों से वे मिल नहीं सकते थे। उनसे बातचीत करना तथा एक परिचित व्यक्ति के समान उनके साथ चलना इनके लिए शोभाजनक नहीं था, इसलिए सड़क के किनारे से होकर वे लोग अपने-अपने घर की ओर चले।

हाराणचंद्र भी इन लोगों की तरह निकलकर बाहर आए, परंतु बाहर आते ही उनके सामने एक झमेला खड़ा हो गया। न जाने कहां से रोग शय्या पर पड़े हुए उस अभागे माधव का मुख उनके स्मृति-पट पर उदित हो आया, साथ-ही-साथ स्मृति ने इस बात के लिए भी सचेत कर दिया कि तुम उसे अनार ले आने का वचन दे आए हो। इसमें संदेह नहीं कि उस सभा में सम्मिलित होने वाले दूसरे लोगों के समान ही वे भी कोई-न-कोई उच्च पद प्राप्त करके बाहर आए थे, लेकिन उस भाग्यहीन छोकरे के मुख ने उस राज्य में बड़े जोर की हलचल मचा दी। दिल्ली के बादशाह ने पॉकेट में हाथ डालकर देखा तो मालूम हुआ कि राजकीय कोष लगभग शून्य। इतने बड़े सम्राट के पास चार पैसों और गांजे की चिलम के अलावा और कुछ नहीं था। एक लंबी सांस लेकर उन्होंने कहा, 'बहुत अच्छा! उन चार पैसों के सहारे पास की गांजे की एक दुकान में जा घुसे।'

मधुर वाणी के द्वारा ठेकेदार का मन प्रसन्न करते हुए हाराण बाबू ने कहा, 'चाचा, चार पैसे का गांजा तो दो।'

ठेकेदार ने भी अविलंब ही उस आज्ञा का पालन किया।

हाराणचंद्र ने एक पेड़ की मनोरम छाया खोजकर उस गांजे की सहायता से अपने मनोराज्य की सारी मनोदशा को दूर करके उसे फिर ठीक कर लिया। इस समस्त कर्मों का संपादन करते-करते रात अधिक बीत चली। यह देखकर उस पेड़ की छाया का परित्याग करने के बाद एक मकान के सामने जाकर वे खड़े हुए। दरवाजा खटखटाकर उन्होंने पुकारा, 'कात्यायनी!'

किसी ने जवाब नहीं दिया।

फिर पुकारा, 'कातू, घर में हो?'

इस बार भी उत्तर नहीं मिला।

अब हाराणचंद्र गुस्से में भर उठे। चिल्लाकर उन्होंने कहा, 'क्यों री कात्यायनी, द्वार खोल क्यों नहीं देती हो?'

इस बार बहुत ही क्षीण रमणी कंठ से उत्तर आया, 'कौन है?'

'मैं हूं, मैं!'

'मेरी तबीयत बहुत खराब है। इस समय मुझसे न उठा जाएगा।'

'ऐसा मत कहो, उठकर दरवाजा खोल दो।'

अब पच्चीस वर्षीया एक युवती उठी और खांसते-खांसते जाकर उसने दरवाजा खोल दिया। उसका शरीर काला और मोटा-ताज़ा था। वह दर्द से कराह रही थी।

जोर से खांसते हुए युवती ने कहा, 'आह! प्राण निकले जा रहे हैं, पेट में बड़े जोर का दर्द है। इतने जोर से चिल्लाते क्यों हो?'

'क्या शौक से चिल्लाता हूं? दरवाजा नहीं खोलती हो, इसी से चिल्लाना पड़ता है।'

युवती गुस्से में भर उठी। उसने कहा, 'नहीं बाबू, यह सब मुझसे नहीं सहा जाएगा। अगर आना हो तो जरा सवेरे-सवेरे आ जाया करो। न रात मानते हो, न दोपहरी मानते हो। जब जी में आता है, तभी आकर चिल्लाने लगते हो। यह नहीं हो सकता। इस तरह का झमेला मुझे अच्छा नहीं लगता है।'

भीतर जाकर हाराणचंद्र ने सांकल लगा दी। बाद में कात्यायनी के मुंह की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, 'आह! तुम्हारे पेट में दर्द हो रहा है, यह तो मुझे मालूम नहीं था।'

'तुम कैसे जान सकोगे? इस मोहल्ले के लोग जानते हैं। कल से लेकर आज इस समय तक पेट में एक बूंद पानी तक नहीं गया, लेकिन तुम इतनी रात के समय क्यों आए?'

'एक काम है।'

'ऐसा कौन-सा काम है?'

'बतलाता हूं। पहले जरा तंबाकू तो भर लाओ।'

हाराणचंद्र की इस आज्ञा के कारण युवती की भभकती हुई आग पर मानो घी के छींटें पड़े। हाथ से कमरे के एक कोने की तरफ इशारा करके उसने कहा, 'वहां सब सामान रखा है। तंबाकू पीना हो तो अपने हाथ से भरकर पीओ, मेरी हड्डियां मत जलाओ। मैं जाकर लेटती हूं।'

कुछ संकुचित होकर हाराणचंद्र ने कहा, 'नहीं-नहीं, मैं तुम्हें नहीं कह रहा हूं। मुझे ध्यान ही नहीं रहा था। तुम लेट जाओ, मैं स्वयं तंबाकू भर लेता हूं।'

कात्यायनी चारपाई पर लेट गई। हाराणचंद्र ने हुक्का तैयार किया और गुड़गुड़ाते हुए वे आकर उसकी बगल में बैठ गए। बहुत देर तक वे तंबाकू पीते रहे। बाद में धीरे-धीरे, बहुत धीरे से उन्होंने कहा, 'कात्यायनी, मुझे दो रुपये देने होंगे।' यह बात हाराणचंद्र ने अत्यंत ही कोमल स्वर में कही, फिर भी वे बराबर डरते रहे कि कहीं कंठ-स्वर में कर्कशता न आ जाए।

कात्यायनी कुछ बोली नहीं।

हाराणचंद्र ने फिर कहा, 'सुना नहीं तुमने? क्या सो गई हो? आज मुझे दो रुपये देने होंगे।'

कात्यायनी ने करवट बदली, परंतु वह कुछ बोली नहीं। इससे हाराणचंद्र को जरा-सा साहस हुआ। हुक्का रखकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'दोगी न?'

कात्यायनी बोली, 'क्यों बेकार बक-बक कर रहे हो? रुपये कहां से दूंगी?'

'क्यों? तुम्हारे पास हैं नहीं क्या?'

'नहीं।'

'हैं क्यों नहीं? मुझे बड़ी जरूरत है आज, तुम्हें मुझ पर दया करनी ही होगी।'

'रुपये होंगे तब तो दया करूंगी।'

'कम-से-कम दो रुपये की तुम्हें कमी नहीं है। रुपये तुम्हारे पास हैं, इसका मुझे विश्वास है। रुपये की कमी के कारण मेरे घर के लोगों को खाने को नहीं मिल रहा है। अपने बीमार बच्चे के मुख का आहार निकालकर मैंने खाया है। लज्जा और घृणा के कारण मेरा हृदय फटा जा रहा है। आज मेरी रक्षा करो कात्यायनी।'

'लेकिन रुपये होंगे, तब तो मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी। मेरे पास एक पैसा भी नहीं है।'

अब हाराणचंद्र गुस्से में भर उठे। उन्होंने कहा, 'हैं क्यों नहीं? इतने रुपये मैंने तुमको दिए, परंतु आज मैं संकट में पड़ा हूं तब दो रुपये भी नहीं निकाले जाते! लाओ कहां है चाबी? मैं संदूक खोलकर देखता हूं कि रुपये हैं या नहीं।'

मानो किसी ने कात्यायनी की आंखों में आघात कर दिया। गुस्से के कारण उनकी आंखें लाल हो आई थीं। तीक्ष्ण दृष्टि से हाराणचंद्र की ओर देखती हुई वह बोली, 'क्यों, तुम कौन होते हो संदूक की चाबी मांगने वाले?' वह नीच जाति की युवती थी। अवाच्य-कुवाच्य का ध्यान उसे था नहीं। अनायास ही वह पंचम स्वर में बोल उठी, 'जब रुपये दिए थे, तब रखे थे। वे रुपये इसलिए तो दिए नहीं थे कि जब तुम संकट में पड़ोगे, तब मैं वापस कर दूंगी?'

हाराणचंद्र का मुंह तो बिलकुल इतना-सा हो गया। कात्यायनी की आंखों से

वे आंखें न मिला सके। आज भी वे सीधे मुंह से उसके सामने खड़े नहीं हो सके। अत्यंत विनीत भाव से उन्होंने कहा, 'तब भी, हममें-तुममें जो इतने दिनों का प्रेम है, कम-से-कम उसके कारण तो जरा-सा उपकार करना ही चाहिए।'

'खाक प्रेम है। ऐसे प्रेम में आग लगे। आज तीन महीने से कितने पैसे दिए हैं कि मैं तुमसे प्रेम करती रहूं?'

'छि: ! ऐसी बात मुंह से मत निकालो कानू। क्या हमारे-तुम्हारे प्रेम का मूल्य नहीं है?'

रत्ती-भर नहीं। हम लोगों को जिससे पैसा मिलता है, उसी से प्रेम होता है। तुम लोगों के घरों की स्त्रियों के समान तो मैं हूं नहीं कि गले पर छुरी चलाने पर भी प्रेम करते ही रहना पड़ेगा! तुम्हें छोड़कर क्या मेरी और गुजर नहीं है? जहां रुपया है, वहीं मेरा प्रेम है। जो मुझे पैसे देता है, उसी का मैं सम्मान करती हूं। जाओ, घर जाओ, इतनी रात में मुझे परेशान न करो।'

'क्यों कानू, बस हो चुका? हमारे-तुम्हारे सदा के व्यवहार का खात्मा हो चुका है?'

'वह तो बहुत पहले ही समाप्त हो चुका है। संकोच के कारण आज तक मैं कुछ न कह सकी। आज जब तुमने बात चला दी है, तब मुझे साफ-साफ कहना ही होगा। तुम्हारा स्वभाव ही नहीं, चरित्र भी दूषित हो गया है। मेरे यहां अब तुम न आया करो। बाबू साहब के यहां का रुपया खा गए हो, इससे तुम्हारी जेल जाने की तैयारी थी। नौकरी आदि अब तुम्हारी कुछ है ही नहीं। क्या तुम किसी दिन मेरा सर्वनाश करना चाहते हो? इससे तो अच्छा है कि तुम अभी से अपना रास्ता लो। मेरे घर में अब मत आना।'

हाराणचंद्र देर तक वहीं पर बैठे रहे। वे न तो जरा-सा हिले-डुले और न उनके मुंह से कोई आवाज ही निकली। बाद में धीरे-धीरे मुंह उठाकर वे कहने लगे, 'अच्छी बात है, यही सही। अब मैं तुम्हारे यहां न आया करूंगा, परंतु तुम्हारे ही कारण मेरी यह दुर्गति हुई है। तुम्हारे ही फेर में पड़कर मैं चोर बना, तुम्हारे ही कारण लंपट और तुम्हारे ही कारण मैंने अपने स्त्री-पुत्र तक का मुंह नहीं देखा। आखिर में तुम्हीं...।'

हाराणचंद्र ने जरा देर तक चुप रहकर कहा, 'आज मेरी आंखें खुली हैं।'

अब कात्यायनी भी नरम पड़ी। जरा-सा खिसककर बैठी और बोली, 'भगवान करें कि तुम्हारी आंखें खुलें! हम सब तो नीच जाति की औरतें हैं, निम्न श्रेणी की, परंतु इतना हमें भी ज्ञान है कि पहले आदमी का घर-द्वार है, स्त्री-पुत्र है, बाद में हम हैं। पहले आदमी को खाने-कपड़े का प्रबंध करना चाहिए, उसके बाद शौक और गांजा-भांग आदि की ओर ध्यान देना चाहिए। मैं तुम्हारा बुरा नहीं

चाहती। तुम्हारी भलाई के लिए ही कहती हूं कि तुम अब यहां मत आया करो। अफीम की दुकान में भी अब तुम्हें पैर न रखना चाहिए। तुम शांति से अपने घर में रहो और घर-द्वार देखो। स्त्री-बच्चों के निर्वाह का प्रबंध करो, कोई नौकरी मिल जाए तो कर लो, जिससे तुम्हारे बाल-बच्चों को भूखों न मरना पड़े। बाद में जब तुम्हारी इच्छा हो, तब मेरे यहां आना।'

इतना कहकर कात्यायनी ने शय्या से उठकर बक्स खोला और दस रुपये निकाले, फिर हाराणचंद्र के सामने उन्हें रखकर उसने कहा, 'तुम ले जाओ ये रुपये।'

कात्यायनी को बिना किसी का जवाब दिए हाराणचंद्र मुंह नीचा किए हुए बहुत देर तक बैठे रहे। बाद में सिर हिलाकर उन्होंने कहा, 'रहने दो, मुझे जरूरत नहीं है।'

कात्यायनी मुस्कराई। हाथ से हाराणचंद्र का मुंह ऊपर उठाती हुई वह बोली, 'जिसे कुछ मालूम न हो, उसके सामने जाकर तुम शेखी बघारना। ये रुपये न ले जाओगे तो कल तुम सबको भूखा रहना पड़ेगा, क्या तुम्हें यह मालूम है?'

'क्यों?'

'तुम्हारे घर कुछ नहीं है।'

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ?'

'अभी-अभी तुमने कहा कि बच्चे का आहार छीनकर खा चुके हो।'

'ओह!'

'केवल यही नहीं, तुम्हारे न बताने पर भी मैं सारी बातें जानती हूं। मैं स्वयं तुम्हारे घर जाकर सारी घटनाएं देख आई हूं।'

'क्यों गई थी?'

'हम ठहरी औरत जाति, यह सब देखने की इच्छा होती है। यह सब देखने के बाद समझ-बूझकर हम लोग चलते हैं। तुम लोग जितने बेवकूफ हो, औरत होने पर भी हम उतनी बेवकूफ नहीं हैं। तुम लोगों की औरतें हैं, बच्चे हैं, रिश्तेदार हैं। एक बार गिरने पर खड़े हो सकते हो, पर हम नहीं हो सकते। हम लोगों का कोई नहीं है। हम भले ही भूखों मर जाएं, पर कोई हम पर दया नहीं करेगा। कहा जाता है—जिसका कोई नहीं है, उसका भगवान है, पर हमें उसका भी भरोसा नहीं है। यही वजह है कि हमें सोच-समझकर चलना पड़ता है। अब समझे?'

कात्यायनी को यह सब कहते समय उसे कष्ट अनुभव हो रहा था, जो अस्वाभाविक नहीं है, पर इसे तुरंत उसने छिपा लिया। हाराणचंद्र के चिबुक को हिलाकर बोली, 'मेरी बात समझ गए। ये रुपये अपनी पत्नी के हाथ में देना। कम-से-कम कुछ दिन खा-पी सकोगे। अपने पास मत रखना, समझे?'

हाराणचंद्र ने खोए हुए भाव से कहा, 'हां।'
'रात काफी हो गई है। अब जाने की जरूरत नहीं। यहीं सो जाओ।'

श्री सदानंद चक्रवर्ती को गांव के आधे आदमी सदा भैया कहकर पुकारा करते थे और आधे कहते थे सदा पगला। इस हलुदपुर ग्राम में ही उनका मकान था। उनके पिता विशुद्ध परिपाटी के हिंदू थे। उनका खयाल था कि अंग्रेजी सीखने के बाद आदमी के धर्म-भ्रष्ट हो जाने की आशंका रहा करती है। इसी आशंका से उन्होंने अपने पुत्र को पढ़ना-लिखना नहीं सिखाया। पढ़ने की उन्हें वैसे आवश्यकता भी नहीं मालूम हुई। उनके पास जो चार-छह बीघा जमीन थी, उसी से गुजारा हो सकता था। यह बात नहीं थी कि दूसरे की नौकरी किए बिना रोटियां मिलना कठिन हो जाएगा। इससे उन्होंने सोचा कि बेकार जाति क्यों गंवाई जाए। कोई कहता कि वह संस्कृत जानता है, कोई कहता कुछ नहीं जानता। इस विषय पर मतभेद है, पर सभी यह स्वीकार करते हैं कि वह कुछ सनकी है।

वह खेती-बारी का काम किया करता, भजन गाता और इस द्वार से उस द्वार पर और उस द्वार से इस द्वार पर घूमता-फिरता। मुर्दा श्मशान ले जाने के लिए वह तैयार रहता। दूर के रिश्ते की एक बुआ के अलावा दुनिया में अपना कहने को उसका दूसरा कोई नहीं था। इसलिए गांव-भर के लोगों को उसने अपना बना लिया था। सभी लोग उसके आत्मीय थे, सभी के साथ उसने अपना कोई-न-कोई संबंध बना रखा था। इसी व्यवहार के कारण उसके लिए सभी के घर के दरवाजे सदा खुले रहते।

बचपन में सदानंद के पिता ने कन्या के पिता को बहुत-सा धन देकर उसका विवाह किया था, परंतु भाग्य-दोष से एक वर्ष के भीतर ही वधू की मृत्यु हो गई थी। तब से लेकर आज छह वर्ष बीत गए, वह अकेले ही जीवन व्यतीत करता आ रहा था। रुपये-पैसे का प्रबंध न हो सकने के कारण अथवा अनिच्छावश उसने दुबारा विवाह नहीं किया। इस वंश के लोगों को दहेज देकर विवाह करना पड़ता है। इसलिए जब कोई विवाह की बात छेड़ता, तब वह कहा करता कि इतने रुपये कहां मिल सकेंगे कि विवाह करूं?

आज दोपहर के बाद से ही आकाश में बादलों की उमड़-घुमड़ हो रही थी। सब लोग हाथ-पैर समेटकर अपने-अपने घरों में सिमटें बैठे हुए थे।

रासमणि बुआ ने पुकारकर कहा, 'ललना, घर में एक बूंद पीने का पानी नहीं है। जाओ बिटिया, जल्दी से घाट पर से एक गगरी पानी भर लाओ।'

बगल में गगरी दबाकर ललना गंगाजी के घाट पर पहुंची। जल भरकर दो पग भी वह अग्रसर न हो पाई थी कि मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगीं। ललना तेजी

से पैर बढ़ाती हुई चली। रास्ते में ही सदानंद का मकान था। चौपाल में बैठा हुआ वह भजन गा रहा था। नीचे ही से रास्ता गया हुआ था। ललना उधर से ही होकर लौटी जा रही थी। उसे देखकर सदानंद ने गाना बंद कर दिया। ललना को पुकारकर उसने कहा, 'तुम भीग क्यों रही हो ललना?'

जरा-सा हंसकर ललना ने कहा, 'तुमने गाना क्यों बंद कर दिया?'

सदानंद भी हंसा। हंसी और गीत तो आठों पहर उसके होंठों पर बने रहते थे। उसने संगीतमय स्वर में कहा, 'गीत रुक गया है।' बाद में स्वाभाविक स्वर में कहा, 'जाने दो वह बात। तुम बेकार भीगो मत, जरा देर के लिए यहीं खड़ी हो जाओ।'

बरामदे में जाकर ललना खड़ी हो गई।

कुछ देर ललना के मुंह की तरफ देखने के बाद सदानंद ने कहा, 'खड़ी क्यों हो, घर जाओ।'

'क्यों?'

'बुआ घर पर नहीं हैं, पानी जब और जोर से बरसने लगेगा, तब कैसे जाओगी?'

ललना ने सोचा कि बात यह ठीक ही है। दो कदम वह बढ़ी, बाद में फिर लौट पड़ी।

सदानंद ने कहा, 'क्यों लौट पड़ी?'

'कल रात में मुझे बुखार आ गया था। भीगने पर तबीयत अधिक खराब हो सकती है।'

'तो मत जाओ, यहीं खड़ी रहो।'

अब सदानंद फिर अपनी धुन में गाने लगा।

गगरी भूमि पर रखकर ललना गीत सुन रही थी। मधुर कंठ से निकला हुआ मधुर गीत उसे बहुत ही प्रिय मालूम पड़ रहा था। बीच में ही जब वह रुक गया, तब ललना ने कहा, 'क्यों बंद कर दिया गाना?'

'अब न गाऊंगा।'

'क्यों?'

'अब आगे याद नहीं है।'

ललना थोड़ी मुस्कराई, फिर बोली, 'तब क्यों गाया?'

ऐसे ही गाता हूं। कुछ देर बाद बोला, 'मेघों पर कमल के फूल खिलते हैं, तुमने देखा है?'

ललना हंसकर बोली, 'नहीं, तुमने देखा है?'

'हां, देखा है।'

'कब देखा है?'

'अक्सर देखता हूं। जब आसमान पर बादल छाते हैं, तब देखता हूं।'

सदानंद का गंभीर चेहरा देखकर ललना को हंसी आ गई। आंचल से मुंह दबाकर बोली, 'क्या ऐसा होता है?'

'क्यों नहीं होगा। कमल तो जल में ही खिलता है। बादलों में पानी की कमी नहीं है, तब वहां क्यों नहीं खिलेगा?'

'मिट्टी के अभाव में कमल कैसे खिलेगा?'

सदानंद ने ललना की ओर काफी देर तक देखने के बाद कहा, 'ठीक कहा। शायद इसीलिए सूखता जा रहा है।'

ललना और कुछ नहीं बोली। यह बात सभी लोगों का मालूम थी कि सदा पगला दिन-भर में कितनी असंभव और अप्रासंगिक बातें मुंह से निकाला करता है।

कुछ देर चुप रहने के बाद सदानंद ने फिर कहा, 'क्यों ललना, क्या शारदा अब तुम्हारे घर नहीं आया करता?'

ललना ने दूसरी तरफ मुंह फेर लिया। कदाचित अपना उस समय का मुंह सदानंद को दिखलाने की उसकी इच्छा नहीं थी। सदानंद ने फिर पूछा, 'क्या अब नहीं आता?'

'नहीं।'

'क्यों नहीं?'

'मालूम नहीं।'

सदानंद ने फिर गाना शुरू कर दिया।

उसका गाना समाप्त हो गया, लेकिन वर्षा किसी तरह रुकना ही नहीं चाहती थी। बादल आकाश पर और जोर से चढ़े आ रहे थे। अब ललना ने गगरी उठाकर बगल में दबाई। यह देखकर सदानंद ने कहा, 'यह क्या? कहां जा रही है?'

'घर जा रही हूं।'

'इतनी जोर की बारिश हो रही है, भीगती-भीगती जाओगी तो तबीयत खराब न हो जाएगी?'

'लेकिन क्या करूं?'

ललना जब चली गई तो सदानंद ने फिर गाना शुरू कर दिया।

हाराणचंद्र ने जब गिनकर पूरे दस रुपये पत्नी के हाथ पर रखे, तब शुभदा के मुख पर हंसी विकसित होकर भी न विकसित हो पाई। कुछ खिन्न-सी होकर सिर झुकाए हुए उसने पूछा, 'कहां मिले ये रुपये तुम्हें?'

हाराणचंद्र भी रुपये हंसकर नहीं दे सका। कुछ देर तक निरुत्तर रहने के बाद उसने कहा, 'शुभदा तुम क्या समझ रही हो कि ये रुपये मैं चुराकर लाया हूं?'

शुभदा और भी नाराज हो उठी। उसके पापी अंत:करण में यह बात शायद एक बार आई थी, परंतु इसे क्या मुंह से निकालना उसके लिए संभव था? ईश्वर न करें, बात यह ठीक ही हो, परंतु इस दशा में क्या इन रुपयों को ग्रहण करना उसके लिए उचित है। चोरी का धन खाने से पहले शुभदा स्वयं भूख के मारे प्राण दे सकती है, परंतु और सब लोग? प्राणों से अधिक प्रिय पुत्र...कन्या? शुभदा ने अनुभव किया—इस विषय पर विचार करने का समय अभी नहीं है। इसलिए वे रुपये उसने संदूक में रख दिए।

कुछ-कुछ सुविधा के साथ फिर दिन बीतने लगे। हाराण मुखर्जी आजकल बहुधा हलुदपुर में दिखाई नहीं देते थे। घर आने पर रासमणि कभी पूछ बैठती कि आजकल तू कहां रहा करता है रे?

हाराणचंद्र जवाब देते, 'कितने कार्य रहते हैं मुझे। नौकरी की चिंता में मैं सदा घूमता रहता हूं।'

शुभदा भी समझती थी कि यही संभव है क्योंकि आजकल ये पैसे मांगने के लिए नहीं आया करते। 'कल लौटा दूंगा' यह कहकर अब ये दो आना, चार आना उधार नहीं ले जाया करते, परंतु वास्तव में हाराणचंद्र कहां रहा करते थे, यह बात मुझसे पूछी जाती तो ठीक-ठीक बता देता, क्योंकि यह मैं जानता था कि सारे दिन आहार और विश्राम किए बिना ही वह नौकरी के फेर में घूमा करता था, कितने आदमियों के पास जाकर वह अपनी दुख की कथा सुनाया करता था, कितने आढ़तियों, बल्कि साधारण दुकानदारों के पास जाकर वह प्रार्थना किया करता था कि यदि आज्ञा हो तो मैं आपका बही-खाता लिख जाया करूं, किंतु किसी ने भी उसकी प्रार्थना स्वीकार न की। उस ओर के सभी लोग उसे पहचानते थे। वे सब उसकी कीर्ति की कहानी भी सुन चुके थे। इससे किसी को भी उसका इतना विश्वास नहीं होता था कि वह उसे नौकर रख ले। संध्या हो जाने पर मुंह सुखाए हुए लौटकर जब वे घर आते, तब शुभदा दुखी भाव से पूछती, 'आज भोजन कहां किया तुमने?'

इस सवाल के जवाब में हाराणचंद्र हंसने की कोशिश किया करते। वह कहता, 'क्या भोजन का अभाव है मुझे? कौन नहीं जानता मुझे?'

इस पर शुभदा कुछ न बोलती, वह चुप रह जाती।

क्रमशः उसकी कलसी का जल सूखता जा रहा था, रुपये समाप्त होते जा रहे थे, दो-एक दिन का ही खर्च और था, परंतु मुंह खोलकर शुभदा यह बात स्वामी से कह नहीं सकती थी। किसी से भी वह बात बतलाने की इच्छा उसकी नहीं

थीं। केवल मन-ही-मन वह खर्च चलाने के लिए तरह-तरह की योजनाएं सोचती रहतीं।

आज तीन दिन के बाद बहुत रात बीत जाने पर स्वामी के थके हुए पैरों को दबाते-दबाते शुभदा मन-ही-मन बहुत तर्क-वितर्क करती रही। बाद में बाध्य होकर उसे मुंह खोलना ही पड़ा। वह बोली, 'अब कुछ नहीं है, सब रुपये समाप्त हो गए।'

आंखें बंद कर बहुत ही साधारण भाव से हाराणचंद्र ने कहा, 'दस रुपये चल ही कितने दिनों तक सकते हैं।'

अन्य कोई बात नहीं हुई। दोनों ही रात-भर के लिए चुप हो गए। शुभदा सोचती थी कि कल क्या होगा, यह पूछ लूं, पर पूछ नहीं सकी। बिना कारण अपने को अपराधी समझकर चुप रह गई। वह सोचती रही कि खर्च करते-करते रुपये समाप्त क्यों हो जाते हैं, इसके लिए फटकार सुननी पड़ेगी। वास्तव में फटकार सुन लेने पर शायद वह अपने दोषों का प्रक्षालन कर लेती, पर बदले में सहानुभूति पाने के कारण उसके मुंह से कोई बात नहीं निकली।

दूसरे दिन सवेरा होने से पहले ही हाराणचंद्र चले गए। ललना सदा की भांति घर का काम-काज करने लगी। रासमणि भी, जैसा कि उनका नियम था, स्नान करके आ गईं और मिट्टी के महादेव बनाकर पूजा करने लगीं। केवल शुभदा ही ऐसी थी, जिसके हाथ-पांव एक प्रकार से खाली हो गए थे। मुंह सुखाए हुए वह कहीं बैठ जाती तो वहां से उठकर कहीं खड़ी हो जाती और काफी देर तक चुपचाप खड़ी ही रहती।

ललना ने देखा कि आठ बज रहे हैं, इससे वह बोली, 'मां, आज अभी तक तुम घाट पर नहीं गई? बहुत देर हो गई।'

'अब जा रही हूं।'

कुछ देर के बाद ललना फिर लौटकर आई। उसने मां को फिर वहीं पूर्ववत बैठी हुई देखा, तब आश्चर्य से वह बोली, 'हुआ क्या है मां?'

'कुछ नहीं।'

'तो इस तरह बैठी क्यों हो?'

'क्या करूं?'

'क्यों, स्नान नहीं करोगी? खाना न बनाओगी?'

शुभदा ने अपने दोनों ही कातर नेत्र कन्या के मुख पर जमा दिए। डरते-डरते वह बोली, 'आज कुछ भी नहीं है।'

'क्यों नहीं है?'

'कुछ भी तो नहीं है। घर में मुट्ठी-भर चावल तक नहीं हैं।'

ललना का मुख सूख गया। वह बोली, 'तब क्या होगा मां? लड़के खाएंगे क्या?'

दूसरी ओर मुंह फेरकर शुभदा बोली, 'भगवान जाने!'

कुछ देर बाद ही शुभदा फिर बोली, 'ललना, क्या तू एक बार अपनी विंदो बुआ के पास न हो आएगी?'

'क्यों मां?'

'शायद वे कुछ दें।'

ललना चली गई। शुभदा की आंखों से पानी गिरने लगा। इस तरह की बात उसने आज तक कभी नहीं कही थी। इस तरह भिक्षा मांगने के लिए उसने कन्या को और कभी नहीं भेजा था। यही सोच-सोचकर उसका मन दुखी हो रहा था। उसे लज्जा आ रही थी, साथ ही कुछ-कुछ अभिमान भी हो रहा था। अभिमान किसके ऊपर हो रहा? पूछने पर संभवतः वह स्वामी के मुख का ध्यान करती और ऊपर की ओर उंगली उठाकर कहती, 'उनके ऊपर!'

बड़ी देर तक मुंह पर हाथ रखे हुए शुभदा वहीं बैठी रही। लगभग ग्यारह बज रहे थे। इतने में छलनामयी मिट्टी की एक छोटी-सी गुड़िया हाथ में लिए उसके सारे बदन पर कपड़ा लपेटते-लपेटते और उस हाथ-पैर से हीन धड़ की गुड़िया को माला से सजाते हुए आई और वहीं खड़ी हो गई।

'मां, कुछ खाने को दो।'

शुभदा बेटी के मुंह की तरफ देखने लगी। वह कुछ बोली नहीं।

छलना फिर बोली, 'समय हो गया है मां, खाने को दो।'

तब भी उत्तर नहीं मिला।

इस हाथ की गुड़िया उस हाथ में लेकर छलना जरा और भी ऊंचे स्वर में बोली, 'खाना शायद अभी तक नहीं बना?'

सिर हिलाकर शुभदा बोली, 'नहीं।'

'बना क्यों नहीं? शायद तुम काफी दिन चढ़े तक सोती रही हो?' बाद में उसके मन में न जाने कौन-सी बात आई, वह रसोईघर में गई और अत्यंत ही विस्मित होकर चिल्ला पड़ी, 'शायद अभी चूल्हे में आग भी नहीं पड़ी है?'

शुभदा बाहर से उद्विग्न होकर बोली, 'अब जलाने जा रही हूं।'

बाहर आकर छलना खड़ी हुई। मां का मुख देखकर अब शायद वह भी खिन्न हो गई। पास ही बैठकर वह बोली, 'मां, अभी तक कुछ बना क्यों नहीं?'

'अब बनेगा।'

'मां, आज इतनी उदास क्यों हो?'

इतने में भीतर से रोगग्रस्त माधव ने क्षीण स्वर से पुकारा, 'मां!'

शुभदा बहुत ही उतावली हो उठकर खड़ी हो गई।

छलनामयी भी उठकर खड़ी हो गई। वह बोली, 'मां, तुम बैठो, मैं जाकर माधव के पास बैठती हूं।'

'अच्छा, जाओ बेटी।'

इधर घर से निकलकर ललना भवतारण गंगोपाध्याय के यहां गई और खिड़की के रास्ते से उसने घर में प्रवेश किया, परंतु विंध्यवासिनी वहां नहीं थी, पिछली रात में ही वह ससुराल चली गई थी। उसे अचानक चला जाना पड़ा, वरना एक बार शुभदा से भेंट करके ही वह जाती।

मुंह सुखाए हुए ललना वहां से लौट आई। रास्ते में किसी तरह उसके पैर उठना ही नहीं चाहते थे। गंगोपाध्याय महोदय के घर जाते समय भी लज्जा के भार से वह दबी जा रही थी और उसके पैर उठाए नहीं उठते थे, परंतु वहां से उसे जब खाली हाथ लौटना पड़ा, तब और भी अधिक लज्जा महसूस होने लगी। रास्ते के किनारे पर बड़ी देर तक वह एक जगह खड़ी रही। बाद में न जाने क्या सोचकर उसने दूसरा रास्ता पकड़ लिया और गंगाजी के घाट की तरफ चली। पास ही चक्रवर्ती परिवार का घर था। बाहर गोशाला के पास सदानंद एक बछड़े को तरह-तरह के नामों से पुकार-पुकारकर उसे प्यार कर रहा था। वहीं जाकर ललना पास ही खड़ी हो गई। ललना की तरफ मुंह करके सदानंद ने कहा, 'ललना तुम हो!'

'हां! बुआजी घर में हैं?'

'नहीं, वे अभी ही कहीं गई हैं।'

ललना इधर-उधर करके पीछे हट गई। सदानंद ने बछड़े को छोड़ दिया। ललना के मुंह की तरफ देखते हुए वह बोला, 'क्या बुआजी से कुछ काम था?'

'हां!'

'वे तो घर में हैं नहीं, मुझसे बतलाने से क्या वह न हो सकेगा?'

ललना भी यही बात सोच रही थी, परंतु सदानंद के यह प्रश्न करते ही लज्जा के कारण उसका सारा मुखमंडल लाल हो गया। घर में कुछ खाने को नहीं है, इसलिए आई हूं—छि:! यह बात भी क्या कहने योग्य है? क्या एक दिन खाए बिना न चलेगा। किंतु और सब लोग? शुभदा के मन में भी एक दिन ठीक यही बात आई थी। आज ललना के मन में भी यह बात आई, किंतु उसका स्वर नहीं खुला। जो व्यक्ति कभी इस प्रकार की दशा में पड़ चुका है, वही जानता है कि इसे मुंह से निकालना कितना कठिन होता है। केवल वही यह अनुभव कर सकता है कि एक भला आदमी जब यह बात कहने के लिए किसी के पास जाता है, तब उसके हृदय में कितना आंदोलन, कितना घात-प्रतिघात होता है। बात मुंह

से निकलने से पहले जिह्वा की एक-एक शिखा अपने-आप ही पंगु होकर अंदर-ही-अंदर लिपट जाती है।

ललना मुंह खोलकर कुछ कह न सकी। सदानंद शायद उसके मन का भाव बहुत कुछ भांप गया। उसका मुख देखकर ही सदानंद ने उसके अंत:करण की अवस्था का बहुत कुछ अनुमान कर लिया। इससे उसने ललना का हाथ पकड़ लिया। वह पागल था, सभी लोग जानते थे कि पागल सदानंद की बुद्धि कभी ठिकाने पर नहीं रहती। वह ऐसे कितने ही काम कर डालता था, जो दूसरे लोग नहीं कर सकते थे। जिस काम के लिए दूसरों को संकोच का अनुभव हुआ करता था, उन्हें वह धड़ाके से कर डालता था। जो बात दूसरों की दृष्टि में अमान्य होती, उसे वह बहुधा स्वीकार हो जाती। यही कारण था कि उसने स्वच्छंद भाव से ललना का हाथ पकड़ लिया। हंसते-हंसते वह बोला, 'शायद आज ललना अपने सदा भैया से लज्जा कर रही है। सदा पागल से भी क्या लज्जा करनी होती है?' इतना कहकर उसने हाथ छोड़ दिया और कहा, 'बात क्या है, क्यों नहीं बतलाती हो?'

सदानंद के कंठ का स्वर और उसकी बातों का भाव एक ही तरह का था। हंसते-हंसते भी वह कभी-कभी ऐसी बात कह डाला करता था, जिसे सुनकर आंखों में पानी अपने-आप उमड़ आता था। अस्तु, सदानंद के इस बार के प्रश्न का भी ललना ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब उसने मुंह उठाकर बहुत ही गंभीर भाव धारण कर लिया और कहा, 'क्यों री ललना, कुछ हुआ है क्या?'

नीचा मुंह किए हुए आंखें पोंछकर रुंधे कंठ से ललना बोली, 'मुझे एक रुपया दो।'

सदानंद पहले की तरह, बल्कि पहले से भी अधिक जोर से हंस पड़ा। वह बोला, 'यह बात थी! यह बात भी शायद सदा भाई से कहने लायक नहीं है, परंतु रुपया लेकर तुम करोगी क्या?'

यह बतलाने में भी ललना को लज्जा आ रही थी। जरा-सा इधर-उधर फिराकर लज्जा के कारण वह और भी लाल होकर बोली, 'घर में बाबूजी नहीं हैं।'

सदानंद भीतर घुसा और वहां से लौटकर एक की जगह पांच रुपये लाकर उसने ललना के हाथ पर रख दिए। बाद में वह बोला, 'आदमी की तरह आदमी हो तो उससे लज्जा भी करनी होती है। पागल से क्या लज्जा?' बाद में दूसरी ओर मुंह फेरकर वह जरा-सा हंसा और बोला, 'जब कभी कोई काम पड़े, तब पहले ही आकर दीवाने पागल से कहा करो। क्यों, कहा करोगी न?'

ललना ने जब देखा कि मेरे हाथ पर कई रुपये रख दिए गए हैं, तब वह बोली, 'क्या होगा इतने रुपयों का?'

'रख देने पर सड़ तो जाएंगे नहीं!'

'तो क्या हुआ, इतने रुपयों की जरूरत हमें नहीं है।'

सदानंद ने जब देखा कि ललना रुपये लौटाने जा रही है, तब उसने उसका हाथ फिर पकड़ लिया। कातर भाव से वह बोला, 'छिः! बचपना मत करो। ये रुपये यदि काम न आएं तो और किसी दिन आकर इन्हें लौटा जाना। यह किसी से बतलाना भी नहीं। अगर बतलाना बहुत जरूरी हो तो कहना कि पागल सदानंद ने एक आना प्रति रुपया के हिसाब से ब्याज पर कर्ज दिया है।'

दिन का कुल समय इसी तरह बीत गया। सब लोगों ने भोजन किया, किंतु शुभदा ने उस दिन जल तक ग्रहण नहीं किया। रासमणि ने बहुत बकझक की, ललना ने बहुत आग्रह किया, परंतु उस दिन किसी तरह भी उसने कोई चीज मुंह में नहीं डाली।

संध्या हो जाने के बाद हाराणचंद्र ने घुटनों तक धूल लपेटे हुए घर में प्रवेश किया। माथे के बाल रूखे होकर अस्त-व्यस्त हो गए थे। उनकी धोती की लांग में एक ओर तो लगभग दो सेर चावल थे और एक ओर थोड़ा-सा नमक, थोड़े-से आलू-परवल तथा और न जाने कौन-कौन सी चीजें बंधी हुई थीं। वह खोलते हुए शुभदा रो पड़ी। चावल भी एक ही तरह का नहीं था, कोई महीन, मोटा, अरबा, सब मिला हुआ था। शुभदा ने अच्छी तरह समझ लिया कि मेरे स्वामी ने हम लोगों के लिए यह सब द्वार-द्वार पर भिक्षा मांगकर इकट्ठा किया है।

संध्या होने से थोड़ी देर पहले माधव ने कहा, 'बड़ी दीदी, शायद अब मैं अच्छा न हो सकूंगा।'

ललना ने स्नेहपूर्वक भाई के माथे पर हाथ रखकर उसे प्यार किया और बोली, 'क्यों भैया, तुम अच्छे क्यों न हो जाओगे? दो ही दिनों के बाद तुम अच्छे हो जाओगे।'

'कितने दो दिन बीत गए दीदी, कहां अच्छा हुआ मैं?'

'इस बार तुम अच्छे हो जाओगे।'

'अच्छा, अगर इस बार भी मैं अच्छा नहीं हुआ तो...?'

'नहीं, इस बार तुम जरूर अच्छे हो जाओगे।'

'अगर न होऊं?'

ललना ने भाई के दोनों ही क्षीण और दुर्बल हाथ अपने हाथ में ले लिए। बाद में कुछ गंभीर होकर वह बोली, 'छिः! इस तरह की बात मुंह पर न आने देनी चाहिए।'

माधव ने और कुछ नहीं कहा, वह चुप रह गया।

थोड़ी देर के बाद ललना ने कहा, 'माधव, क्या कुछ खाएगा तू?'

सिर हिलाकर माधव ने कहा, 'नहीं।'

थोड़ी देर के बाद ही दवा खिलाने का समय हो गया। कांच के एक नन्हे से गिलास में जरा-सा चूर्ण डालकर ललना ने उसे माधव के होंठों से लगाया और बोली, 'इसे खाओ!'

माधव ने पहले की तरह सिर हिलाया। उसने सूचित किया कि दवा मैं किसी तरह नहीं खाऊंगा। ऐसा वह प्राय: किया करता था। दवा के कड़वेपन के कारण वह उसे खाने में बहुत अधिक आपत्ति किया करता था, परंतु जरा-सा जोर देने पर बाद में ही उसे खा लेता था।

सदा की तरह दवा खाने के संबंध में जोर देती हुई ललना बोली, 'छि: इस प्रकार की जिद्द न करनी चाहिए, दवा खा लो।'

गिलास हाथ में लेकर माधव ने सारी दवा नीचे उड़ेल दी।

माधव ने ऐसा और कभी नहीं किया था। उसके इस कृत्य से ललना विस्मित और क्रुद्ध हुई, 'यह क्या किया तुमने माधव?'

'अब मैं दवा न खाऊंगा।'

'क्यों?'

'क्या करूंगा बेकार दवा खाकर? अच्छा तो मैं होऊंगा नहीं, बेकार दवा खाकर क्या करूं?'

'यह किसने कहा कि तुम अच्छे नहीं होओगे?'

माधव ने इस बात पर कोई उत्तर नहीं दिया।

ललना पास आ गई। रोग शय्या के पास बैठकर वह माधव के शरीर पर हाथ फेरने लगी। बाद में वह बोली, 'माधव, क्या तुम मेरी बात नहीं मानोगे?'

बालसुलभ अभिमान से आंखों में आंसू भरकर उसने कहा, 'मेरी बात कोई मानता नहीं, मैं भी किसी की बात न मानूंगा।'

'कौन तुम्हारी बात नहीं मानता?'

'मानता ही कौन है? मेरे एक बात पूछने पर मां अप्रसन्न होती हैं, बाबूजी अप्रसन्न होते हैं, बुआजी बोलती ही नहीं, तुम भी नाराज होती हो। तब मैं कोई बात क्यों सुनूं?' माधव के नेत्रों से आंसू टपकने लगे।

ललना ने स्नेहपूर्वक उसके आंसू पोंछ दिए। वह बोली, 'मैं मानूंगी तुम्हारी बात।'

'तो बताओ, क्या मुझे सदा इसी प्रकार चारपाई पर पड़ा रहना होगा? मैं कभी अच्छा होऊंगा या नहीं?'

'अच्छे क्यों न होओगे भैया?'

'तो कब... ?'

ललना का होंठ जरा-सा कांप उठा। वह जरा भी मुंह न खोल सकी।

माधव ललना के मुंह की तरफ थोड़ी देर देखता रहा। बाद में उसने कहा, 'बड़ी दीदी, हमारे छोटे भाई यदु की तबीयत खराब भी, परंतु वह अच्छा नहीं हो सका। इसी तरह पड़े-पड़े वह मर गया था। बाबूजी रोए, मां रोईं, बुआजी रोईं, घर के सभी लोग रोए। मां आज भी रोया करती है, परंतु यादव लौटकर आया नहीं। उसी तरह अगर मैं भी मर जाऊं... ?'

दोनों हाथों से ललना ने अपना मुंह ढक लिया। अगर और समय होता तो वह माधव की डांटती, उसका मुंह दबा देती, परंतु उस समय वह ऐसा नहीं कर सकी। माधव भी कुछ देर तक चुप रहा। बाद में उसने फिर कहा, 'क्यों बड़ी दीदी, बतलाती क्यों नहीं हो? मैं मर जाऊंगा तो क्या होगा?'

ललना ने मुंह पर से हाथ नहीं हटाया और कहा, 'कुछ नहीं, हम लोग केवल रोकर रह जाएंगे।' इस समय शायद वह रो रही थी।

माधव कुछ समझ पाता था या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता, परंतु आज उसने मानो यह निश्चय कर रखा था कि अपनी सारी शंकाओं का समाधान किए बिना छोड़ेगा नहीं। कितने दिनों से वह बहुत बातें पूछने के लिए व्याकुल था। इससे वह फिर बोला, 'दीदी, कहां जाना होता है मरने के बाद?'

ऊपर की ओर ताकती हुई बोली, 'वहीं, आकाश के ऊपर।'

'आकाश के ऊपर!' बालक बहुत ही विस्मित हुआ। उसने कहा, 'परंतु वहां मैं रहूंगा किसके पास?'

दूसरी तरफ ताकती हुई ललना बोली, 'मेरे पास।'

माधव संतुष्ट हो गया। हंसकर बोला, 'तब ठीक है। अच्छा, क्या वहां हमारा घर है?'

'है।'

'तब तो ठीक है। हम दोनों वहां आराम से रहेंगे।'

'हां।' ललना ने मन-ही-मन यही प्रर्थना की।

माधव ने दीदी का मुंह हाथ से घुमाते हुए पूछा, 'बड़ी दीदी, वहां पर मैं अपनी इच्छानुसार चीजें खा सकता हूं?'

'हां।'

'वहां अनार हैं?'

'हैं।'

बालक ने हंसकर करवट बदल ली। मानो इतना आनंद वह एक साथ उपभोग नहीं कर सकता। पुनः पूछा, 'दीदी, हम वहां कब जाएंगे?'

'माधू !'

'क्या है दीदी?'

'मां को छोड़कर तू कैसे जाएगा?'

'क्यों, मां भी जाएगी।'

'अगर न गई तो?'

'मैं बुलाकर ले चलूंगा।'

'फिर भी न गई तो?'

अब माधव उदास होकर बोला, 'दीदी, क्या मां नहीं जाएगी?'

'जाएगी, पर देर से।'

'ठीक है, हम लोग पहले चलेंगे, इसके बाद मां जाएगी।' कुछ देर रहने के बाद उसने कहा, 'मां से क्यों न पूछ लिया जाए।'

'नहीं, मां से पूछने पर न वह जाएगी और न मुझे जाने देंगी।'

डरकर माधव ने कहा, 'तब नहीं कहूंगा। तुम मुझे दवा पिलाकर चली जाओ। मैं सो जाऊंगा।'

दवा, बतासा और पानी पीकर माधव अपने सुख की कल्पना में निमग्न हो गया। वहां जाकर वह क्या-क्या करेगा। घूमेगा, अनार तोड़कर खाएगा। दो-चार तोड़कर मां के पैर के पास फेंकेगा और भी न जाने कितना कुछ करेगा—यही सब सोचते-सोचते वह सो गया।

और ललना? वह भी उस रात के लिए अदृश्य हो गई। बुआ रासमणि, मां शुभदा और पिता हाराणचंद्र सभी उसे बुलाते रहे, पर उसने दरवाजा नहीं खोला। जवाब दिया, 'मेरा सिरदर्द कर रहा है। मुझे आप लोग तंग न करें।'

दूसरे दिन से माधव के स्वभाव में परिवर्तन आ गया। एक तो वह यों ही शांत था, दूसरे उसमें कुछ और भी शांति आ गई। अब वह दवा खाने में आपत्ति नहीं करता था। पहले तो किसी-किसी दिन वह अकड़ भी जाया करता था। कभी कहता, वह खाऊंगा, वह न खाऊंगा? परंतु आजकल उसमें ये सब बातें नहीं रह गई थीं। आजकल वह सदा ही प्रसन्न रहता था। मां जब कभी पूछती, 'माधव, क्या तू कुछ खाएगा?'

तब वह कहता, 'लाओ दो।'

'क्या दूं?'

'जो भी हो—लाओ!'

जब कभी चारपाई के पास जाकर बड़ी दीदी बैठ जाती, तब क्या पूछना था। भाई-बहन में चुपके-चुपके बहुत-सी बातें होतीं, बहुत-से विषयों के संबंध में परामर्श होता, किंतु जैसे ही कोई तीसरा आदमी वहां पैर रखता, वे चुप हो जाते।

इधर चार-छह दिन से हाराणचंद्र के परिवार के लोगों में उतना कलह नहीं होता था। जब किसी तरह की कठिनाई मालूम पड़ती, ललना दो-एक रुपये निकालकर दे देती। शुभदा जानती थी कि ये रुपये कहां से आ रहे हैं। रासमणि समझती थी कि रुपये हाराण कहीं से लेकर आ रहा है। इधर हाराणचंद्र सोचते थे कि बुरा ही क्या है? रुपये जब कहीं से आ रहे हैं तो आते रहें, मैं ही कहां से लेकर आऊंगा? परंतु एक बात प्राय: उनके मन में आया करती थी। वह बात थी अफीम की कमी के संबंध की। किसी-किसी दिन उन्हें इस बात का डर होता था कि मानो अफीम खाने की आदत बिलकुल ही छूटी जा रही है, परंतु उसे छोड़ देने के सिवा उन बेचारों के पास और उपाय ही क्या था? वे सोचते कि अपनी इस आदत को अगर मैं बहाल ही रखना चाहूं तो उसके लिए अफीम कहां मिलेगी मुझे? जिस तरह भी हो और जो भी कर्म करने से हो, मुझे जब पेट भर अन्न मिलता जा रहा है, तब अफीम के लिए मैं अपने मन को खराब न करूंगा। अच्छे दिन आने पर फिर सब ठीक हो जाएगा। अभी मैं जैसा हूं, वैसा ही रहूंगा।

कुछ दिनों के बाद सदानंद की बुआ ने एक दिन आग्रह किया कि भैया, मुझे एक बार काशी घुमाकर ले आओ। कब मर जाऊं, इसका ठौर नहीं है। इस जीवन में कम-से-कम एक बार काशी विश्वेश्वरनाथ के दर्शन तो कर लूंगी।

सदानंद बुआ की कोई भी बात मानने में आगा-पीछा नहीं किया करता था। यह बात मानने में भी उसने आना-कानी नहीं की। दो ही एक दिन के बाद काशी की यात्रा निश्चित हुई। जिस दिन उसकी यात्रा थी 'ललना-ललना' पुकारता हुआ वह सीधा ऊपर चला गया। ललना उस समय ऊपर ही थी। सदानंद को आता देखकर वह उठकर खड़ी हो गई। सदानंद पॉकेट में पचास रुपये लिए हुए था। उन्हें निकालकर उसने एक तकिए के नीचे रख दिया। बाद में उसने कहा, 'आज हम लोग काशी जा रहे हैं। कब तक लौटेंगे, यह कुछ ठीक नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर ये रुपये खर्च कर लेना।'

आश्चर्य करके ललना उठी, 'इतने रुपये!'

'पचास रुपये कुछ बहुत नहीं होते हैं। देखने में ये अधिक जरूर मालूम होते हैं, लेकिन खर्च के समय इतने ज्यादा न मालूम पड़ेंगे।'

'लेकिन इतने...!'

वह वाक्य समाप्त करने का अवसर न देकर सदानंद ने हाथ से एक प्रकार का इशारा दिया और वह एकबारगी नीचे आकर रसोईघर में शुभदा के पास जा बैठा। उसने कहा, 'चाचीजी, आज हम लोग काशी जाएंगे।'

यह बात शुभदा ने सुनी थी। उसने कहा, 'कब तक लौटेंगे?'

'यह मैं कैसे कहूं? परंतु बुआजी जब अच्छी तरह दर्शन आदि कर लेंगी, तब शायद लौट आएंगे।'

एक लंबी सांस लेकर शुभदा ने कहा, 'अच्छी बात है भैया, मैं आशीर्वाद देती हूं कि तुम कुशलतापूर्वक यह यात्रा समाप्त कर सको।'

जोर से हंसकर सदानंद वहां से चलता हुआ। दूसरे दिन ललना ने आधे रुपये तो अपने पास रख लिए और आधे माता को दे दिए। उसने कहा, 'मां, जाते समय सदा भैया ये रुपये देते गए हैं।'

नेत्रों को विस्फारित करके शुभदा वे रुपये गिनने लगी। उन्हें गिन चुकने के बाद बेटी की ओर देखकर उसने कहा, 'शायद उस जन्म में सदानंद मेरा कोई था!'

सिर हिलाकर ललना ने कहा, 'शायद!'

'इतने रुपये क्या आदमी किसी को दे सकता है?'

ललना ने उत्तर नहीं दिया।

'ललना, क्या सदानंद पागल है?'

'क्यों?'

'तब वह ऐसा क्यों करता है?'

'दुखिया का दुख देखकर दुखी होना क्या पागल का काम है?'

'तब लोग उसे पागल क्यों कहा करते हैं?'

जोर से हंसकर ललना ने कहा, 'लोग यों ही कहा करते हैं।'

हाराण मुखर्जी के परिवार में आजकल एक प्रकार से कोई भी क्लेश नहीं था।

भोजन-वस्त्र आराम से लोगों को मिल जाया करता, परंतु दस आदमी दस तरह की बातें कहने लगे।

कोई कहता, इस साले हाराण ने नंदी महोदय के बहुत-से रुपये खा लिए हैं, कोई कहता, यह साला आजकल बड़ा आदमी बन बैठा है। कोई कहता, कुछ है नहीं, दोनों जून चूल्हा नहीं जलता। इसी प्रकार जिसके मुंह में जो कुछ आता, वह वही कह जाता। जो लोग पराए थे, उन्हें हाराणचंद्र के संबंध में कुछ कम कौतूहल था, परंतु जिन लोगों से कुछ आत्मीयता थी, वे ही अधिक कौतूहल में आकर मुखोपाध्याय परिवार के संबंध में छोटे-बड़े दोष निकालने का प्रयत्न करने लगे।

एक दिन दोपहरी में एकाएक कृष्णप्रिया प्रकट हुईं। हाराणचंद्र के घर में पैर रखते ही उन्होंने कहा, 'कहो बहू, क्या हो रहा है? भोजन आदि हो गया है न?'

शुभदा ने कहा, 'हां, अभी-अभी हुआ।'

तब पान के साथ तमाल-पत्र कूंचते-कूंचते और पीक फेंकते-फेंकते कृष्णा देवी एक उपयुक्त स्थान पर बैठ गईं। उन्होंने कहा, 'क्यों बहू, हाराण आजकल क्या काम कर रहा है?'

'करेंगे क्या, नौकरी आदि प्राप्त करने के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं।'

'तो गृहस्थी का खर्च कैसे चल रहा है?'

शुभदा ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

कृष्णा ने फिर कहा, 'लोग कहा करते हैं कि हाराण मुखर्जी ने नंदी बाबू के यहां के बहुत-से रुपये मार लिए हैं। आजकल वह बड़ा आदमी हो गया है, उसे खाने की क्या चिंता है? परंतु मुझे तो सबकुछ मालूम है, इसीलिए मैं कह रही हूं कि गृहस्थी का खर्च किस तरह चलता है आजकल?'

टालमटोल करके शुभदा ने कहा, 'यों ही चल जाता है किसी प्रकार।'

'ब्राह्मणपाड़ा की जो हारामजादी कात्ती है, उसी की बदौलत तो यह दुर्घटना हुई है। मन में आता है कि उस मुंहजली को गंड़ासे से काटूं।'

इस बात की ओर कर्णपात तक न करके शुभदा ने कहा, 'क्यों ननदजी, तुम्हारा भोजन हो गया है?'

'हां बहन, मैं भोजन कर चुकी हूं, परंतु उसी पापिन के कारण हुआ है सर्वनाश। हाराण बिलकुल नासमझ आदमी है न, इसीलिए इसने उसके जाल में पैर डाले थे। तीन-तीन हजार रुपये जब उसने मारे तो सौ-दो-सौ रुपये लाकर तो स्त्री के हाथ पर रख देता। उस अवस्था में भी तो कुछ दिन निर्वाह हो सकता था परिवार का।'

शुभदा ने कहा, 'क्यों दीदी, आज क्या बनाया था खाने में?'

'खाने में क्या बनाया बहन! आज देर हो गई थी, इसलिए केवल खिचड़ी बनाई थी मैंने और कुछ बना नहीं सकी, परंतु सोचने की बात है कि उस रांड़ को जरा ईश्वर तक का भय न हुआ। बेचारे ने दो रुपयों के लिए जब इतने हाथ-पैर जोड़े, तब जाकर उसने बक्से से निकालकर दिया, परंतु क्या भगवान कहीं चले गए हैं। ब्राह्मण को जब उसने इस तरह मटियामेट कर डाला है, तुम्हारी जैसी सती स्त्री के आंसू बहाए हैं, तब क्या इसके लिए उसे कोई दंड न मिलेगा? तुम देख लेना, मैं कहे देती हूं...।'

शुभदा उतावली होकर बोल उठी, 'क्यों दीदी, विंदो इस तरह अचानक क्यों ससुराल चली गई?'

'शायद उसके श्वसुर को एकाएक हैजा हो गया था, परंतु अब तुम गृहस्थी का प्रबंध कैसे करोगी?'

'मैं क्या कर सकती हूं! भगवान जो कुछ करेंगे, वही होगा।'

कृष्णा ने जरा लंबी सांस लेकर कहा, 'यह तो होगा ही, परंतु सबसे अधिक चिंता का कारण है तुम्हारी छोटी लड़की। धीरे-धीरे बड़ी हो गई है। अब यदि उसका विवाह नहीं होगा तो बुरा भी मालूम पड़ेगा और दस आदमी दस तरह की बातें कहेंगे। उसके विवाह के लिए क्या कोई प्रबंध हो रहा है?'

शुभदा जब मुरझाए हुए मुख से एक लंबी सांस ले रही थी। तब ललना आकर उस जगह पर पहुंच गई। छलना की चर्चा कुछ तो वह सुन पाई थी और कुछ अनुभव करके वह समझ गई थी कि बंगाली की कन्या का विवाह हुए बिना निर्वाह नहीं है, चाहे माता-पिता उसका विवाह सुख से करें या दुख से करें। विवाह न कर सकने पर संभवत: जाति से अलग होना पड़ता है।

शुक्ल पक्ष की एकादशी की रात के दो पहर बीत चके थे। भागीरथी के तट पर एक टूटा-फूटा शिवजी का मंदिर था। आस-पास झाड़ियां उगी होने के कारण उसका प्राय: आधा भाग छिपा हुआ था। उसी मंदिर के चबूतरे पर एक बाईस वर्ष का युवक बहुत देर से बैठा हुआ था। मानो वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा था।

युवक का नाम था शारदाचरण राय। उस हलुदपुर नामक ग्राम के ही एक धनवान आदमी का वह एकमात्र पुत्र था। पढ़ा-लिखा कहां तक था वह, यह तो ठीक-ठीक मालूम नहीं है, परंतु उसके बुद्धिमान, व्यवहारकुशल तथा काम-काज में निपुण होने के संबंध में किसी को संदेह नहीं था। पिता के वृद्ध हो जाने के कारण घर-गृहस्थी का सारा काम-काज वह स्वयं चलाता आ रहा था। शारदाचरण की माता जीवित नहीं थीं, वे जब तक संसार में थीं, तब तक हाराण मुखर्जी के परिवार के साथ उनके परिवार की बड़ी ही घनिष्ठ आत्मीयता थी। रासमणि तथा शारदा की माता में परस्पर बड़ा प्रेम था। अब उनके जीवन का भी अंत हो गया था, साथ-ही-साथ इन दोनों परिवारों के पारस्परिक प्रेम तथा आत्मीयता का भी अंत हो गया था। विशेषत: शारदाचरण के पिता राममनोहर बाबू दरिद्र के साथ किसी प्रकार का भी कोई संबंध रखना उचित नहीं समझते थे।

यहां जरा-सा ललना का हाल बताना उचित होगा। बात यह है कि इस कथानक में उससे हमारा बड़ा ही मतलब है। ललना जब छोटी बालिका थी, तभी से शारदा से उसकी बहुत बनती थी। बाद में ललना का विवाह हुआ। हाराण बाबू की आर्थिक अवस्था उस समय शोचनीय नहीं थी। जहां तक संभव था, खूब धूमधाम के साथ उन्होंने बड़ी कन्या का विवाह किया था, परंतु दुर्भाग्यवश दो वर्ष के भीतर ही विधवा होकर वह पिता के घर वापस लौट आई।

ललना का शारदाचरण के प्रति जो प्रेम था, उसके विधवा हो जाने पर वह

स्थाई रहा। उस अनुराग में कमी न होकर दिन-दिन वृद्धि ही होती गई। जैसे-जैसे उन दोनों की अवस्था बढ़ने लगी, वैसे-ही-वैसे वे यह भी अनुभव करने लगे कि हम दोनों में जो प्रेम है, उसका परिणाम कुछ सुखदाई न होगा। शारदाचरण भले ही इस बात का अनुभव करता रहा हो, किंतु ललना अब इसे भली-भांति हृदयंगम करने लग गई थी। इसका फल यह हुआ कि ललना ने धीरे-धीरे प्रेम की दुकान बंद करनी आरंभ कर दी। अब ललना शारदाचरण के पास नहीं जाती थी। स्वयं उसे भी अपने पास आने को नहीं कहती थी। वह उसके प्रति किसी प्रकार का प्रेम-प्रदर्शन भी नहीं किया करती थी। पहले की तरह आजकल गुप्त रूप से पत्र भी वह शारदाचरण के लिए नहीं लिखा करती थी। ललना के इस प्रकार के परिवर्तित मनोभाव के कारण शारदाचरण बड़े संकट में पड़ गया था। पहले तो ललना को बहुत समझाया, उसके इस परिवर्तन के संबंध में उसने बहुत ही असंतोष प्रकट किया और उसकी उदासीनता का अनौचित्य सिद्ध करने के लिए बहुत-सी युक्तियां प्रदर्शित कीं, किंतु ललना अपने दोनों ही कान बंद किए रही, अंत में एक दिन उसने साफ कह ही दिया कि अब मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।

शारदाचरण भी उस दिन नाराज हो उठा। उसने कहा, 'अब यदि नहीं अच्छा लगता तो इतने दिनों तक क्यों अच्छा लगता रहा?'

'अभी तक नासमझ थी, अब बड़ी हो गई हूं।'

'बड़ी हो जाने पर शायद यह न अच्छा लगना चाहिए?'

'नहीं।'

'लेकिन जरा सोचकर देखो...।'

उसकी बात खत्म भी न हो पाई कि ललना बोल उठी, 'अब समझने-बूझने का मतलब नहीं है। तुम मुझे अब बुरी सलाह मत दो।'

शारदाचरण क्रुद्ध हो उठा। उसने कहा, 'तो क्या मैं तुम्हें बुरी राय दिया करता हूं?'

'कुपरामर्श नहीं देते तो क्या करते हो?'

'देता हूं?'

'हां देते हो।'

'तो आओ, आज हम-तुम अपने सारे संबंधों का अंत कर दें।'

'अच्छी बात है।'

'इस जीवन में अब तुमसे बातें न करूंगा।'

'न करना।'

यह बातचीत हो जाने के बाद वे दोनों अपनी-अपनी राह चले गए। रास्ते-

भर शारदाचरण गरजते-गरजते गया। इधर ललना ने आंखें पोंछते-पोंछते सारा रास्ता तय किया।

यह आज से चार वर्ष पहले की बात थी। चार वर्ष के बाद शारदाचरण आज फिर उस टूटे हुए शिवजी के मंदिर में ललना से मिलने की आशा से आकर बैठा था। पहले की बातों को वह एक तरह से भूल चुका था। अगर भूल नहीं चुका था तो भूलता जा रहा था। ललना ने ही अनुरोध करके शारदाचरण को फिर यहां बुलाया था। यही कारण था कि पहले की बातें एक-एक करके फिर उसके मस्तिष्क में उदित हो चली थीं।

शारदाचरण के मन में बहुत-सी बातें आने लगीं। वह सोचने लगा—ललना आज चार वर्ष के बाद फिर आएगी, मेरे पास बैठेगी और मुझसे बातें करेगी। शारदा का अंत:स्थल मानो कांप उठा। आनंद के कारण मानो उसे थोड़ा-सा रोमांच भी हो आया। उसके मन में आया, 'अब क्या बात है ? क्यों आएगी वह मेरे पास ? ऐसे समय में यहां आने के लिए मुझसे क्यों अनुरोध किया ? मेरा-उसका क्या संबंध है ?'

रात का एक बज रहा था। एक स्त्री घूंघट से मुंह ढके हुए उसी रास्ते से चली आ रही थी। उसकी तरफ निगाह जाते ही शारदाचरण ने सोचा—क्या यह ललना है ? ललना ही तो है, परंतु अब यह बहुत बड़ी हो गई है।

ललना पास आकर खड़ी हो गई। शारदाचरण ने संकोच त्यागकर कहा, 'बैठो।'

आज बहुत दिनों के बाद वे दोनों एक-दूसरे की ओर मुंह करके चंद्रमा के प्रकाश में उस शिवजी के भग्न मंदिर के चबूतरे पर बैठे रहे। बहुत देर तक कोई किसी प्रकार की बात मुंह से नहीं निकाल सका। बाद में साहस करके शारदाचरण ने कह ही डाला, 'मुझे यहां किस आशय से बुलवा भेजा है तुमने ?'

मुंह ऊपर करके ललना बोली, 'मेरा एक काम है।'

'क्या काम है।'

'बतलाती हूं।'

फिर बड़ी देर तक नि:स्तब्धता रही। तब शारदाचरण ने कहा, 'क्यों ? कुछ बतलाया तो नहीं तुमने ?'

ललना ने कहा, 'अच्छा बतलाती हूं। पहले तुम मुझे प्यार करते थे, क्या अब भी तुम्हारा प्रेम मुझ पर है ?'

जिस भाव-भंगिमा से यह प्रश्न किया गया था, उसके कारण शारदाचरण को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने कहा, 'यह बात पूछने का तुम्हारा क्या आशय है ?'

'आशय है।'

'अगर मैं कहूं—हां, प्यार करता हूं।'

मुस्कराकर लज्जित भाव से ललना बोली, 'मेरे साथ विवाह करोगे?'

शारदाचरण जरा-सा पीछे हटकर बैठा। वह बोला, 'नहीं!'

'क्यों नहीं करोगे?'

'तुम्हारे साथ विवाह करने पर मेरी जाति चली जाएगी।'

'मान लो कि जाति चली ही गई, तो क्या होगा?'

'खाऊंगा क्या?'

'खाने के लिए तुम्हें चिंता न करनी होगी।'

'परंतु पिताजी को यह काम पसंद न होगा।'

'पसंद होगा। तुम उनकी एकमात्र संतान हो, अगर चाहो तो उन्हें पसंद करने के लिए बाध्य कर सकते हो।'

कुछ देर के बाद शारदाचरण ने कहा, 'तो भी यह संभव नहीं है।'

'क्यों?'

'इसके बहुत-से कारण हैं। मान लो कि पिताजी किसी तरह मान लें, परंतु हमारा-तुम्हारा विवाह होते ही मैं जातिच्युत हो जाऊंगा। जातिच्युत होकर इस हलुदपुर में निबाह करना हमारे लिए सुखकर नहीं होगा। इधर मेरे पास इतना धन भी नहीं है कि तुम्हें लेकर कहीं अन्यत्र मैं चला जाऊं और आनंद से वहीं रहूं। इसके सिवा हमारे-तुम्हारे संबंध की बात खत्म हो चुकी है, वह अब खत्म होकर ही रहे। ऐसी ही मेरी इच्छा है और यही मंगल का भी कारण है।'

कुछ देर तक मौन रहने के बाद ललना ने कहा, 'अच्छी बात है। ऐसा ही सही, परंतु क्या तुम मेरा एक उपकार कर सकोगे?'

'कहो, अगर मेरे करने योग्य होगा तो कर दूंगा।'

'कार्य वह तुम्हारी शक्ति से परे नहीं है, परंतु तुम करोगे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती।'

'बतलाओ, अपनी शक्ति के अनुकूल भरसक प्रयत्न करके मैं देखूंगा।'

'मेरी बहन छलना के साथ तुम विवाह कर लो।'

जरा-सा हंसकर शारदाचरण ने कहा, 'क्यों? उसके लिए कोई वर नहीं मिल रहा है?'

कहां मिल रहा है? हम लोग दरिद्र हैं। कौन इतना उदार व्यक्ति है, जो आसानी के साथ दरिद्र के घर में विवाह करेगा? केवल यही एक कठिनाई नहीं है। हम लोग कुलीन हैं, अन्य अकुलीन वर मिल सकते हैं, पर तब जाति को तिलांजलि देनी होगी। तुम हमारे अनुकूल घराने के हो, इससे तुम यदि विवाह कर लो तो सभी तरह की कठिनाइयां दूर हो सकती हैं। बतलाओ, करोगे विवाह?'

'मैं पूर्णरूप से पिता की आज्ञा के अधीन हूं। उनकी सम्मति के बिना मैं कुछ नहीं कह सकता।'

'तो उनकी स्वीकृति लेकर विवाह कर लो।'

'मुझे जहां तक मालूम है, इस विवाह के लिए वे अपनी स्वीकृति नहीं देंगे।'

ललना ने दुखी भाव से कहा, 'वे देंगे क्यों नहीं अपनी स्वीकृति?'

शारदाचरण ने कहा, 'तो मैं साफ समझा देता हूं। छिपाने से कोई लाभ नहीं है। मेरे पिताजी कुछ लालची आदमी हैं। उनकी इच्छा मेरा विवाह करके कुछ धन प्राप्त करने की है। तुम्हारे यहां कुछ मिलेगा नहीं, यह निश्चय है। इससे विवाह भी न हो सकेगा।'

बहुत विह्वल होकर ललना बोली, 'हम लोग दरिद्र हैं, कहां पाएंगे देने को। इसके सिवा धन का तुम्हें प्रयोजन क्या है, धन तो काफी है तुम्हारे पास।'

दुखित भाव से धीरे-से हंसकर शारदाचरण ने कहा, 'यह बात तो मैं समझा हूं, परंतु वे न समझेंगे इसे।'

'अगर तुम समझाकर कहोगे तो वे जरूर ही समझ जाएंगे।'

'मैं केवल एक बार उनसे कहूंगा, समझाकर न कह सकूंगा।'

ललना ने अत्यंत ही दुखित होकर कहा, 'तब कैसे काम बनेगा?'

'इसके लिए मैं क्या करूं?'

'तो शायद तुम्हारी ही इच्छा नहीं है विवाह करने की।'

'नहीं।'

'छलना जैसी कन्या तुम्हें आसानी से मिल सकेगी। वह सुंदर है, बुद्धिमति है, काम-काज में निपुण है। इससे एक दरिद्र का उपकार हो जाएगा, एक ब्राह्मण की जाति और वंश मर्यादा की रक्षा हो जाएगी, मैं भी आजन्म तुम्हारे साथ बिकी-सी रहूंगी। बताओ, क्या तुम यह विवाह कर सकोगे?'

'पिताजी जो कुछ कहेंगे, वही मैं करूंगा।'

'आज मैं तुमसे सब बातें कहे डालती हूं। इस जन्म में कदाचित् फिर इन्हें कहने का अवसर न पाऊंगी। इससे मैं कह रही हूं, तुमसे मैंने कभी लज्जा नहीं की, आज भी न करूंगी। सब बातें साफ-साफ कह देती हूं। तुम्हें मैं सदा से प्यार करती आई हूं, आज भी प्यार करती हूं। यह बात पहले एक बार कही थी। बहुत दिनों के बाद आज फिर एक बार और आखिरी बार कह रही हूं। तुम मेरे एकमात्र अनुरोध की रक्षा नहीं कर सके। कदाचित मेरा यह आखिरी अनुरोध है, जो होना था, वह हुआ। ऐसा और कभी न होगा। तुम्हें मैंने व्यर्थ इतना कष्ट दिया, इसके लिए तुम मुझे क्षमा कर देना।'

शारदाचरण ने मन-ही-मन क्लेश का अनुभव किया। उसने देखा कि ललना

चली जा रही है। इससे उसने कहा, 'इस संबंध में मैं पिताजी से अनुरोध करूंगा।'

उसकी ओर मुंह फेरे ही ललना ने कहा, 'करना।'

'किंतु मैं पिता की आज्ञा के अधीन हूं।'

ललना चलते-चलते ही बोली, 'यह भी सुन चुकी हूं।'

'अच्छी बात है।'

'ललना मुझे क्षमा करना।'

'कर दिया मैंने।'

'नक्शा मेरा है—निकालो तो बच्चू चार आने पैसे! गाड्डियल के हाथ से लेकर गिनने के बाद श्रीमान हाराणचंद्र मुखर्जी ने बहुत ही होशियारी के साथ उन्हें पॉकेट में रख लिया।'

'आठ आने रखता हूं, इस बार देखूं भाग्य में क्या बदा है?'

हाराणचंद्र ने अपने सामने, सैकड़ों जगह से टूटी हुई चटाई पर ठोंककर आठ आने पैसे रख दिए और ताश उन्होंने हाथ में ले लिए। साथी लोग उत्कंठा से अपने-अपने पत्ते देखने लगे। कुछ क्षण के बाद ही दो-तीन हाथ उछालकर हाराणचंद्र ने कहा, 'फिर नक्शा! रुपया निकालो भाई। हाराणचंद्र के हवाले एक रुपया करके गाड्डियल ने उसके सामने ताश फेंक दिया और जितने साथी थे, वे सभी मुंह सुखाए हुए ढूंढ़-ढूढ़कर अपने-अपने खजाने से पैसे निकालने लगे।'

'और चाहिए? और चाहिए—और चाहिए?'

'बस करो, अभी नहीं।'

'पंद्रह पर रुक जाओ।'

'गए! तुम लोग फिर गए—देखो, इस बार फिर मेरा ही नक्शा है।'

रात्रि व्यतीत होते-होते हाराणचंद्र ने जब स्थान का परित्याग किया, तब रुपयों और पैसों की अधिकता के कारण उनकी दोनों ही ओर की जेब काफी भारी थीं। उस दिन की सारी रात उन्होंने बाहर की बिताई, घर नहीं गए। दूसरे दिन भी कभी इस दुकान की ओर, कभी उस दुकान की सैर करते-करते दोपहर हो गई, अंत में चार बजते-बजते जब हाराणचंद्र ने घर में प्रवेश किया, तब उनकी आंखें बिलकुल लाल-लाल हो उठीं। मुख, नाक, धोती, अंगोछा आदि से गांजे की बड़े जोर की दुर्गंध निकल रही थी। स्नान करके जब वे भोजन करने के लिए बैठे तब शुभदा भी जाकर उनके सामने बैठी और बोली, 'आज बहुत देर हो गई।'

'क्या करूं भाई, काम-काज के झमेले में देर हो ही जाती है। क्या तुमने अभी तक भोजन नहीं किया?'

शुभदा चुप रही।

हाराणचंद्र ने फिर पूछा, 'किया नहीं, अभी तक भोजन?'

'अब करूंगी।'

दुखित होकर हाराणचंद्र ने कहा, 'यह सब तुम्हारा बहुत ही अनुचित कार्य है। मेरा कुछ ठीक तो रहता नहीं। अगर मैं पूरा दिन न आऊं तो क्या तुम भूखी ही पड़ी रहोगी?'

दो-एक ग्रास अन्न मुख में डालने के बाद हाराणचंद्र ने कहा, 'सवेरे तुम मुझसे रुपयों के लिए कह रही थीं न?'

हाराणचंद्र किस मतलब से ऐसा कह रहे थे, यह बात शुभदा की समझ में नहीं आई। इससे उसने कहा, 'नहीं तो, मैंने कब रुपये मांगे थे तुमसे?'

'नहीं मांगे थे? मेरा खयाल था कि तुम रुपयों के लिए कह रही थीं।'

बाद में जरा हंसकर हाराणचंद्र ने कहा, 'कल नहीं मांगा था तो न सही, दो दिन बाद तो मांगना ही पड़ेगा। वह एक ही बात हुई। मेरे कपड़े के छोर में आठ रुपये बंधे हैं, उनमें से पांच रुपये तुम ले लो।'

शुभदा सिर हिलाकर बोली, 'अच्छा!'

आज शुभदा बहुत विस्मित हुई। बहुत दिनों से ऐसा नहीं हुआ था। इधर काफी अरसे से हाराणचंद्र इस प्रकार स्वेच्छा से शुभदा के हाथ पर पैसे रखने नहीं आए थे। भोजन आदि हो जाने पर शुभदा ने पूछा, 'रुपये कहां मिले?'

हाराणचंद्र के मुंह से हंसी निकल आई। उन्होंने कहा, 'अजी, रुपये के लिए हम लोगों को चिंता नहीं करनी पड़ती। पुरुष जाति के पेट में बुद्धि हो तो उसके लिए पृथ्वी-भर में रुपये ही बिखरे पड़े होते हैं। समझती हो न?'

शुभदा ने क्या समझा, यह वही जानती होगी, लेकिन उसने प्रतिवाद नहीं किया।

उपर्युक्त घटना के बाद प्रायः दो मास का समय बीत गया।

आज संध्या समय शुभदा ललना के पास बैठकर अत्यंत ही खिन्न भाव से बोली, 'ललना, क्या आज कुछ नहीं है बेटी?'

'कुछ नहीं है मां।'

'कितने दिन तो तूने यही बात कही थी, बाद में कभी दो आने, कभी चार आने निकालकर देती रही है। देख बेटी, शायद कुछ हो, नहीं तो आज रात में किसी के मुंह में एक बूंद पानी भी न पड़ सकेगा।'

माता का कातर मुख तथा आंसुओं से रुंधा हुआ गद्गद स्वर सुनकर ललना रो पड़ी, 'कुछ नहीं है मां, मैं तुम्हारे पैर छूकर कह रही हूं, कुछ नहीं है।'

अब माता-पुत्री दोनों रोने लगीं। शुभदा इसलिए रो रही थी कि अकारण

कन्या पर अविश्वास किया, परंतु ललना के आंसू बहने का कारण दूसरा ही था। इससे पहले यह कह देने के बाद भी मेरे पास कुछ नहीं है, वह कुछ-न-कुछ दे ही दिया करती थी, किंतु आज सचमुच कुछ नहीं दे सकी। सदानंद जो पचास रुपये दे गया था, उसकी अंतिम कुछ पाई भी आज प्रातःकाल समाप्त हो चुकी थी।

ललना खिन्न भाव से सोच रही थी, 'हाय, सब लोग क्या खाकर यह रात्रि व्यतीत करेंगे। किसी को खाने को देने में समर्थ न हो सकने पर मां के मन की अवस्था कैसी होगी? सवेरा होने पर किसके पास भिक्षा के निमित्त जाना होगा?' यही सब सोचते-सोचते उसके नेत्रों में आंसू आ गए। विंदो से कुछ मिल जाया करता था, किंतु वह वहां थी नहीं। सदानंद उसका सहायक था, लेकिन वह भी वहां नहीं था, परंतु चिंता का क्या केवल इतना ही कारण था, आज दो दिन से हाराणचंद्र के भी तो दर्शन नहीं हुए थे। वे या तो अफीम की दुकान पर होंगे या जुए में अड्डे पर।

यहां हाराणचंद्र का भी थोड़ा-सा हाल कहे देता हूं। वे गांजे का दम लगाया करते, अफीम खाया करते। चार-छह पैसे उधार ले लिया करते और कभी दो आना, कभी चार आना झूठ बोलकर शुभदा से वसूल कर लिया करते। जब इस प्रकार उन्हें पैसे न मिलते और मात्रा के अनुसार अफीम और गांजा प्राप्त करने का कोई भी साधन न दिखाई पड़ता, तब वे तिलक लगा लेते और सारे शरीर में राख और भभूति लगाकर—ब्राह्मण संतान की अंतिम वृत्ति भिक्षा का भी अवलंबन किया करते थे, परंतु जुए का रहस्य उन्हें समुचित रूप से ज्ञात नहीं था। आजकल जुए की ही ओर हाराणचंद्र का आकर्षण अधिक था। जैसा कि जुए के खेल में प्रायः हुआ करता है, अर्थात प्रारंभ में दो-चार पैसे मिल जाते हैं। कभी-कभी दो-चार रुपयों का लाभ हो जाता है, वैसा हाराणचंद्र के संबंध में भी हुआ।

प्रारंभ में वे कुछ पा जाया करते थे, परंतु जैसे-जैसे दिन बीतते गए, वैसे-ही-वैसे उनका भाग्य भी संकुचित होता गया। शुभदा को उस दिन उन्होंने पांच रुपये दे दिए थे, वही उनकी अंतिम देन थी। बाद में उन्हें कभी बिलकुल ही कुछ न मिला हो, यह बात नहीं थी। कभी-कभी वे कुछ-कुछ पा भी जाया करते थे, किंतु आय की अपेक्षा व्यय अधिक हुआ करता था। पहले हाराणचंद्र हलुदपुर में कहीं निश्चिंत होकर बैठ नहीं सकते थे। अब ब्राह्मणपाड़ा में भी पैर रखना उनके लिए अत्यंत ही क्लेशकर हो उठा था। रास्ते में जिस किसी से भी उनकी मुलाकात होती, वही किसी-न-किसी बात के लिए उनसे तकाजा कर बैठता। जितने भी आदमियों से हाराणचंद्र का परिचय था, उन सभी से उन्होंने कुछ-न-कुछ उधार लिया था और इसी वादे पर लिया था कि कल दे दूंगा। किसी से दो

पैसे लिए थे, किसी से चार पैसे लिए थे, किसी से दो आने तो किसी से चार आने—बचने कोई नहीं पाया था। चार आना से आठ आना हर एक दुकानदार का भी उनके ऊपर चढ़ा हुआ था। इन सब कारणों से ब्राह्मणपाड़ा में आजकल हाराणचंद्र बहुत कम दिखाई पड़ा करते थे, परंतु संध्या के समय जब कभी अफीम की दुकान पर उनकी खोज की जाती, तब वे अवश्य एक किनारे पर बैठे हुए पाए जाते थे। अधिक रात्रि व्यतीत हो जाने पर किसी-न-किसी दिन बेड़ा खोलकर जुए के अड्डे में भी प्रवेश करते हुए दिखाई पड़ा करते थे। आजकल अधिकतर उनकी रात्रि यहीं व्यतीत हुआ करती थी। हाराणचंद्र के पास पैसों की कमी हुआ करती थी। इससे वे जुए के अड्डे पर जाकर भी स्वयं बाजी नहीं लगा पाते थे, परंतु किसी दूसरे की बाजी में योगदान करके भी बीच-बीच में दो-चार पैसे कमा लिया करते थे। खेल जम जाने पर लोगों की बहुधा उठने की इच्छा नहीं हुआ करती थी। वैसे समय में हाराणचंद्र तंबाकू चढ़ा-चढ़ाकर लोगों को दिया करते थे। अवसर देखकर विजेता के पक्ष में वे दो बातें कह दिया करते थे। कभी वे हंसी-मजाक से लोगों का मनोरंजन करने लगते और कभी हाथ में जनेऊ लपेटकर श्री दुर्गाजी का जप करने लगते। इस प्रकार दांव जीतने वालों का मन प्रसन्न कर वे अफीम-गांजा का हिसाब बांध लिया करते थे। जिस दिन कुछ अधिक पैसे हाथ में आ जाते, उस दिन दो हाथ वे भी खेल लिया करते थे। कभी-कभी खेल में कुछ जीत भी लिया करते थे। अगर हार जाते तो समझ लेते कि मानो गुड़ का लाभ चींटियों ने खा लिया। हाथ में दो-चार आने पैसे आ जाने पर किसके लिए संभव था कि वह उन्हें पा जाता था। अफीम की दुकान पर पहुंचकर हाराणचंद्र अपने पुराने ढंग के अनुसार मुसाहिब का आसन ग्रहण कर लिया करते थे। बहुतों को राजा-दीवान आदि ऊंचे-ऊंचे पदों पर अभिषिक्त करने के बाद शुभदा की मुखाकृति का स्मरण करते-करते वे आकर घर में विराजमान हुआ करते थे। यहां अन्न का अभाव उनके लिए होता नहीं था। मानो उन्होंने यह समझ रखा था कि शुभदा की जमींदारी कभी छूटने की नहीं है, मेरी शुभदा मूर्तिमयी अन्नपूर्णा है। उसका हाथ कभी खाली रह ही नहीं सकता। बात भी प्रायः ठीक ही थी और किसी को मिलता-न-मिलता, किंतु उन्हें तो मुट्ठी-भर अन्न मिल ही जाया करता था, परंतु आजकल घर आने में उन्हें जरा कुछ कठिनाई का अनुभव हुआ करता था। कदाचित कुछ लज्जा-सी मालूम हुआ करती थी। जब वे घर के समीप आ जाते, तब तो मानो पैर उनके उठना ही नहीं चाहते थे, अंत में घर में प्रवेश करने के बाद तो उन्हें और भी अधिक दुखी होना पड़ता था। शुभदा जिस प्रकार पैर धोने के लिए जल लाकर उनके सामने रख देती, जिस प्रकार वह आकर उनके पैर पोंछ देती, जिस प्रकार थाली परोसकर वह उनके सामने रख

देती और स्वयं मुंह सुखाए हुए नितांत ही अवसन्न होकर मौन भाव से सामने बैठी रहती, उसके कारण हाराणचंद्र का हृदय भी न जाने कैसा हो उठा करता था। स्त्री की विषादमयी मूर्ति देखकर अन्न का ग्रास मुंह में डाल दिए जाने पर भी आसानी से पेट में जाना नहीं चाहता।

हाराणचंद्र दिन में चाहे पांच बजे आते, चाहे रात में तीन बजे आते, वे शुभदा को चौके में थाली लगाकर बैठी हुई पाया करते थे। वह स्वयं आहार और विश्राम न करके उनका भोजन लिए हुए बैठी रहती। एक बार भी वह मुंह से यह बात नहीं निकालती थी कि इतनी देर तुमने क्यों कर दी? एक बार भी वह नहीं पूछती थी कि इतनी रात तुमने कहां बिता दी? शुभदा का खिन्नतापूर्ण मौन मुख ही हाराणचंद्र को अधिक व्यग्र कर दिया करता था। वह यह अनुभव किए बिना नहीं रह पाता था कि स्वामी होकर भी मैं इतनी श्रद्धा, इतनी भक्ति प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हूं। उसकी इतनी सेवा, इतने सम्मान का चुपचाप उपभोग करते रहना मेरे लिए उचित नहीं है।

हाराणचंद्र यह भी अनुभव करते थे कि एक आदमी बराबर अपराध करता जा रहा है और दूसरा अफीमची और गंजेड़ी होने पर भी उनके नेत्रों में लज्जा आ ही जाया करती थी। वे मन-ही-मन सोचा करते थे कि शुभदा एक बार भी तिरस्कार का भाव नहीं प्रकट करती, कभी वह इस प्रकार की भाव-भंगिमा भी नहीं करती कि तुम ऐसा मत करो, तुम्हारा इस प्रकार का आचरण अब मेरे लिए सह्य नहीं हो रहा है। हाराणचंद्र जो इस प्रकार मन-ही-मन खिन्न और लज्जित हुआ करते थे, उसका कदाचित एकमात्र यही कारण था कि आजकल प्रतिदिन ही अपनी करतूत पर स्वयं उन्हें विचार करना पड़ता था। शुभदा के प्रति प्रतिदिन इतना अधिक अन्याय करते-करते बीच-बीच में संकोच का भी अनुभव करने लगते। जो भी हो, इसी प्रकार दिन बीतते जा रहे थे।

सदा की भांति आज भी हाराणचंद्र बहुत अधिक रात बीत जाने के बाद घर पहुंचे। घर के भीतर पैर रखने पर आज उन्हें सदा के नियम में कुछ बाधा मालूम पड़ी। आज शुभदा पैर धोने के लिए पानी लेकर नहीं आई। निर्दिष्ट स्थान पर थाली लगाए हुए कोई उनकी राह देखती हुई भी नहीं बैठी थी। एक दीपक रखा हुआ टिमटिमा रहा था। हाराणचंद्र बत्ती बढ़ाकर उसे तेज करने के लिए जब गए, तब उन्होंने देखा कि उसमें तेल ही नहीं है। इससे उन्हें भय हुआ। इधर दो दिन से वे घर आए नहीं थे। उन्हें आशंका हुई कि शायद इस बीच में कोई अप्रिय घटना हो गई है। शय्या के एक किनारे बैठकर हाराणचंद्र अपने मन में न जाने क्या-क्या सोचने लगे।

सवेरा होता जा रहा था, तो भी उन्हें कोई दिखाई नहीं पड़ सका, अंत में न

जाने कौन-सी बात सोचकर हाराणचंद्र सैकड़ों जगह से फटे हुए जूते हाथ में लेकर चोर की तरह चुपचाप घर से बाहर आ गए।

हाराणचंद्र ही इच्छा थी कि मैं घर से चुपचाप निकल जाऊं और मुझे कोई देख न पाए, परंतु ऐसा वे कर न सके। चबूतरे पर छलनामयी बैठी हुई थी। इतने सवेरे वह कभी उठा नहीं करती थी, परंतु न जाने क्यों आज वह बिस्तर छोड़कर आ बैठी थी। उन्हें देखते ही चिल्ला उठी, 'क्यों बाबूजी, कब आए तुम?'

हाराणचंद्र अत्यंत संकुचित होकर बोले, 'कल रात में?'

'अच्छा बाबूजी, तुम्हारी कैसी अक्ल है, जरा बताओ तो। कल मां, बुआजी तथा बड़ी दीदी, किसी को बूंद-भर पानी तक मुंह में डालने का सहारा न हो सका और तुम हाथ में जूते लिए चुपचाप भागे जा रहे हो! आज हम लोग क्या खाएंगे जरा बतलाओ तो?'

हाराणचंद्र ने उस समय यह अनुभव किया मानो छलनामयी ने उनका सिर ही काट लिया हो। हाथ से जूते अपने आप खिसककर भूमि पर गिर पड़े। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बड़ी देर तक वे खड़े रहे, बाद में वे बोले, 'छलना, क्या सचमुच ऐसी ही बात है?'

छलना और भी गला फाड़कर बोली, 'ओ बुआजी, सुनती हो बाबूजी की बात? मानो मैं झूठ बोल रही हूं। कल रात-भर मां और बड़ी दीदी रोती रही हैं, यह बात भला तुम कैसे जान सकोगे? केवल भोजन के लिए तुम घर में आते हो, हम लोगों से तुम्हारा और कोई संपर्क ही नहीं है।'

हाराणचंद्र वहां अब और खड़े नहीं रह सके। जूतों का जोड़ा उठाकर हाथ में लिए हुए तेजी से पैर बढ़ाकर चलते बने।

छलना एक बार फिर चिल्लाकर बोली, 'देखो, बाबूजी भागे जा रहे हैं।'

एक तो छलना अभी छोटी-सी लड़की थी, बुद्धि उसमें बहुत कम थी, साथ ही वह बोलने में बहुत तेज थी। किससे क्या कहना चाहिए और कैसे अवसर पर कैसी बात मुंह से निकालनी चाहिए, यह उसने कभी सीखा नहीं था। ललना अभी तक आड़ में खड़ी-खड़ी ये सब बातें सुन रही थी। पिता के चले जाने पर वह धीरे- धीरे छलना के सामने आकर बोली, 'छलना, क्या तुम्हें जरा भी बुद्धि नहीं है?'

'क्यों?'

'किसे क्या कहना चाहिए, यह अभी तक सीखा नहीं तुमने। क्या बाबूजी को इसी तरह की कड़ी-कड़ी बातें कहकर खदेड़ देना उचित है?'

कुपित होकर छलना बोली, 'मैंने उन्हें नहीं खदेड़ा। वे स्वयं भाग गए हैं।'

'कोई पिता को ऐसी बात कहता है?'

'कहता क्यों नहीं? अगर पिता जैसा पिता हो तो उसे कुछ न कहना चाहिए, परंतु इस तरह के बाप को तो सभी कुछ कहा जा सकता है और किसका बाप इस तरह जी छुड़ाकर भाग निकलता है? किसका बाप इस तरह अफीम और गांजे के नशे में चूर होकर बाहर पड़ा रहता है? मैं खूब करूंगी, अभी और कहूंगी?'

नाराज होकर ललना बोली, 'छलना, तू यहां से हट जा!'

'क्यों हट जाऊं? तू ही क्यों नहीं हट जाती? तू मेरे ऊपर मालकिन का-सा अधिकार जमाने की कोशिश न किया कर।'

ललना मुंह बंद किए हुए उस स्थान से हार मानकर चली गई।

उस दिन दोपहर का समय बीत जाने के बाद रासमणि के सामने कांसे का एक लोटा रखकर शुभदा ने कहा, 'दीदी, देर बहुत हो गई है, अब शायद वे न आएंगे। यह लोटा गिरवी रखने से शायद कुछ मिल जाए!' शुभदा के मुख की तरफ कुछ देर तक ताकने के बाद रासमणि ने कहा, 'बड़ी लज्जा लगती है बहू।'

ललना वहीं खड़ी थी। लोटा हाथ में लेकर वह बोली, 'मां, मैं एक बार देख आती हूं।'

शुभदा ने अवरुद्ध कंठ से कहा, 'कहां?'

ललना धीरे से हंसकर एक बार बुआ की तरफ देखकर बोली, 'वहीं, घोष बाबू की दुकान पंर।'

'क्यों, इसमें शर्म की कौन-सी बात है? मैं यहां की लड़की हूं। छुटपन से ही सब लोग मुझे देखते आए हैं। मेरे लिए लज्जा करने की कौन-सी बात है? सुख और दुख के दिन किसके घर में नहीं आते मां?'

ललना को जाते देखकर रासमणि ने उसके हाथ से लोटा छीन लिया और बोली, 'तब मैं ही जाती हूं।'

उस दिन तीन बजे के बाद सब लोगों का भोजन हुआ। सबके तृप्त हो जाने पर शुभदा ललना का हाथ पकड़कर उसे एक तरफ ले गई और उससे बोली, 'चुपके से थोड़ी-सी सहिजन की पत्तियां तो तोड़कर ले आ बेटी।'

विस्मित होकर ललना बोली, 'इस समय शाक का क्या करोगी मां?'

'काम है बेटी।'

'क्या काम है मां?'

थोड़ा हंसकर शुभदा बोली, 'तू क्या करेगी उसे जानकर?'

यह बात शुभदा ने जिस भाव-भंगिमा से कही थी, उससे ललना बहुत कुछ ताड़ गई कि इनका मतलब क्या है। उसने कहा, 'बटलोई में शायद भात नहीं है।'

'भात है क्यों नहीं ?'

'तब शाक का क्या करोगी ?'

'गृहस्थी का घर है। जरा-सा बनाकर रख लिया जाएगा तो क्या इसमें कोई हानि होगी ?'

बहुत ही कातर भाव से ललना बोली, 'सच-सच क्यों नहीं बतलाती हो मां! क्या बात है ?'

'बात क्या है ?'

'तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझसे न छिपाओ मां।' ललना मां के पैरों को हाथ लगाने ही जा रही थी कि मां ने उसे पकड़ लिया और भी जरा-सा समीप होकर उसके सिर के बालों को कानों के सामने समेटते-समेटते वह प्रसन्न मुख से बोली, 'एक आदमी के ही खाने-भर को भात है। इससे अधिक नहीं है। शायद वे आ जाएं, इसलिए...।'

'इसलिए तुम सहिजन के पत्ते चबाकर रह जाओगी ?'

पहले की ही तरह जरा-सा हंसकर शुभदा बोली, 'तो क्या सहिजन के पत्ते खाने योग्य नहीं हैं ?'

'अखाद्य तो नहीं हैं, किंतु क्या केवल उन्हें ही खाकर रहा जाता है ?'

'तो इससे क्या हुआ ? अभी तू ही तो कह रही थी ललना कि सुख और दुख की घड़ियां किसके यहां नहीं आया करतीं ? इसीलिए दुख की घड़ियां आने पर सुख के समय की बातों को भूल जाना चाहिए। जब इस ओर फिर भगवान की दया होगी, तब सब कुछ होगा। उस समय...।' यह बात कहते-कहते शुभदा की आंखों में आंसू आ गए।

रोते-रोते ललना चली गई। कुछ देर के बाद ही लौटकर सहिजन के थोड़े-से पत्ते मां के पैरों के पास रखकर आंखें पोंछती-पोंछती वह चली गई।

संध्या होने में अब भी देर थी। एक भिखारी बड़ी देर से ब्राह्मणपाड़ा की मोदी की एक दुकान पर एक तरफ खड़ा था। वह दुकान बहुत ही छोटी थी। पैसे-दो-पैसे की चीजें लेने वाले लोग वहां आया करते थे। वहां कोई ऐसा ग्राहक नहीं आता था, जिसे कुछ अधिक सौदा लेना हो, परंतु ग्राहकों की वहां कमी नहीं रहती थी।

कोई आकर एक पैसे का तेल खरीदता, कोई दो पैसे की दाल खरीदता, कोई एक छदाम का नमक खरीदता। इस तरह सामान लेकर लोग अपनी-अपनी राह चले जाया करते। भिखारी चुपचाप खड़ा था। बहुत देर तक खड़े रहने के बाद भी जब वह कुछ नहीं बोला, खड़े-खड़े दुकानदारी ही देखता रहा, तब मोदी की दृष्टि उस पर पड़ी। भिखारी की तरफ देखकर उसने कहा, 'तुम क्यो लोगे जी ?'

सिर हिलाकर भिखारी ने कहा, 'कुछ नहीं।'

नाराज होकर दुकानदार ने कहा, 'तब बेकार यहां खड़े होकर भीड़ मत लगाओ!'

उसी समय एक ग्राहक बोल उठा, 'शायद भिक्षा के लिए खड़ा है।'

यह सुनकर दुकानदार को और गुस्सा आया। वह कटु स्वर में बोल उठा, 'जाओ, जाओ, यहां कुछ न मिलेगा। शाम का समय है और तुम आए हो भीख मांगने के लिए।'

भिखारी वहां से चल दिया। जरा देर के बाद ही वह फिर लौट आया और पहले वाले स्थान पर खड़ा हो गया। उसकी ओर घूमते हुए मोदी ने कहा, 'फिर आ गए तुम?'

'चावल खरीदोगे?'

'कैसा चावल है? किस भाव से दोगे?'

'मोटा चावल है।'

'कहां है? दिखाओ तो जरा।'

एक छोटी-सी पोटली निकालकर भिखारी ने कहा, 'यह देखो।'

चीज देखकर दुकानदार ने नाक सिकोड़ ली। उसने कहा, 'यह तो भिक्षा में मिला हुआ चावल है। कितने पैसे लोगे?'

चावल बेचने वाले ने दुकानदार के मुंह की ओर देखकर कहा, 'दो आने।'

'धत्! चार पैसे का तो चावल नहीं है, मांगता है दो आने। मुझे नहीं चाहिए तेरा चावल।'

संभवत: उस आदमी का परिचय देना आवश्यक न होगा, वे हाराणचंद्र थे।

हाराणचंद्र पास के ही एक पेड़ के नीचे बैठकर मोदी के बाप तक की खबर लेते हुए पोटली खोलकर मुट्ठी-मुट्ठी चावल चबाने लगे। मन-ही-मन उन्होंने सोचा, 'इतना चावल भला चार पैसे में दिया जाता है। सारे दिन की मेहनत का मूल्य क्या चार पैसा है? यही चावल ले जाकर अगर अड्डे वाले को देता तो चार दिन के नशे की व्यवस्था हो जाती, परंतु वहां क्या इसे ले जाते बनता है? छि:! वे साले पहचान लेंगे कि यह भिक्षा का चावल है। छि:! छि:! छि:! तो क्या इसे घर ले जाऊं? परंतु यह जरा-सा चावल किस-किसके मुंह डालने को होगा? कुछ काम नहीं है, इसे घर ले जाने का।'

हाराणचंद्र ने चावलों की पोटली बांध ली और दुकानदार के पास पहुंचकर बोले, 'चावल ले लो।'

'चार पैसे में दोगे न?'

'हां।'

'तो इसी डलिया में खोल दो।'

एक डलिया में चावल खोलकर हाराणचंद्र ने हाथ फैलाया। दुकानदार से चार पैसे लेकर कुछ दूर जाने के बाद हाराणचंद्र एक बार खूब जी भरकर हंस लिया। उसने मन-ही-मन कहा, 'कैसा चकमा दिया है मैंने बच्चू को! जैसा कर्म है उस हरामजादे का वैसा ही फल भी दिया है मैंने। आधा चावल तो चबा डाला है, लेकिन बेटा जान नहीं पाए।' लेकिन हाराणचंद्र के मन में यह बात एक बार भी नहीं आई कि दुकानदार ने यह जानने के लिए जरा भी इच्छा नहीं की। हृदय की प्रसन्नता के कारण हंसते-हंसते वे अफीम की दुकान का बेड़ा खोलकर उसमें घुसे।

उनके वहां के व्यवहार का निरीक्षण करना आवश्यक नहीं है, अब हम दूसरी तरफ चलते हैं।

'बिटिया अब तो नहीं रहा जाता।'

तीन दिन तक उपवास करने के बाद शुभदा बड़ी पुत्री ललना की गरदन पकड़कर अवरुद्ध आवेग से रो पड़ी।

बहुत ही स्नेहपूर्वक माता के आंसू पोंछकर ललना बोली, 'अधीर क्यों होती हो मां! ये दिन सदा तो बने नहीं रहेंगे, फिर अच्छे दिन आएंगे।'

रोते-रोते शुभदा ने कहा, 'भगवान करे तुम्हारी बात ठीक निकले बेटी, लेकिन अब तो सहा नहीं जाता! आंखों के सामने तुम लोगों की इतनी दुर्दशा मां होकर मुझसे नहीं देखी जाती। अब तो बिटिया, मेरे मन में यही बात आती है कि मैं गंगा माता की गोद में स्थान ग्रहण करूं और तू जिस तरह भी संभव हो, इन सबकी रक्षा करना। द्वार-द्वार पर भिक्षा मांगना। ओह! मां होकर मुझसे तो अब नहीं देखा जाता।'

शुभदा जिस प्रकार फफक-फफककर रो उठी थी, जिस प्रकार कातर भाव से उसने बेटी का गला पकड़ रखा था, उसे देखकर पत्थर भी पिघल जाता। आज कितने दिनों के बाद वह अपना धैर्य खो बैठी। कितने दुख-क्लेश उसने सहन किए थे, लेकिन आज वह बहुत अधीर हो उठी थी। यही कारण था कि आज उसे संभालना असंभव हो रहा था। जो कभी क्रुद्ध नहीं होता, उसे जब क्रोध आता है, तब इतने जोर का आता है कि वह संभाले नहीं संभलता। जो बहुत ही शांत है, उसके हृदय में जब तूफान आता है, तब वह प्रलय मचा देता है। यही हालत शुभदा की भी हुई थी। इस कारण ललना बड़े संकट में पड़ गई थी। वह माता को किसी प्रकार भी नहीं समझा पाती थी कि इस प्रकार धैर्य छोड़ने, रोने-धोने से विपत्ति कम न हो सकेगी। हृदय फटकर गिर पड़े तो फिर उसे संभालकर रखना संभव न होगा।

गंभीर रात में मां-बेटी वहीं लेटी-लेटी सो गईं।

शुभदा को स्वामी के लिए बड़ा भय हो रहा था। आज छ: दिन हुए, वे घर नहीं आए थे। उसे ऐसा लग रहा था, मानो अपमान और लांछना के भय से उन्होंने आत्महत्या कर ली है। बेटी होकर भी छलना ने उस दिन उन्हें निकम्मा कहकर अपमानित किया था। उसने जिस तरह की फटकार उन्हें लगाई थी, उसके कारण आत्महत्या कर लेना उनके लिए आश्चर्य की बात न होगी। यही बात आठों पहर शुभदा के मन में आ रही थी। आज भी रात्रि व्यतीत होते-होते वह चौंककर उठ बैठी। ललना को जगाकर उसने कहा, 'रे, वे अब नहीं हैं।'

ललना उस समय भी अर्द्ध निंद्रा में ही थी, इससे वह बात नहीं समझ पाई और मां के मुंह की ओर ताकती हुई बोली, 'कौन मां?'

'मैं स्वप्न देख रही थी, मानो वे नहीं हैं।'

'इस प्रकार की बात मुंह से क्यों निकाल रही हो मां!'

यह बात समाप्त करके ललना रो पड़ी। इसके बाद शेष रात उन लोगों ने रोते-रोते बिताई।

धीरे-धीरे दिन चढ़ने लगा। लगभग दस बजे स्नान से निबटकर घर की ओर जाते समय कृष्णप्रिया मुखर्जी परिवार का हाल लेने के लिए घूम पड़ी। घर में जाकर आंगन से उन्होंने आवाज लगाई, 'बहू!'

बाहर आकर शुभदा ने कहा, 'क्या है दीदी? बैठो।'

'बैठूंगी नहीं बहू, देर हो गई है। स्नान करके लौटते समय एकाएक इच्छा हो गई कि बहू को देखती चलूं।'

शुभदा चुप ही रही।

कंठ का स्वर धीमा करके कृष्णप्रिया ने कहा, 'बहू, जरा सुनो तो।'

शुभदा जब पास आ गई, तब उन्होंने कहा, 'हाराण का कोई समाचार मिला है तुम्हें?'

'नहीं।'

'आज कितने दिन हुए उन्हें घर से निकले?'

'छ: दिन हो गए।'

'छ: दिन हो गए! किसी को ब्राह्मणपाड़ा में नहीं भेजा।'

'भेजूं किसे? कौन है जाने वाला?'

'यह तो ठीक है, लेकिन तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा?'

शुभदा ने जवाब नहीं दिया।

जल की कलशी नीचे की तरफ खिसकी जा रही थी, उसे जरा-सा उठाकर कृष्णप्रिया ने कहा, 'क्या हाथ में कुछ रुपया-पैसा है?'

'कुछ नहीं।'

'तब गृहस्थी का खर्च किस तरह चल रहा है?'

'यों ही किसी तरह।'

'अभी ललना को जरा मेरे यहां भेज देना!'

जब वे चली गईं, तब ललना को बुलाकर शुभदा ने कहा, 'तुम्हें कृष्णा दीदी बुला गईं है, तनिक हो आओ।'

'क्यों?'

'यह तो मैं नहीं जानती।'

ललना कृष्णप्रिया के घर की ओर चली। कुछ देर के बाद लौटकर उसने मां के हाथ पर दो रुपये रख दिए और बोली, 'ये रुपये बुआजी ने दिए हैं।'

आंचल के छोर में रुपये बांधकर शुभदा ने पूछा, 'क्या उन्होंने कुछ कहा भी है?'

'उन्होंने कहा है कि तुम्हारे बाबूजी जब आएं, तब मुझे सूचित करना।'

उस दिन शुभदा ने भगवान से बहुत ही प्रार्थना की। पूजा की दालान में काली जी का जो पाठ रखा हुआ था, उसके सामने वह हाथ जोड़े हुए बहुत देर तक बैठी रही। तुलसी के चबूतरे पर भी वह बड़ी देर तक मस्तक रगड़ती रही। बाद में कुछ वस्तु मंगाकर वह गंगा-स्नान कर लौट आई।

उस दिन ठीक समय पर अपनी रुचि के अनुकूल भोजन पाकर छलनामयी बहुत ही प्रसन्न हो उठी। हंसती-हंसती अपनी गुड़िया का विवाह पक्का करने के लिए दूसरे मुहल्ले में ललिता के घर की तरफ चली।

रात में जब थोड़ा-सा अंधेरा हो गया, तब उस अंधेरे में अपना मुंह छिपाए हुए आज हाराणचंद्र ने घर में प्रवेश किया। छह दिन पहले वे जैसे थे, वैसे ही आज भी थे। परिवर्तन हुआ था केवल उनके वस्त्र में। वर्ण उसका कोयले से भी अधिक काला हो गया और और गिनने पर संभवतः उसमें सौ से भी अधिक स्थानों पर ग्रंथियां बंधी हुई मिलतीं। समय पर उन्हें ठिकाने से भोजन आदि कराकर शुभदा ने ललना को बुलाया और मुस्कराकर कहा, 'यदि मैं नित्य ही तुम्हारा मुंह देखकर उठा करूं तो बहुत अच्छा हो बिटिया।'

ललना भी मुस्कराने लगी। वह बोली, 'क्यों? क्या बात है मां?'

दूसरे दिन सवेरा होते ही ललना अपनी कृष्णा बुआ के यहां पहुंची और बोली, 'कल रात में बाबूजी आ गए।'

कृष्णा का मुख प्रफुल्लित हो उठा। मानो उनके हृदय की एक बहुत बड़ी दुर्भावना दूर हो गई। मुस्कराती हुई वे बोलीं, 'आ गए? अच्छी तरह से हैं न?'

'हां।'

'इतने दिनों तक थे कहां?'

'यह मैं नहीं जानती?'

'बहू ने नहीं पूछा?'

'नहीं।'

'तेरी बुआ ने भी कुछ नहीं पूछा?'

'जी नहीं। बुआजी तो बाबूजी से बोलती ही नहीं।'

'बोलती क्यों नहीं?'

'मैं नहीं जानती, इसका कारण तो बुआजी स्वयं ही जानती होंगी।'

'ग्यारह बजते-बजते केले के पत्ते से ढककर हाथ में एक पथरी लिए हुए कृष्णप्रिया शुभदा के पास पहुंची। उन्होंने कहा, 'बहू जरा-सी तरकारी ले आई हूं, हाराण को दे दो।'

शुभदा ने हाथ से पथरी ले ली और बगल ही के एक कमरे की तरफ इशारा करती हुई बोली, 'वे इसी कमरे में हैं।'

शुभदा का तात्पर्य समझकर कृष्णप्रिया ने कहा, 'होंगे, इस समय मैं उनके पास जाऊंगी नहीं। घर में सारा सामान खुला पड़ा है।'

कृष्णप्रिया लौटी जा रही थी, किंतु द्वार से बाहर पैर रखने से पहले ही वे फिर लौट आईं और शुभदा से बोलीं, 'बहू, क्या तुम हाराण से एक बात पूछ सकोगी?'

'कौन-सी बात?'

'यही कि वे इतने दिनों तक कहां थे?'

हाराणचंद्र जब बैठे भोजन कर रहे थे, तब शुभदा ने धीरे-धीरे उनसे पूछा, 'इतने दिनों तक तुम थे कहां?'

हाराणचंद्र ने मलिन मुख किए धरती की तरफ देखते हुए धीरे से कहा, 'पेड़ के नीचे!'

अब शुभदा कोई और बात न पूछ सकी।

दूसरे दिन दोपहर को कृष्णप्रिया फिर आईं। बहुत तरह की बातें करने के बाद उन्होंने कहा, 'क्यों बहू, क्या वह बात पूछी थी तुमने?'

'हां।'

'क्या कहा उन्होंने?'

'उन्होंने कहा कि पेड़ के नीचे पड़ा था।'

अब दूसरी बातें उठीं। चलते समय कृष्णप्रिया ने कपड़े के नीचे से दो थान निकालकर कहा, 'ये घर में पड़े हुए थे, इस कारण ले आई हूं, हाराण को पहनने के लिए दे देना।'

शुभदा ने हाथ फैलाकर वे थान ले लिए।

कुछ क्षण तक शुभदा के मुंह की तरफ देखने के बाद कृष्णप्रिया ने कुछ मंद स्वर में कहा, 'देखो बहू, हाराण जब पूछें कि किसने दिया है, तब और किसी का नाम बतला देना, मेरा नाम मत बतलाना।'

तनिक हंसकर शुभदा ने कहा, 'क्यों?'

थोड़ा-सा इधर-उधर करके कृष्णप्रिया ने कहा, 'यों ही।'

'और यदि बतला ही दूं?'

इस बार कृष्णप्रिया हंसकर बोली, 'तो तुम्हें तुम्हारी कृष्णा दीदी के सिर की सौगंध है।'

फिर दिन-पर-दिन बीतने लगे। हाराणचंद्र इस बार जबसे घर आए, बाहर नहीं निकले। इससे उनकी तरफ से शुभदा का भय दूर हो गया था, उनकी दुर्भावना का अंत हो गया था, परंतु गृहस्थी का खर्च यही असली कारण था। किसी एक आदमी ने एक रुपये दान कर दिया, किसी दिन एक आदमी ने दो रुपया भिक्षा के रूप में दिए, इससे तो एक परिवार का पालन होता नहीं, परंतु शुभदा की चिंता का केवल इतना ही कारण तो था नहीं। माधव के मुख की ओर देखते ही उसके शरीर का आधा खून पानी हो जाया करता था। ऊपर से छलना भी उसकी चिंता का कारण थी। वह दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही थी। विवाह के योग्य हो गई थी। दो-चार मास और व्यतीत हो जाने पर समय का अतिक्रमण हो जाने की संभावना थी। उसकी ओर दृष्टिपात करने पर शुभदा को उद्धार का कोई साधन दृष्टिगोचर नहीं होता था।

माधव के कारण उसे जितनी चिंता थी, उससे कहीं अधिक चिंता थी छलना के कारण। माधव का मुख देखने पर जब शुभदा के शरीर का खून पानी हो जाता था, छलना का मुख देखने पर उसके शरीर में अस्थि-पंजर तक तरल हो उठने का उपक्रम करते। लगातार इन सब दुश्चिंताओं के कारण शुभदा का शरीर जो प्रतिदिन सूखता जा रहा था, उसकी ओर चाहे और किसी का भी ध्यान न गया हो, किंतु ललना की दृष्टि से वह छिपा नहीं रह सकता था। ललना देखा करती कि आजकल मां गंगाजी के तट से एक घड़ा जल लाते-लाते हांफने लगती है, तरकारी के लिए आलू और परवल के छिलके छुड़ाने में अब उनके हाथ रुक जाते हैं। ललना इसे जान लेती थी। गांव की कोई भी स्त्री सुपारी काटने में शुभदा की बराबरी नहीं कर सकती थी, परंतु आजकल उसका सरौता बराबर नहीं चलता था। सुपारी का कोई टुकड़ा मोटा हो जाता, कोई पतला। भोजन भी अब वह दो बार के स्थान पर एक ही बार, दिन को चार बजे किया करती थी। आग्रह करने पर वह कहती कि आजकल मुझे भूख नहीं लगती। माता की इस अवस्था के कारण ललना प्रायः एकांत में बैठकर आंखें पोंछा करती थी। किसी-किसी

दिन तो वह कमरे का दरवाजा बंद करके खूब रोती थी। इससे अगर कुछ फल होना संभव होता तो वह हो सकता था, लेकिन इस संसार में ऐसा होता नहीं।

आज एकादशी थी। रसोईघर में जाकर ललना ने जब देखा कि मां खाना बना रही है। चूल्हे के ऊपर न जाने क्या पक रहा था। पहचान न पाने के कारण पूछ बैठी, 'मां, वह क्या है। क्या पका रही हो?'

'थोड़े-से सरसों के फूल हैं।'

'क्या होगा?'

'छलना खाएगी। नहाकर आते वक्त खेत से तोड़ लाई है। उसने भूनने को कहा था, पर तेल कहां है? इसलिए उबाल दे रही हूं।'

ललना ने फिर कुछ नहीं पूछा।

भोजन के वक्त सरसों के फूलों को देखकर छलना भीषण क्रुद्ध होकर बोली, 'यही तलकर लाई हो? यह तो राख है।'

शुभदा संकोच के साथ भयभीत स्वर में बोली, 'जरा जल गए हैं।'

'मैं नहीं खाऊंगी। तुम जली हुई चीजें खाना पसंद करती हो। लो, इसे तुम खाना।' मुंह फुलाकर पत्तल से निकालकर उसने नीचे रख दिए।

छलना ने जो कुछ कहा, यह उसके विश्वास की बात है या नहीं, बताना कठिन है, पर उसकी तरह कड़ी बात कोई उच्चारण नहीं करता। छलना को बिना खाए जाते देख ललना बोली, 'छलना दिन-पर-दिन तुम्हारी आदत खराब होती जा रही है।'

शुभदा ने कहा, 'सभी लड़कियां क्या तेरी तरह होती हैं, बेटी हाथ की पांचों उंगलियां बराबर नहीं होतीं।'

उस दिन का सारा काम-काज समाप्त होने पर ललना माधव के पास आकर बैठी।

माधव ने कहा, 'उसके संबंध में क्या हुआ दीदी?'

'किसके संबंध में माधव?'

जरा-सा रुककर माधव बोला, 'वहां जाने के संबंध में।'

ललना भी कुछ देर तक चुप रही। बाद में जरा-सा सोचकर वह बोली, 'वही बात तो आज तुम्हें बतलाने आई हूं माधव।'

आंतरिक आग्रह के कारण माधव उठ बैठा। उसने कहा, 'क्यों दीदी, कब तक जाना होगा वहां?'

'मैं कल जाऊंगी।'

'तुम कल जाओगी और मैं?'

'पहले मैं जाती हूं, बाद में तुम भी आ जाना।'

कुछ उतावला-सा होकर माधव बोला, 'क्यों! यदि हम तुम साथ-ही-साथ चलें तो क्या कोई हानि होगी?'

ललना ने कहा, 'उस अवस्था में मां बहुत रोएंगी।'

दुखी भाव से माधव ने कहा, 'रोती रहें!'

'छि:! क्या यह अच्छी बात है? अभी मुझे जाने दो।'

'तो फिर कब आओगी?'

'जिस दिन तुम्हें जाना होगा, उसी दिन मैं एक बार फिर आऊंगी।'

'बीच में नहीं आओगी? तो मैं कब आऊंगा?'

'जिस दिन मैं तुमको लेने आऊंगी।'

'आओगी?'

'हां।'

'क्या तुम्हारे जाने पर मां रोएंगी नहीं?'

'मालूम तो पड़ता है अवश्य रोएंगी।'

माधव कुछ देर तक निरुत्तर रहा। बाद में वह बोला, 'दीदी, तो जाने की जरूरत नहीं है।'

'क्यों भाई?'

'मन में जब यह बात आती है कि मां रोएंगो, तब वहां जाने की मेरी इच्छा नहीं होती।'

'तो क्या तू न जाएगा?'

माधव कुछ देर तक फिर चुप रहा। बाद में वह बोला, 'नहीं, जाऊंगा।'

'तो कल मैं जाऊं?'

'चली जाओ।'

'मुझे जब न देख पाएगा, तब तू रोएगा तो नहीं?'

'लेकिन मुझे बुलाने के लिए तुम कब आओगी?'

'कुछ दिनों के बाद।'

'तब जाओ, मैं न रोऊंगा।'

माधव की आंख बचाकर ललना ने दो बूंद आंसू पोंछ डाले। स्नेहपूर्वक उसके सिर पर हाथ रखकर उसने कहा, 'मेरे जाने पर यह सब बातें तुम मां से मत कहना।'

'न कहूंगा।'

'मां जब जो कुछ करने को कहें, वही करना। कोई ऐसा काम न करना, जिससे उनके मन को दुख हो। ठीक समय पर दवा खा लिया करना।'

'खा लिया करूंगा।'

कुछ देर तक रुककर ललना ने फिर कहा, 'माधव, क्या सदा भाई की याद तुम्हें आती है?'

'आती है।'

'वे अगर आएं, अगर तुम्हें देखने के लिए आएं...!'

'तो।'

'तो उनसे कहना कि दीदी चली गईं। जिस समय यहां कोई न रहे, उस वक्त एकांत में कहना।'

'अच्छा!'

इतने में शुभदा ने आकर कहा, 'बड़ी रात हो गई है बेटी, अब जाकर तुम सोती क्यों नहीं हो?'

उस बात के उत्तर में माधव ने कहा, 'मां, दीदी आज मेरे पास सोएंगी।'

दीदी को छोड़ने की उस समय माधव की किसी प्रकार भी इच्छा नहीं हो रही थी। यह बात संभवतः शुभदा समझ गई। इससे उसने कहा, 'अच्छी बात है, यहीं सोए। मैं जाकर ऊपर छलना के पास सो जाती हूं?'

शुभदा के चले जाने पर भाई-बहन में फिर काफी समय तक बातें होती रहीं। अंत में माधवचंद्र सो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ललना को कोई भी न देख पाया। सूर्योदय से पूर्व ही वह घर के जो-जो कार्य कर लिया करती थी, वे अब तक पड़े थे। आठ-नौ बज जाने पर भी जब उसका पता न चला, तब शुभदा ने माधव से पूछा, 'तेरी दीदी कहां गई?' छलना से भी उसने पूछा, 'तेरी दीदी कहां गई?'

सभी ने कहा, 'मालूम नहीं।'

अधिक देर होते देखकर शुभदा कुछ काम स्वयं करने लगी। छलना ने भी उस दिन उसे बड़ी सहायता दी। भोजन तैयार हुआ। सब लोगों ने खाया, लेकिन दोपहर हो जाने के बाद भी ललना लौटकर न आई।

रासमणि खोजने के लिए गई। छलनामयी भोजन करने के बाद आस-पास के घरों में खोजने के लिए गई। उसने कहा, 'अगर किसी के घर में वह होगी तो उसे बुला लाऊंगी।'

संध्या होने से पहले लौटकर रासमणि ने कहा, 'कहीं भी वह नहीं दिखाई पड़ी, घर में आई है क्या?'

'नहीं तो।'

संध्या हो जाने पर छलना भी आई। उसने कहा, 'दीदी तो इस गांव में नहीं है।'

धीरे-धीरे रात बढ़ने लगी, लेकिन ललना लौटकर नहीं आई।

हाराणचंद्र जबसे लौटकर आए हैं, तब से वे घर से बाहर निकले नहीं थे। ललना के संध्या तक लौटकर न आने का हाल सुनकर उन्होंने कहा, 'बात तो सचमुच चिंताजनक है। लड़की गई कहां?' अंत में वे भी उसे खोजने के लिए निकले। रात में बारह बजे के बाद लौटकर आने पर उन्होंने कहा, 'बात तो बहुत चिंताजनक है। कुछ समझ में नहीं आता कि लड़की कहां गई?'

पूरा दिन उपवास करने के बाद शुभदा रोने लगी, रासमणि रोने लगी, छलना भी रोई। केवल माधवचंद्र के मुंह से वैसी कोई भी बात नहीं निकली। घर के सभी लोगों को इतना अधिक व्याकुल होकर रोते देखकर एक बार उसके मन में आया कि बात प्रकट कर दें, लेकिन उसके बाद ही उसे स्मरण हो आया कि दीदी ने मुझे बतलाने से रोका है। इसलिए मां के आंसू देखकर वह भी मौन ही धारण किए रहा।

दूसरा दिन आया। सूर्य उदय हुआ, अस्त हुआ, रात हुई, फिर प्रात:काल होने पर सूर्य उदित हुआ। बाद में यथासमय सूर्यास्त भी हुआ, लेकिन ललना नहीं आई। गांव के सभी लोगों ने यह बात सुनी। सभी लोगों को वह प्रिय थी। इससे उसके इस प्रकार एकाएक गायब हो जाने के कारण गांव के सभी लोग दुखित हुए। किसी ने आंसू बहाए, कोई शुभदा को समझाने आया। कोई तरह-तरह का अनुमान कर उसके गायब होने का कारण खोजने लगा। इसी प्रकार चार-पांच दिन का समय बीत गया।

शुभदा पहले माधवचंद्र के सम्मुख भी ललना के लिए रो पड़ी थी, लेकिन जब स्वयं माधवचंद्र की दशा की तरफ उसका ध्यान गया, तब उसने सारे आंसू रोक लिए। मां का अधिक क्लेश देखने पर संभव था कि वह भीतर की बात कह डालता, किंतु जब उसने देखा कि सारा मामला शांत हो गया है, तब वह कुछ नहीं बोला।

माधवचंद्र के रंग-ढंग के कारण शुभदा को विस्मय अवश्य बहुत हो रहा था। वह सोच रही थी कि भला माधव क्यों नहीं अपनी बड़ी दीदी के संबंध में कुछ पूछता? एक बार भी वह मुंह से नहीं निकालता कि दीदी कहां गई? एक बार भी वह नहीं पूछता दीदी क्यों नहीं आई? शुभदा को थोड़ी-बहुत शंका हुई कि माधव शायद कुछ जानता है, लेकिन साहस करके यह बात वह पूछ नहीं पाती थी।

ललना को घर से गायब हुए छह दिन बीत गए। आज नंद धीवरिन ने मछलियां पकड़ते-पकड़ते देखा कि एक ऐसे स्थान पर, जहां कोई नहीं है, चौड़े लाल किनारे की एक साड़ी पड़ी हुई है। आधी वह पानी में है और आधी जमीन

पर। साड़ी भर में बालू लिपटी हुई है। हाराण बाबू के घर के नजदीक ही उसका भी घर था। वह साड़ी पहनते हुए ललना को काफी दिनों से देखती आ रही थी। इससे उसे संदेह हुआ कि संभवत: यह साड़ी ललना की ही है। तुरंत ही आकर उसने यह बात रासमणि को बताई। वे दौड़ती हुई गंगा-घाट पर गईं। साड़ी पहचानने में देर नहीं हुई, वह ललना की ही थी।

रासमणि रोते-रोते वह साड़ी उठा लाई। शुभदा ने देखा, हाराणचंद्र ने देखा, छलना ने देखा, पास-पड़ोस के और दस आदमियों ने देखा। बात ठीक ही थी। वह साड़ी ललना की ही थी। अपने हाथ से ही उसने उसे सी लिया था, अपने हाथ से ही उसने उसमें पैवंद लगाया था और अपने हाथ से ही एक कोने में लाल रंग के धागे से उसने अपना नाम लिख रखा था। अब भी क्या कोई संदेह करने की बात रह गई थी? मूर्च्छित होकर शुभदा गिर पड़ी। पूरे गांव में यह बात फैल गई कि मुखर्जी के यहां की ललना पानी में डूबकर मर गई।

दूसरा अध्याय

एक दिन नारायणपुर के जमींदार श्रीयुत सरेन्द्रनाथ चौधरी के मन में यह बात आई कि मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया है, वायु परिवर्तन न करने पर शायद बीमार पड़ जाऊंगा। सुरेन्द्र बाबू की आमदनी बहुत अधिक थी, किंतु अवस्था उनकी अधिक न थी, लगभग पच्चीस वर्ष होगी। इस अवस्था के अनुसार ही उन्हें शौक भी नाना प्रकार के थे। इससे साथियों-संगियों का अभाव नहीं था। बैठकबाजी करने वाले दो-चार व्यक्तियों को बुलाकर उन्होंने कहा, 'मेरी तबीयत आजकल अच्छी नहीं मालूम पड़ती है। तुम लोगों का क्या खयाल है?'

सभी लोगों ने मुक्तकंठ से स्वीकारा कि इस बात में संदेह नहीं है। वे लोग इस बात को बहुत दिनों से अनुभव कर रहे थे, पर कह इसलिए नहीं पा रहे थे कि कहीं इससे आप क्लेश अनुभव न करें।

सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'डॉक्टरी औषधि के सेवन करने की जरूरत नहीं होगी। मेरा तो विश्वास है कि वायु-परिवर्तन द्वारा ही सारी शिकायतें दूर हो जाएंगी।'

इस विषय में किसी ने संदेह नहीं प्रकट किया। सबने कहा, 'वायु-परिवर्तन से बढ़कर क्या औषधि हो सकती है?'

सुरेन्द्र बाबू ने पूछा, 'वायु परिवर्तन के लिए कहां जाना उचित होगा, बता सकते हो?'

कुछ लोगों ने भिन्न-भिन्न स्थानों के नाम बताए।

कुछ देर सोच-विचार करने के बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'कुछ समय तक नौका ही में रहा जाए तो क्या कोई हानि होगी?'

सब लोगों ने कहा—यह तो बहुत ही उत्तम विचार है। अब नौकावास के लिए धूमधाम से तैयारी होने लगी। एक बड़ा-सा बजरा सजाया जाने लगा। दो-तीन महीने के लिए जो-जो वस्तुएं जितनी मात्रा में आवश्यक हो सकती थीं, बजरे में रखी गईं। बाद में पंचांग देखकर सुरेन्द्र बाबू एक शुभ दिन उसमें जा बैठे। साथ में उनके गाने-बजाने वाले तथा कई संगी-साथी भी चले। उन सबके बीच में एक गायिका को भी स्थान मिला। मल्लाहों ने पाल उठाकर देवी-देवताओं का स्मरण करते हुए नदी में नौका छोड़ दी।

हवा अनुकूल थी इसलिए पाल के सहारे वह बड़ा-सा बजरा राज-हंसनी की भांति चलने लगा। स्थान-स्थान पर लंगर डाल दिया जाता। सुरेन्द्र बाबू दल-बल लिए इधर-उधर घूमने लगे। इस प्रकार जल तथा स्थल के कितने ही स्थानों का भ्रमण किया गया। बहुत दिन बीत गए, अंत में बजरा आकर कलकत्ता में लगा और जितने आदमी थे, उन सबकी इच्छा थी कि यहां अधिक दिन तक रहा जाए, किंतु सुरेन्द्र बाबू इस पर तैयार न हुए। उन्होंने कहा, 'कलकत्ता की वायु और स्थानों की अपेक्षा दूषित है। यहां मैं न रहूंगा, बजरा उत्तर की ओर बढ़ाओ।'

सुरेन्द्र बाबू की इस आज्ञा के कारण कलकत्ता में केवल एक दिन रहकर बजरा उत्तर की ओर चल पड़ा। कलकत्ता से जब वह रवाना हो गया, तब सुरेन्द्र बाबू के साथी सोचने लगे, बजरे में बहुत दिनों तक निवास किया जा चुका। अगणित जल-कणों को लेकर चलने वाली स्निग्ध वायु सेवन के कारण शरीर को बड़ा सुख मिला, साथ ही स्वास्थ्य भी बहुत सुधर गया है। अब तो यदि लौटकर घर जा सकते और स्त्री-बच्चों का मुंह देख पाते तो शरीर की शांति संभवतः बढ़ सकती। मन में यह धारणा उत्पन्न हो जाने के कारण और आगे बढ़ने के लिए बहुत-से लोग अनिच्छुक हो उठे और घर लौट जाने की इच्छा प्रकट की। दो-चार लोगों ने मुंह खोलकर इसे कहा भी, घर छोड़कर परदेश में रहते काफी दिन हो गए। अब आपका स्वास्थ्य भी ठीक हो गया है। अब वापस लौटना उचित है।

सुरेन्द्र बाबू ने किंचित मुस्कराकर कहा, 'अभी लौटने की इच्छा नहीं है। अगर आप लोगों की जाने की इच्छा है तो चले जाएं।'

साधारण घर, पत्नी, बच्चों के लिए उदास होना उचित नहीं है। यह समझकर, जिन लोगों ने प्रस्ताव पेश किया था, वे लोग चुप हो गए। सुरेन्द्र बाबू ने भी कुछ नहीं कहा।

बजरा रुकने के बजाय आगे बढ़ा, पर अब पहले की तरह आनंद नहीं था। सुरेन्द्र बाबू के अलावा सभी उदास रहने लगे। दो दिन पहले जो लोग उदास हुए थे, वे पुनः उदास हो गए। उनकी आंखों के सामने घर, पत्नी, बच्चों के चेहरे घूमने लगे। एक-एक दिन एक-एक साल लगने लगा, अंत में वही हुआ। पुनः प्रस्ताव पेश किया गया।

सुरेन्द्र बाबू ने मना किया। तब बजरे के चंदन नगर से आगे निकलने से पहले ही प्रायः सभी लोगों ने अपना-अपना रास्ता लिया। सुरेन्द्र बाबू तथा उनके नौकरों को छोड़कर अब बजरे में लगभग कोई भी न रह गया। बाहरी आदमियों में एक व्यक्ति था, जो तबला-सारंगी वगैरह बजाता था और एक थी नर्तकी, जो सुरेन्द्र

बाबू की बहुत कृपापात्री थी। उन्हीं को लेकर बाबू साहब आगे बढ़े। देश को लौटने का उन्हें एक बार भी खयाल नहीं आया।

एक दिन की बात है, दिन का चौथा पहर था। सूर्य भगवान अभी तक अस्तांचल तक नहीं पहुंच पाए थे। पश्चिम के आकाश पर बादल चढ़ने लगे। एक नाविक को बुलाकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'हरीचरण, देख रहे हो न कि बादल चढ़ते चले आ रहे हैं।'

'जी हां।'

'आंधी आने वाली है।'

'वैशाख-जेठ का महीना है, आंधी तो आएगी ही।'

'तब बजरा किनारे लगाओ।'

'आसपास गांव नहीं है। बिना घाट के लगाना ठीक नहीं होगा।'

'नहीं लगाओगे तो सभी को डूबो दोगे?'

मांझी ने हंसकर कहा, 'मेरे रहते डरने की बात नहीं है बाबू। आंधी आने से पहले ही लंगर डाल दूंगा।'

'यह सब करने की जरूरत नहीं, तुम किनारे ले चलो।'

फलस्वरूप अच्छे स्थान को देखकर बजरा किनारे लगाया गया।

सुरेन्द्र बाबू बजरे की छत पर आकर बैठ गए। नौकर हुक्का रख गया। हुक्का पीते हुए उन्होंने एक नौकर से कहा, 'उस्तादजी को बुलाओ।'

कुछ देर बाद पगड़ी बांधे उस्तादजी हाजिर हुए और कहा, 'हुजूर!'

किनारे पहुंचने पर सुरेन्द्र बाबू की निगाह एक काली-सी चीज की तरफ गई। नदी के उस पार तट के बिलकुल समीप ही जल के ऊपर वह तैर रही थी। सुरेन्द्र बाबू ध्यानपूर्वक उसे देख रहे थे। उन्हें ऐसा लग रहा था, मानो किसी मनुष्य का सिर है।

उस्तादजी को देखकर उन्होंने कहा, 'उस्तादजी शायद अब तूफान नहीं आएगा, कुछ गाना-बजाना होना चाहिए।'

सिर हिलाकर उस्तादजी ने कहा, 'जैसी आपकी आज्ञा!'

सुरेन्द्र बाबू फिर वही काली-काली वस्तु देखने लगे।

थोड़ी देर बाद ही एक गाने वाली युवती आकर पास ही गलीचे पर बैठ गई। उस्तादजी भी बाजा-तबला लिए हुए बजरे की छत पर चढ़ रहे थे। यह देखकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'तुम नीचे जाओ, बाजे-तबले की जरूरत नहीं है, आज ऐसे ही गाना होगा।'

एक सूखी हंसी हंसकर उस्तादजी नीचे चले गए।

जो स्त्री आकर गलीचे के ऊपर बैठी थी, उसका नाम था जयावती। उम्र

उसकी लगभग बीस वर्ष की थी। वह बहुत हृष्ट-पुष्ट थी और उसका शरीर सुडौल था। देखने में वह बुरी नहीं थी। सुरेन्द्र बाबू की कृपा वह बहुत दिन से प्राप्त करती चली आ रही थी। बंगाली के घर की बेटी थी। साज-शृंगार में भी कुछ अधिक आडंबर नहीं था। काले किनारे की एक देशी साड़ी और दो-एक जेवर पहनकर वह बहुत ही शांत और शिष्ट कुलवधू की तरह स्थिर होकर बैठी हुई थी। उसकी तरफ देखकर सुरेन्द्र बाबू जरा मुस्कराए और बोले, 'जया, आज पूरा दिन मैं तुम्हें क्यों नहीं देख सका हूं?'

'सिर में दर्द हो रहा था, इसी कारण दिन-भर पड़ी रही।'

'अब तो दर्द नहीं है?'

तनिक हंसकर जयावती ने कहा, 'थोड़ा-थोड़ा तो हो रहा है।'

'तो क्या गाना गा सकोगी?'

जयावती हंसी। उसने कहा, 'आज्ञा दीजिए।'

'आज्ञा की कौन-सी बात है? जो इच्छा हो, गाओ।'

जयावती ने एक गीत गाना शुरू किया।

सुरेन्द्र बाबू अन्यमनस्क भाव से जयावती का गीत सुनने लगे, लेकिन उनकी निगाहें तो उस पर तैरती हुई उस काली-काली चीज पर ही लगी हुई थीं। कुछ देर तक सुनते रहने के बाद जयावती का गीत खत्म होने से पहले ही वे बोल उठे, 'देखो जया, वह क्या चीज बह रही है?'

जयावती ने गाना बंद कर दिया। ध्यानपूर्वक उस तरफ देखकर उसने कहा, 'मालूम तो कुछ पड़ता है।'

'तो दूरबीन लेकर उसे देखना चाहिए।'

दूरबीन का बक्स आया। खोलकर सुरेन्द्र बाबू ने आंख से दूरबीन लगाई और देखने लगे कि क्या चीज है?

जयावती ने पूछा, 'क्या है?'

'एक आदमी-सा मालूम पड़ता है।'

'इतनी देर से पानी में कर क्या रहा है?'

'पता नहीं, देखने पर मालूम होगा।'

'तो एक आदमी भेज दीजिए।'

'मैं स्वयं जाऊंगा।' सुरेन्द्र बाबू की आज्ञा के अनुसार नाविक ने बजरे से खोलकर छोटी नाव सामने लगाई। उस पर बैठकर सुरेन्द्र बाबू ने नाविक को आज्ञा दी, 'उस पार ले चलो।'

नाव जब लक्ष्य स्थान के समीप पहुंच गई, तब सुरेन्द्र बाबू ने देखा कि एक तरुणी गले भर पानी में खड़ी है। कमल के समान अनिन्द्य सुंदर कांति है। मेघ

के समान काले-काले उसके बाल नीले पानी पर चारों ओर फैले हुए हैं। सुरेन्द्र बाबू और भी पास पहुंच गए, परंतु वह स्त्री न तो नौका पर चढ़ी और न उसने उस संबंध में कुछ इच्छा ही प्रकट की। पहले की तरह वह चुपचाप खड़ी रही।

कुछ देर के बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'क्या आस-पास कोई गांव है?'

तरुणी ने कहा, 'मालूम नहीं शायद नहीं है।'

'तो तुम यहां कहां से आई हो?'

तरुणी कुछ न बोली।

'क्या तुम्हारा घर कहीं पास ही है?'

'नहीं, बहुत दूर है।'

'तो यहां क्यों आई हो?'

'हमारी नाव डूब गई है।'

'कब?'

'कल रात में।'

'तुम्हारे साथ के आदमी कहां हैं?'

'पता नहीं।'

'तुम अभी तक पानी में ही क्यों खड़ी हो? आस-पास के किसी गांव की तलाश क्यों नहीं की?'

तरुणी फिर चुप रही।

बात का उत्तर न पाकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'तुम्हारा घर यहां से कितनी दूर होगा?'

'दस-बारह कोस के करीब।'

'किस तरफ?'

जिस तरफ को सुरेन्द्र बाबू का बजरा जा रहा था, उसी तरफ इशारा करके तरुणी ने कहा, 'उस तरफ।'

जरा-सा सोचकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'मैं उसी तरफ जा रहा हूं। मेरे बजरे में एक स्त्री भी है, अगर तुम्हें किसी प्रकार की आपत्ति न हो तो मेरे साथ चलो। तुम्हें मैं घर पहुंचा दूंगा।'

इस बात का कोई उत्तर न पाकर तरुणी की चुप्पी दूर करने की कोशिश करते हुए सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'चलोगी?'

'चलूंगी।'

'तो आओ!'

इस बार फिर कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा, 'मेरी धोती बह गई है।'

अब सुरेन्द्र बाबू की समझ में यह बात आई कि यह इतनी देर से पानी में क्यों खड़ी है। इससे वे स्वयं तो तट पर उतर गए और नाविक को उन्होंने आज्ञा दी कि तुम बजरे में जाकर एक धोती ले आओ। बाद में तरुणी से उन्होंने पूछा, 'कपड़ा मिल जाने पर मेरे साथ चलोगी न?'

तरुणी ने सिर हिलाकर अपनी सहमति प्रकट की।

नाविक कपड़ा लेकर लौट आया। उसके थोड़ी देर बाद ही सुरेन्द्र बाबू सबको लिए हुए आकर बजरे में बैठे।

बजरे में पहुंचने पर सुरेन्द्र बाबू ने उस स्त्री को जयावती के हवाले किया। जयावती मधुर भाषण के द्वारा उसका स्वागत करके बहुत ही आदरपूर्वक अपने कमरे में ले गई और उसने सारी रात उसे वहीं रखा।

जयावती ने उस तरुणी को खाना खिलाया, बाद में अपने पास बैठाकर उसने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है बहन?'

'मेरा नाम तो मालती है और तुम्हारा नाम?'

'मेरा नाम है जयावती। अच्छा, तुम्हारा घर कहां है?'

'महेशपुर में।'

'यहां से वह कितनी दूर होगा?'

'उत्तर की ओर करीब दस-बारह कोस की दूरी पर होगा।'

'और ससुराल तुम्हारी कहां है?'

थोड़ा-सा हंसकर मालती ने कहा, 'कहीं नहीं।'

'यह कैसे? क्या शादी नहीं हुई?'

'शादी हुई थी, परंतु अब सब खत्म हो चुका है।'

जरा दुखित भाव से जयावती ने पूछा, 'कितने दिन हुए होंगे?'

'बहुत दिन। वे सब बातें मुझे अब याद नहीं आतीं।'

वह बात दबाकर जयावती ने पूछा, 'तुम्हारे घर में कौन-कौन प्राणी हैं?'

'कोई नहीं है। एक बुआ थीं, शायद वे भी अब जिंदा नहीं हैं।'

जयावती ने समझा कि शायद इस बात से नौका-दुर्घटना का संपर्क है। इससे इसके संबंध में भी बातें करना उसने ठीक नहीं समझा, 'तो क्या तुम लोग कहीं जा रही थीं?'

कुछ देर सोचकर मालती ने कहा, 'सागर द्वीप को।'

'जो लोग तुम्हारे साथ थे, उन सबका क्या हुआ?'

'मालूम नहीं।'

'घर जाओगी अब?'

'यही सोच रही हूं।'

जरा-सा हंसकर जयावती बोली, 'मेरे साथ चलोगी?'

'अगर ले चलोगी तो चलूंगी। तुम्हारे स्वामी ने मेरा बड़ा उपकार किया है। इसके सिवा घर में भी मेरा अपना कोई नहीं है। घर पहुंचने पर भी किसके पास रहूंगी यह मालूम नहीं है।'

जयावती ने मालती के साथ चलने को कह तो दिया, लेकिन उसके बाद ही उसने दांत तले जीभ दबाई। मालती का उत्तर सुनकर वह मन-ही-मन शंकित भी हुई। जयावती के मन में यह बात आई कि मालती को साथ ले जाना अच्छा काम नहीं है।

मालती ने पूछा, 'तुम्हारा घर कहां है?'

'नारायणपुर में।'

'कहां जाना हो रहा है?'

'घूमने के लिए। बाबू साहब की तबीयत अच्छी नहीं है, इसलिए...।'

दो-चार बातें और हुईं। बाद में उन दोनों को ही नींद आ गई।

रातभर सुरेन्द्र बाबू को अच्छी तरह नींद नहीं आई इसलिए बहुत सवेरे ही शय्या का परित्याग करके वे उठ गए। हाथ-मुंह धोकर गुड़गुड़ी के नेचे में मुंह लगाए हुए वे आकर ऊपर छत पर बैठे। वायु का जोर था, पाल उठाकर मल्लाहों ने बजरा खोल दिया। कुछ दिन चढ़ जाने पर जयावती को बुलाकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'क्या तुम उस औरत के बारे में कुछ मालूम कर सकी हो?'

'सब कुछ।'

'उसका घर कहां है?'

'महेशपुर में।'

'महेशपुर कहां है?'

'यह नहीं मालूम है। यहां से दस-बारह कोस उत्तर में है।'

उसके बाप का नाम क्या है।

'पूछा नहीं है।'

सुरेन्द्र बाबू ने हंसकर कहा, 'तब तो मानो उसका सारा हाल जान लिया। उसके पति का क्या नाम है?'

'पति नहीं है।'

'ससुराल कहां है?'

'यह उसने नहीं बतलाया।'

कुछ सोचकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'वह किस जाति की है, क्या तुम्हें मालूम नहीं है?'

'नहीं।'

'नाम जानती हो?'

'जानती हूं। उसका नाम मालती है।'

'अगर मालती को आपत्ति न हो तो जरा देर के लिए उसे मेरे कमरे में बुलाओ, मैं स्वयं उससे सब बातें पूछूंगा।'

जरा देर के बाद एक नौकर ने आकर कहा, 'कमरे में आइए।'

सुरेन्द्र बाबू वहां जरा भी देर न करके कमरे में जा पहुंचे। नीचे गलीचे पर मालती सिर झुकाए हुए बैठी थी। जयावती भी पास ही खड़ी थी, किंतु सुरेन्द्र बाबू के प्रवेश करते ही वह वहां से चली गई। वह जानती थी कि मेरे यहां रहने पर संभव है, सब बातें न हो सकें। संभव है कि बातचीत में कुछ असुविधा हो, इसलिए वह वहां से हट गई, किंतु ओट में वह खड़ी थी या नहीं, सुरेन्द्र बाबू और मालती की सब बातें सुनने की उसके मन इच्छा थी या नहीं, यह ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता।

कमरे में आकर सुरेन्द्र बाबू एक कोच पर बैठ गए। देर तक चुपचाप वे मालती के मुंह की तरफ देखते रहे। उसका मुंह बहुत ही मलिन था, बहुत ही विषादमय था, परंतु देखने में वह बहुत ही मनोमुग्धकर मालूम पड़ रहा था। उसके शरीर का रंग बहुत ही सुंदर था, अंग-प्रत्यंग का गठन देखकर चित्त प्रसन्न हो उठता था। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा, मानो इतना सौंदर्य उन्होंने पहले कभी देखा ही नहीं था।

सुरेन्द्र बाबू खयाल करने लगे कि यह स्त्री विधवा है, लेकिन जाति इसकी क्या है? इसी तरह कुछ देर सोच-विचार करने के बाद आखिर में उन्होंने मुंह खोलकर पूछा, 'तुम्हारे पिता का क्या नाम है?'

मालती ने कहा, 'हाराणचंद्र मुखोपाध्याय।'

'क्या वे घर पर ही हैं?'

तनिक सोच-विचारकर मालती ने कहा, 'नहीं, वे घर पर नहीं हैं।'

सुरेन्द्र बाबू ने समझ लिया कि इसके पिता की मृत्यु हो गई है। उन्होंने पूछा, 'घर पर और कौन है?'

इस बार मालती बहुत देर तक चुप रही। बाद में धीरे-धीरे उसने कहा, 'संभवत: कोई नहीं है।'

'इतने दिनों तक तुम थीं कहां?'

'वहीं थी, लेकिन हम लोग सागर पार जा रहे थे, रास्ते में नौका डूब गई।'

'तुम्हारी ससुराल कहां है?'

'कालीपाड़ा में।'

'वहां तुम्हारा कौन है?'

'कोई-न-कोई होगा ही, लेकिन उन सबको मैं पहचानती नहीं।'

'वहां कभी गई नहीं हो?'

'शादी के समय केवल एक बार गई थी।'

कुछ देर सोचते रहने के बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'तुम्हारे पिता के यहां भी कोई नहीं है, ससुराल में भी कम-से-कम तुम्हारी जानकारी में कोई नहीं हैं। ऐसी हालत में इस समय तुम जाओगी कहां?'

'कलकत्ता।'

'कलकत्ता तुम्हारा कौन है?'

'कोई नहीं?'

'कोई नहीं है। तब कलकत्ता में कहां रहोगी?'

'किसी-न-किसी का घर ढूंढ़ लूंगी।'

'उसके बाद।'

मालती चुपचाप बैठी रही।

सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'क्या तुम भोजन बनाना जानती हो।'

'जानती हूं।'

'कलकत्ता में यदि तुम्हें कहीं भोजन बनाने का काम मिल जाए तो क्या तुम करोगी?'

'हां।'

सुरेन्द्र बाबू बड़ी देर तक चुप रहे। बाद में धीरे-धीरे उन्होंने कहा, 'क्यों मालती, कलकत्ता के अलावा अगर और जगह तुम्हें काम मिल जाए तो क्या तुम करोगी?'

सिर हिलाकर मालती ने कहा, 'नहीं।'

इस उत्तर से सुरेन्द्र बाबू कुछ दुखी-से हुए और कुछ देर तक सोच-विचार करने के बाद उन्होंने कहा, 'कलकत्ता में तुम जो कुछ प्राप्त करने की आशा करती हो, दूसरी जगह तुम उससे अधिक पाओ तो करोगी या नहीं?'

मालती ने पहले की ही तरह सिर हिलाया, 'कलकत्ता के सिवा मैं और कहीं न जाऊंगी।'

सुरेन्द्र बाबू ने एक लंबी सांस ली। उसका मुरझाया हुआ मुख देखकर मालती भी समझ गई कि मेरी बात सुरेन्द्र बाबू के मन के अनुकूल नहीं हुई। इससे उन्होंने शायद दुख का अनुभव किया है।

दूसरी तरफ देखते हुए सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'जो लोग कलकत्ता को जानते नहीं, उनके लिए वह बहुत ही बुरी जगह है। तुम्हारे मन की जो इच्छा हो, उसी

के अनुसार काम करो, परंतु रहना खूब सावधानी से। तुमसे एक बात और कहता हूं। मेरा नाम है सुरेन्द्रनाथ चौधरी, मेरा घर नारायणपुर में है। यदि कभी तुम्हारा कोई काम पड़े तो मुझे सूचना देना या मेरे घर आ जाना। विपत्ति के समय तुम्हारा कुछ-न-कुछ उपकार कर सकता हूं।'

मालती सिर झुकाए मौन भाव से बैठी रही।

'एक सप्ताह के बाद हम लोग लौटकर कलकत्ता की तरफ चलेंगे। तब तक तुम इसी बजरे में रहो। कलकत्ता पहुंचने पर तुम उतर जाना।'

सुरेन्द्र बाबू के चले जाने पर मालती अपनी जगह पर खड़ी होकर रोने लगी।

सुरेन्द्र बाबू की बातों से उसने वेदना का अनुभव किया था, किंतु उसके रोने के और भी सैकड़ों-हजारों कारण थे। सुरेन्द्र बाबू ने उसकी लज्जा का निवारण किया था, बजरे में उसे स्थान दिया था और भी अधिक उपकार किया था। भविष्य में उपकार करने की आशा भी दे रहे थे, परंतु मालती क्या केवल भोजन बनाने की नौकरी करने के उद्देश्य से कलकत्ता जा रही थी। स्नेहमयी माता, रोग शय्या पर पड़े हुए भाई, असहाय परिवार का परित्याग करके क्या वह केवल उदर-पूर्ति के लिए आई थी। याचिका का कार्य करने की बात तो केवल छलमात्र थी। वह चाहती थी धन पैदा करना और कलकत्ता के अलावा और कहीं अधिक मात्रा में धन प्राप्त होना संभव नहीं था। धन पैदा करने का मार्ग उसने निर्धारित कर लिया था। वह जानती थी कि मैं रूपवती हूं और अनुपम रूपवती हूं। कलकत्ता बड़ा और समृद्धशाली नगर है। वहां यह रूप लेकर जाने पर इसके विक्रय के लिए चिंता न करनी पड़ेगी। इस रूप का मूल्य भी यथासंभव आशा से कहीं अधिक मिलेगा। इसी से वह कलकत्ता जाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हुई थी। उसने सोचा था कि वहां मेरा आदर होगा। अभी मैं दरिद्र हूं, बाद में धनवती हो जाऊंगी। अभी तक दुख से जीवन बीत रहा था, अब सुख में बीतेगा, परंतु मन में इस तरह की धारणा बद्ध-मूलकर रखने पर भी भला वह रोती क्यों थी? दुख किस बात का था उसके मन में, लेकिन इसे तो केवल वही बता सकती थी।

दूसरे दिन बजरा हलुदपुर नामक ग्राम के नीचे होकर चलने लगा। मालती खिड़की खोलकर बंधे हुए घाट की तरफ ताकती रही। घाट पर कोई मनुष्य नामधारी जीव नहीं था। जिस आशा से मालती ताक रही थी, वह पूरी नहीं हुई। गांव छोड़कर बजरा दूर चला गया। मालती खिड़की बंद करके सिसक-सिसककर रोने लगी।

जयावती उसके समीप जाकर बैठी और उसकी आंखें पोंछकर स्नेहपूर्वक बोली, 'रोने से लाभ क्या होगा बहन। उन लोगों का समय हो गया था इसीलिए माता गंगा ने उन्हें गोद में ले लिया है।'

जयावती के मन में यह बात आई कि नौका डूबने के कारण जो लोग जलमग्न हो गए हैं, मालती उन्हीं के लिए रो रही है। आंखें पोंछकर मालती उठकर बैठ गई। जयावती उसकी अपेक्षा अवस्था में अधिक थी। उससे वह स्नेह किया करती थी, उसे अपनी छोटी बहन समझती थी। विशेषत: यह सुनकर कि मालती कलकत्ता में उतर जाएगी, उसका स्नेह और बढ़ गया था। उसके उठकर बैठने पर जयावती तरह-तरह की बातों से उसका दुख भूलाने की कोशिश करने लगी।

श्री काशीधाम में मृत्यु होने पर शिवलोक प्राप्त किया जा सकता है, ऐसा हिंदुओं का विश्वास है इसलिए सदानंद की बुआ काशी गईं। वहां से वे लौटीं नहीं। सदानंद ने पुण्यात्मा बुआ का काशीधाम में गंगाजी के तट पर दाह-संस्कार किया और चिरकाल तक उनके शिवलोक में वास करने की व्यवस्था कर दी। बाद में वह हलुदपुर वापस आया।

बहुत रात हो जाने पर पागल सदानंद ने सूने घर में प्रवेश किया। अपने हाथों से बनाकर उसने थोड़ा-सा भोजन किया। तब उसके मन में आया की मैं जाकर हाराण बाबू के घर का हाल ले आऊं, परंतु बाद में उसके मन में आया कि इतनी रात में लोगों से मिलने-जुलने में सुविधा न होगी, इससे उनके यहां जाने का विचार उसने छोड़ दिया और बिस्तर लगाकर वह सो गया। काशी में निवास करते समय सदानंद के मन में हाराणचंद्र के परिवार की समस्याएं दूर नहीं हो सकी थीं। हाराण बाबू के चरित्र-संबंधी बातें, शुभदा के दुर्भाग्य की बातें और ललना के कष्टों की बातें उसके मन में प्राय: आया करती। रोग शय्या पर पड़ी हुई बुआ की सेवा में अत्यंत ही व्यस्त रहने पर भी वह उसको भूल नहीं पाता था। बीच में एक बार पत्र लिखकर भी उन सबका हाल लिया था, परंतु बाद में किसी भी पक्ष ने किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार नहीं किया। इससे इधर एक महीने से हाराण बाबू के यहां का कोई भी समाचार सदानंद को पता नहीं था।

वापस घर आ जाने पर सदानंद के हृदय में हाराण बाबू के परिवार की समस्याएं विशेष रूप से उदित हो आई। रात में बहुत देर तक उसे नींद नहीं आ सकी। बादलों पर कमल खिलते हैं या नहीं? ललना ने कहा था, 'बिना मिट्टी के फूल उत्पन्न नहीं होते—क्या यह बात सही है?' उसने यह भी कहा था कि उसे कैसे मालूम हुआ कि बादलों पर कमल नहीं खिल सकते। बहरहाल सदानंद ने यह निश्चय किया कि ऊपर कमल खिल सकते हैं, पर अधिक दिनों तक खिले नहीं रह सकते, आगे सूख जाएंगे।

दूसरे दिन सदानंद फूल, बेलपत्र, बाबा विश्वेश्वर का प्रसाद आदि बहुत-सी वस्तुएं लिए हुए सीधे हाराण बाबू के यहां जाकर उपस्थित हुआ।

घर के भीतर पैर रखते ही उसने शुभदा को देखा। उस वक्त वह आंगन में झाड़ू दे रही थी। झाड़ू रखकर सिर पर का कपड़ा जरा-सा खींच लेने के बाद शुभदा ने कोमल स्वर में कहा, 'कब आए सदानंद?'

'कल रात में।'

'सब लोग अच्छे हैं न?'

सदानंद दुखित भाव से थोड़ा-सा हंसा। बाद में वह बोला, 'सब लोगों में तो बुआजी अकेली थीं, सो उनकी काशीजी में ही मृत्यु हो गई।'

शुभदा यह बात नहीं जानती थी। सदानंद की बातें सुनकर अपने को संभाल न सकी, आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। बड़ी देर के बाद वह बोली, 'भैया, ललना भी अब नहीं रही।'

विस्मित होकर सदानंद ने कहा, 'नहीं रही! कहां गई?'

रोते-रोते शुभदा बोली, 'जाएगी कहां भैया? बेटी मेरे परिवार का दुख क्लेश देखते-देखते ऊब गई थी, इससे उसने आत्महत्या कर ली। पांच दिन हुए गंगा तट पर उसकी धोती मिली है।'

शुभदा फफक-फफककर रोने लगी। सदानंद ने भी आंखें पोंछी, लेकिन उसकी आंखों में दो-एक बूंद से अधिक आंसू नहीं आए। शुभदा जब तक शांत नहीं हुई, तब तक वह चुपचाप बैठा रहा, आखिर उनके शांत होने पर उसने पूछा, 'कुछ कह नहीं गई वह?'

'कुछ नहीं।'

'हाराण चाचा कहां हैं?'

आंखें पोंछकर शुभदा बोली, 'कह नहीं सकती। किसी-किसी दिन वे घर आते जरूर है।'

'आजकल वे करते क्या हैं?'

'यह भी नहीं जानती।'

'माधव कैसा है?'

'पहले की ही तरह।'

'और सब लोग?'

'अच्छी तरह हैं।'

सदानंद उठने ही जा रहा था। शुभदा ने कहा, 'तुम्हारे यहां भोजन कौन बनाएगा?'

'मैं स्वयं बना लूंगा।'

कुछ सोचकर शुभदा बोली, 'यहां भोजन करने में क्या असुविधा है?'

'असुविधा क्या है? लेकिन इसके लिए कोई चिंता नहीं है। भोजन बनाने में कोई कष्ट नहीं होता।'

'इससे क्या? तुम यहीं भोजन करना।'

कुछ सोचकर सदानंद ने कहा, 'किंतु आज नहीं। आज बुआजी का तर्पण करना होगा।'

शुभदा ने सोचा, 'सदानंद ठीक ही कहता होगा, इससे उसने फिर कुछ नहीं कहा।'

घर आकर सदानंद ने द्वार बंद कर लिया और वह जमीन पर ही लेट गया। यह प्रातःकाल आठ बजे का समय था। बाद में जब उसकी नींद टूटी, तब रात के आठ बजे थे। शुक्ल पक्ष की रात थी। चांदनी का प्रकाश चारों दिशाओं को प्रकाशित किए हुए था। सदानंद घर से निकल पड़ा। एक बगीचे को पार करके वह शारदाचरण के पिछवाड़े पहुंचा। वहां एक खिड़की के पास खड़े-खड़े काफी देर तक देखने के बाद उसने पुकारा, 'शारदा!'

शारदा घर ही में था। सदानंद की आवाज उसके कानों में पड़ी। खिड़की के पास आकर वह बोला, 'कौन है?'

सदानंद ने कहा, 'मैं हूं।'

'कौन? सदानंद!'

'हां।'

'तुम कब आए!'

'कल रात में।'

'इस तरह क्यों खड़े हो? चलो बैठक में बैठें।'

'नहीं, उस तरफ मैं नहीं जाऊंगा, तुम यहीं आओ।'

शारदाचरण के पास आ जाने पर सदानंद ने कहा, 'ललना मर गई है, यह बात तुम जानते हो?'

बहुत ही दुखी भाव से शारदाचरण ने कहा, 'जानता हूं।'

'क्यों मरी, क्या यह भी तुम्हें मालूम है?'

'यह तो नहीं मालूम है, लेकिन मेरा अनुमान यह है कि पारिवारिक दुख-क्लेश के कारण उसने आत्महत्या कर ली है।'

गौर से शारदाचरण की तरफ देखते हुए सदानंद ने कहा, 'और कुछ नहीं जानते हो?'

'नहीं।'

अपनी दृष्टि को अधिक-से-अधिक तीक्ष्ण करके सदानंद ने कहा, 'तुम अधर्मी हो। पारिवारिक दुख-क्लेश के कारण एक आदमी प्राण दे सकता है और तुम सामने ही विद्यमान रहकर भी उनकी किसी प्रकार सहायता नहीं कर सकते हो।'

सदानंद की भाव-भंगिमा देखकर शारदाचरण जरा-सा संकुचित हो उठा। उसका कारण भी था, बात यह थी कि सदानंद से उसकी बाल्यकाल से ही घनिष्ठ मित्रता थी। इससे उन दोनों को एक-दूसरे का रत्ती-रत्ती हाल मालूम था। शारदाचरण के बचपन संबंधी ऐसी कोई भी बात नहीं थी, जो सदानंद को मालूम न रही हो, परंतु इसीलिए आज वह शारदाचरण को चार बातें सुना देता। ऐसी प्रकृति सदानंद की नहीं थी, परंतु शारदाचरण कुछ और ही समझ बैठा। उसने सोचा कि बचपन की बातों को याद करके यह मुझे ताने देने आया है।

थोड़ी देर सोचने के बाद शारदाचरण ने कहा, 'सदानंद, ये बातें कहने से अब लाभ क्या है ? तुम्हें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि अभी मेरे पिता जीवित हैं। उनके विद्यमान रहने पर क्या मैं इच्छानुसार हर एक आदमी की सहायता कर सकता हूं ? विशेषत: ऐसी परिस्थिति में, जबकि उसने मुझसे कभी कुछ कहा भी नहीं।'

सदानंद विस्मित हो गया। उसने कहा, 'कुछ कहा नहीं ? कभी वह तुमसे कुछ कहने नहीं आई थी ?'

'इधर तो नहीं आई थी। आज से बहुत दिन पहले एक बार जरूर आई थी।'

'किस मतलब से ? कहां मिली थी वह तुमसे ?'

शारदाचरण ने कहा, 'सुनो, मैं सब बतला रहा हूं। आज से महीना-भर पहले की बात है। बड़ी रात को शिव मंदिर में आने के लिए उसने मुझसे अनुरोध किया था। मेरी जाने की इच्छा नहीं थी, परंतु फिर भी गया था।'

रुंधे हुए स्वर में सदानंद ने कहा, 'जाने की इच्छा नहीं थी ?'

शारदाचरण ने कहा, 'कह तो दिया भाई ?'

सदानंद ने मानो वह बात सुनी ही नहीं। उसने कहा, 'तब क्या हुआ ?'

'उसने मुझसे शादी करने के लिए अनुरोध किया था।'

'किसके साथ ?'

'खुद अपने साथ।'

'खुद अपने साथ ? अर्थात ललना खुद तुम्हारे साथ शादी करने के लिए इच्छुक थी ? तब तुमने क्या कहा ?'

अपनी बचपन की बातों को याद करके शारदाचरण बहुत ही लज्जित हुआ। कुछ झुंझलाहट के साथ उसने कहा, 'मैं...मैं भला कैसे कर सकता था यह काम ? पिताजी अभी जिंदा हैं।'

कुछ क्रोध के कारण, कुछ दुख के कारण और कुछ मन के आवेग के कारण सदानंद बोल उठा, 'तुम्हारे पिता के जिंदा रहने से क्या लाभ है ?'

अब शारदा गुस्से में भर उठा। पिता के विरुद्ध वह कोई बात सुन नहीं सकता

था। वह बोला, 'लाभ-हानि की बात वे अच्छी तरह जानते हैं। इस विषय पर विचार करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। यह सब मन में ले आना हमें शोभा नहीं देता। जो भी हो, मैंने कह दिया कि मैं तुम्हारे साथ शादी नहीं कर सकता।'

'तब क्या वह चली गई थी?'

'नहीं, तब भी वह नहीं गई थी, फिर बोली कि छलना के ही साथ शादी कर लो।'

'तुमने स्वीकार नहीं किया?'

सदानंद का मुख देखकर तथा उसका मनोभाव ताड़कर शारदाचरण मुस्कराकर बोला, 'अस्वीकार भी नहीं किया। मैंने उससे कहा था कि पिताजी की आज्ञा मिलने पर कर सकता हूं।'

सदानंद ने कहा, 'तो पिता की आज्ञा नहीं हुई?'

'नहीं।'

'क्यों?'

'यह बतलाने की मेरी इच्छा नहीं थी, लेकिन जब तुम पूछते ही हो तो बतलाता हूं, सुनो। पिताजी मेरी शादी में कुछ धन प्राप्त करना चाहते हैं। हाराण बाबू क्या दे सकते थे?'

यह बात सुनकर भी सदानंद ने अनसुनी कर दी। उसने कहा, 'तुम्हारे पिता कितना धन चाहते हैं?'

'यह मैं नहीं बतला सकता।'

'उनकी अर्थ-प्राप्ति की आशा यदि पूर्ण हो जाए तो भी क्या किसी प्रकार की आपत्ति हो सकती है?'

'शायद नहीं।'

'स्वयं तुम्हें तो किसी प्रकार की आपत्ति नहीं?'

'किसी प्रकार की नहीं है।'

'अच्छी बात है, तब देखा जाएगा।' इतना कहकर सदानंद फिर झाड़-झंखाड़ पार करता हुआ लौट गया।

शारदाचरण ने कहा, 'जाते कहां हो? बैठोगे नहीं थोड़ी देर?'

'नहीं।'

'सदानंद, मेरा कोई दोष नहीं है।'

'शायद नहीं है, परंतु भगवान जाने, दोष है या नहीं, मैं कुछ कह नहीं सकता।'

'तो क्या तुम नाराज हो गए?'

'नहीं।'

लौटकर घर आने पर सदानंद कुछ देर तक उस कमरे से इस कमरे में और इस कमरे से उस कमरे में घूमता रहा। बाद में वह फिर भीतर से निकल आया। रास्ता पकड़े हुए वह गंगा घाट की तरफ चला। भागीरथी की छोटी-छोटी तरंगें बंधे हुए घाट की सीढ़ी पर कल-कल, छल-छल करती हुई आतीं और धक्का मारकर चली जातीं, बाद में वे फिर लौट आतीं। सदानंद कुछ देर तक उन सबको देखता रहा। कुछ दूरी पर एक बजरा दिखाई पड़ा। गंगा के प्रशांत वक्ष पर छप-छप डांड़ चलाते हुए नाविक लोग उसे खे रहे थे। सदानंद कुछ देर तक अन्यमनस्क भाव से उसकी तरफ देखता रहा। बाद में घाट की सबसे नीचे की सीढ़ी पर बैठकर उसने पानी में पैर डुबो दिए और आकाश की तरफ देखता हुआ वह अपनी धुन में गाने लगा।

उस दिन रात के समय चांदनी में गंगा के वक्ष पर सुरेन्द्र बाबू का विशालकाय बजरा उत्तर से दक्षिण की तरफ चला जा रहा था।

बजरे की छत पर बैठे-बैठे सुरेन्द्र बाबू जयावती से बातें कर रहे थे। मालती नीचे के कमरे में बैठी हुई थी। खिड़की की तरफ देख-देखकर वह गंगाजी की चांदी के समान शुभ्र तरंगें गिन रही थी, साथ-ही-साथ वह आंसू पोंछती जा रही थी। मालती समझ गई थी कि अब हलुदपुर ग्राम आ रहा है। कुछ देर के बाद वह गंगा के तट पर विद्यमान पीपल का पेड़ देख पाई। पीपल के पास ही जो बंधा हुआ घाट था, वह चंद्रमा की किरणों से चमक रहा था। मालती ने एक बार उस पर भी निगाह दौड़ाई। उसने यही देखा कि पास हलुदपुर ग्राम निःस्तब्ध भाव से निद्रा की गोद में पड़ा हुआ है। मालती अपने मानस चक्षु से उस ग्राम का एक-एक घर, प्रत्येक नर-नारी का नींद से अभिभूत मुख देखने लगी। यह वही घाट था जिस पर वह उस वक्त जब कि ललना थी, दोनों वक्त स्नान करने, कपड़े धोने तथा हाथ-पैर धोने के लिए जाया करती थी। पीतल के घड़े में भरकर इस घाट पर से पानी ले जाए बिना न तो पीने को होता, न भोजन बन पाता। ललना अब मालती थी। अब वह ललना नहीं रह गई थी। तब भी ललना के जीवन के संबंध की एक भी बात वह अभी तक भूल नहीं पाई थी। शुभदा को वह भूल नहीं सकती थी, न माधव को भूल सकती थी और न हाराण मुखर्जी को भूल सकती थी, उन्हीं सबके विषय की बातें वह सोचती थी और रोती भी जाती थी।

मालती एक और आदमी को किसी प्रकार नहीं भूल पाती थी। वह था पागल सदानंद। हलुदपुर के पास बजरा आने से पहले ही उसने अपने कल्पनारूपी नेत्रों से कितने आदमियों को देखा। वह सोचने लगी—छलना, विंदो, कृष्णा बुआ, गिरिजाया, शैलवती, रमा इन सबमें से कहीं कोई भी तो नहीं है। सदानंद अवश्य

अपने पागलपन के लक्षणों से युक्त मुख लिए हुए स्मृति का आधा अंश दखल किए बैठा है, कानों में मानो उसके गीत का स्वर आ रहा है। मालती को ऐसा लगा मानो पागल सदानंद का मस्ती से भरा हुआ स्वर करुण होकर अस्पष्ट भाव से कहीं से आ-आकर मेरे कानों में प्रवेश कर रहा है। मालती विस्मित हुई। बहुत ही शांत होकर वह एकाग्र मन से सुनने लगी। उसे निश्चित रूप से यह मालूम पड़ रहा था कि ठीक सदानंद की तरह कोई गीत गा रहा है। बजरा और आगे बढ़ गया। अब मालती ने देखा कि घाट पर कोई आदमी नीचे पानी में पैर रखे हुए बैठा है। गीत उस वक्त समाप्त हो चुका था। मालती उस आदमी को अच्छी तरह पहचान न सकी, लेकिन उसे निश्चय हो गया कि वह सदानंद के अतिरिक्त और कोई हो नहीं सकता। पागल और सनकी आदमी को छोड़कर इतनी रात में गंगाजी को गीत सुनाने के लिए कौन दौड़ा आएगा। मालती अब फिर बैठकर रोने लगी। सदानंद के संबंध की बातों को जितना ही वह याद करती, उतनी ही अधिक याद उसे ललना के जीवन की घटनाओं की भी आती। शुभदा, माधव, बुआजी तथा भाग्यहीन हाराण मुखर्जी—ये सभी लोग सदानंद की स्मृति को बीच में रखकर घूम-घूमकर आने लगे, अंत में बहुत अधिक रात बीत जाने पर रोते-रोते मालती सो गई।

नींद टूटी, सवेरा हुआ, सूर्य उदय हुआ और क्रमशः दिन चढ़ने लगा, लेकिन मालती उठ न सकी। उसके पूरे शरीर में बड़े जोर का दर्द था। शरीर गर्म हो गया, सिरदर्द कर रहा था, साथ ही और तरह-तरह के उपसर्ग आ जुटे थे। दासी ने आकर मालती के शरीर पर हाथ रखा और बोली, 'तुम्हें बुखार हो गया है।'

मालती चुप रही। जयावती ने भी आकर मालती के शरीर पर हाथ रखा और खिड़की खुली हुई देखकर कुछ नाराज हुई। उसने कहा, 'कोई इस तरह ठीक खिड़की के सामने सोता है। सारी रात पुरवाई हवा लगती रही, इससे शरीर गर्म हो गया है।'

मालती ने धीमे स्वर में कहा, 'नींद लग गई थी, इससे खिड़की बंद नहीं की जा सकी।'

खबर पाकर सुरेन्द्र बाबू स्वयं मालती को देखने आए। उसे सचमुच बुखार हो आया था। साथ में वे होमियोपैथिक दवाई का बक्स लिए हुए थे। उसमें से निकालकर उन्होंने उसे थोड़ी-सी दवा खिलाई और जयावती से आग्रहपूर्वक कहा, 'इसे खूब होशियारी के साथ रखो।'

जयावती आकर मालती के पास बैठी। कमरे में जितनी खिड़कियां और रोशनदान थे, वे सब बंद थे। मालती अब कोई भी वस्तु देख नहीं पा रही थी। यहां तक कि बजरा चल रहा है या रुका है, यह भी वह ठीक-ठीक नहीं समझ

पा रही थी। कमरे में जयावती के अतिरिक्त और किसी को न देखकर उसने कहा, 'दीदी!'

मालती ने जयावती को दीदी कहकर पुकारना शुरू कर दिया था, 'क्या तुम बता सकती हो कि हम लोग कितनी दूर आ गए है?'

जयावती ने कहा, 'आठ-दस कोस के लगभग।'

मालती को यह जानने की इच्छा नहीं थी। उसने पूछा, 'कलकत्ता अभी कितनी दूर है?'

'अब भी लगभग दो दिन का रास्ता है।'

मालती ने चुप रहकर कुछ सोच लिया। बाद में वह बोली, 'दीदी अगर तब तक मैं अच्छी न हो सकूं?'

जयावती इस बात का मतलब समझ गई। स्त्री ऐसे समय में ईर्ष्या का भाव नहीं रखती। जरा-सा हंसकर बोली, 'तब हम लोग तुम्हें पानी में बहा देंगे?'

मालती भी जरा हंसी, किंतु इस हंसी और उस हंसी में जरा-सा अंतर था। वह बोली, 'ऐसा होता तो अच्छा ही था दीदी।'

जयावती संकुचित हो उठी। इस बात का और भी अर्थ हो सकता है, यह सोचकर उसने मुंह से बात नहीं निकाली थी। इससे वह बोली, 'छि:! ऐसी बात भी कोई करता है।'

मालती चुप हो गई। उसने उत्तर नहीं दिया। मौन भाव से वह सोच रही थी कि जयावती की बात अगर सच हो जाए तो कैसा होगा? क्या अच्छा होगा वह? नहीं, यह अच्छा न होगा। उसकी मरने की इच्छा नहीं थी। उचित रूप से प्रश्न करने पर वह यही उत्तर देती कि मरने में जो दुख है, उससे अधिक दुख मुझे हो रहा है, किंतु फिर भी मैं मर न सकूंगी। मैं मौत से नहीं डरती तो भी मुझे मरने की इच्छा नहीं है। जो लोग इस बात की इच्छा कर सकते हैं, उनका दुख शायद अधिक नहीं होता। सोचते-सोचते एक बूंद आंसू मालती की आंखों से टपक पड़ा।

जयावती ने स्नेहपूर्वक उसे पोंछ दिया। वह बोली, 'चिंता क्यों करती हो बहन! पुरवाई हवा लग जाने के कारण शरीर जरा गरम हो गया है, इसके लिए क्या इस तरह चिंतित होना चाहिए?' इतना कहकर जयावती कुछ देर तक सोचती रही। बाद में सावधान होकर वह बोली, 'इसके सिवा यदि बुखार इस तरह न शांत होगा तो उसका भी तो उपाय है। पास ही कलकत्ता है, वहां क्या डॉक्टरों और वैद्यों की कमी है।'

कमी किसी वस्तु की नहीं थी। जरूरत भी किसी वस्तु की नहीं पड़ी। बजरा जिस दिन आकर कलकत्ता पहुंचा, उस दिन मालती को बुखार नहीं था, लेकिन

शरीर उसका बहुत ही कमजोर था। अभी तक वह कुछ खा नहीं सकी थी। कलकत्ता नगर से जरा दूर और आगे बढ़कर उस पार बजरा लंगर डालकर खड़ा कर दिया गया। कमरे की खिड़की खुली थी। उसी से मुंह निकालकर मालती देखने लगी। कितने जहाज थे, कितने जहाजों के केवल मस्तूल दिखाई पड़ रहे थे, कितनी बड़ी-बड़ी नौकाएं थीं, कितनी ही राजप्रासाद के समान ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं की चोटियां पंक्तिबद्ध-सी दिखाई पड़ रही थीं! मालती को भय हो रहा था। वह सोच रही थी, क्या यही कलकत्ता है ? यदि हां, तो इतने झमेले, इतने कोलाहल में मेरी बातों को भला कौन सुनेगा! ऐसे व्यस्त नगर में मुझे देखने का अवकाश किसे होगा! परंतु कुछ भी हो, अब तो मुझे इस नगर में प्रवेश करना ही होगा। जिस उद्देश्य से मैंने यह अत्यंत ही साहसपूर्ण काम कर डाला है, जिनका मुख देखकर मैं नरक में डुबकियां लगाने को तैयार हुई हूं, जिनको सुखी करने की इच्छा से मैंने अपने इस लोक और परलोक के संबंध में तनिक भी सोच-विचार नहीं किया, उन सबको मैं इतनी जल्दी भूल न सकूंगी। आज न सही तो कल इस आश्रय का परित्याग करना ही होगा। जो काम करना है, फिर उससे डरना क्या?

मालती ने जाने का पक्का निश्चय कर लिया, किंतु सुरेन्द्र बाबू ने यह बात फैला दी कि बजरा यहां पर तीन-चार दिनों तक और बंधा रहेगा। मालती का शरीर जब ठीक हो जाएगा, तब जहां चाहेगी, वहां चली जाएगी। जिस दिन वह जाएगी, उसी दिन बजरा भी खुलेगा। यह बात सुनकर मालती ने सुरेन्द्र बाबू को मन-ही-मन बहुत धन्यवाद दिया। अंतःकरण से प्रार्थना भी वह यही कर रही थी। बात यह है कि काम चाहे कितना ही आवश्यक और महत्वपूर्ण क्यों न हो, आश्रय का परित्याग करके निराश्रित होने के लिए मन को सहमत करना कोई आसान काम नहीं होता। इससे पहले ही वह इस संबंध में अपने आपसे कितना संघर्ष कर चुकी थी। अब मानो उसे इतना मौका मिल गया कि वह जरा-सा दम लेने के बाद मन को समझा-बुझाकर वैसा करने के लिए तैयार कर ले।

दूसरे दिन दोपहर को जयावती ने घूमकर कलकत्ता नगर देखने का इरादा किया। गाड़ी और डोंगी ठीक करके नौकर ने उसे सूचना दी। जयावती ने साथ चलने के लिए बाबू साहब से भी बड़ा आग्रह किया, परंतु वे किसी प्रकार राजी नहीं हुए। जयावती के साथ जाने की मालती ने इच्छा प्रकट की थी, किंतु उन्होंने उसे भी रुकवा दिया और कहला भेजा कि अभी तुम्हारा शरीर अच्छा नहीं है, कहीं फिर न बुखार हो जाए। इससे लाचार होकर एक नौकरानी और एक नौकर लेकर जयावती को अकेले ही भ्रमण के लिए जाना पड़ा।

मालती अंदर कमरे में लेटी हुई थी। एकाएक द्वार खोलकर सुरेन्द्र बाबू ने

भीतर प्रवेश किया। तब संकुचित होकर मालती उठकर बैठ गई। जरा दूरी पर सुरेन्द्र बाबू भी बैठ गए। इसी प्रकार काफी वक्त बीत चला। वे आए थे यह सोचकर कि मालती से कुछ बातें करूंगा, परंतु उसके पास आने पर उन्हें मुंह खोलने का साहस ही नहीं हो रहा था। अंत में कुछ सोच-विचार करने के बाद वे बोले, 'क्या तुम यहां अवश्य ही उतर जाओगी?'

सिर हिलाकर मालती बोली, 'हां।'

'क्या तुमने इस विषय में अच्छी तरह विचार कर लिया है?'

मालती उसी तरह बोली, 'कर लिया है।'

'कहां जाओगी?'

'यह तो नहीं जानती हूं।'

सुरेन्द्र बाबू हंस पड़े। उन्होंने कहा, 'तब तुमने क्या सोच-विचार किया है? आज नहीं, कल एक बार घूमकर कलकत्ता देख आना। तब निश्चय का परित्याग करके यदि तुम्हें अनिश्चय ही अच्छा लगे तो चली जाना, मैं रोकूंगा नहीं।'

मालती कुछ बोली नहीं। सुरेन्द्र बाबू भी कुछ देर तक मौन रहे। बाद में पहले की अपेक्षा कुछ खिन्न भाव से कहने लगे, 'जितना तुमने नहीं सोचा, उतना मैंने सोच लिया है। तुम ब्राह्मण की बेटी हो। नीच वृत्ति कर न सकोगी। एक सभ्य और प्रतिष्ठित व्यक्ति की बेटी होने के कारण किसी सभ्य परिवार में यदि न प्रवेश कर पाओगी तो रह न सकोगी। ऐसी अवस्था में किसी सहायक के बिना इतने बड़े नगर में तुम अपने लिए कैसे उपयुक्त स्थान ढूंढ़ लोगी, यह बात मेरी समझ में आती नहीं।' कुछ देर चुप रहने के बाद सुरेन्द्र बाबू ने फिर कहा, 'जरा यह भी सोचो, क्या तुम इस अवस्था में अपनी मर्यादा की रक्षा करते हुए अपना जीवन व्यतीत कर सकोगी? मुझे संदेह है कि तुम कहीं संकट में न पड़ जाओ।'

मुंह से कोई बात न निकालकर मालती रोती रही। इन सभी विषयों पर उसने विचार किया था, किंतु वह करती क्या, बिलकुल निरुपाय थी।

सुरेन्द्र बाबू ने पहले भी मालती को रोते देखा था, किंतु उसका इस बार का रोना और ही ढंग का था। उन्होंने पूछा, 'तो क्या जाने का ही पक्का रहा?'

आंखें पोंछकर मालती ने सिर हिलाया। वह बोली, 'हां।'

नारायणपुर के जमींदार श्रीयुत सुरेन्द्र बाबू के संबंध में बहुतों की धारणा यही थी कि विवेक की मात्रा का इनमें सर्वथा अभाव है, परंतु वास्तव में बात ऐसी नहीं थी। जो लोग इन्हें ऐसा समझा करते थे, उन सबकी अपेक्षा संभवतः वे सौ गुना अधिक समझदार थे, परंतु कभी-कभी वे दुर्बल स्वभाव के आदमी का-सा काम कर बैठते थे, इससे कोई उन्हें आसानी से नहीं समझ पाता था। मालती के मन की बात उन्होंने परख ली। इससे वे मन-ही-मन जरा-सा हंसे। बाद में

मालती जब कुछ शांत हुई, तब बोले, 'मालती, तुम्हें रुपये की बहुत जरूरत है न?'

मालती की आंखों में फिर आंसू भर आए, 'इतनी जरूरत शायद संसार में किसी को नहीं है।'

'बहुत जरूरत है।'

मालती ने रुलाई को रोककर लड़खड़ाती हुई आवाज से कहा, 'बड़ी आवश्यकता है।'

सुरेन्द्र बाबू हंसे। अब उन्हें जानने को कुछ बाकी नहीं था। दूसरे का दुख देखकर उन्हें हंसी आई। हंसी आने का कारण भी था। कुसंगति के दोष में यह बात वह भूल ही गए थे कि इन लोगों के रोने का भी युक्तिसंगत कारण हो सकता है। हंसी का कुछ भाव मुंह से निकल गया और कुछ को उन्होंने दबा लिया और कहा, 'तब तुम रोती क्यों हो? भगवान ने तुम्हें रूप दिया है, अवस्था भी तुम्हारी युवा है, तिस पर तुम जा रही हो कलकत्ता! अब तुम्हें रुपये-पैसे के लिए चिंता न करनी होगी। तुम्हें तो ऐसा मालूम पड़ेगा, मानो कलकत्ता में रुपया-पैसा चारों तरफ बिखरा पड़ा है।'

मालती को ऐसा मालूम हुआ, मानो वज्र की चोट के कारण उसका सिर फटकर जमीन पर गिर पड़ा है। इस समय अगर वह कूदकर पानी में गिर पड़े तो भी विशेष हानि न होगी। मालती इस तरह का कोई एक काम करने जा रही थी, इतने में एकाएक कुछ उसे बाधा का अनुभव हुआ। उसे यह अनुभव हुआ मानो वह बेहोश होकर किसी आदमी की गोद में गिर पड़ी हो, परंतु इस गोद में मानो आग जल रही है। बड़ी कड़ी है वह, बहुत गरम है। अणुमात्र भी मांस नहीं है, उसमें लेशमात्र भी कोमलता नहीं। बिलकुल पत्थर है वह। कुल अस्थि-ही-अस्थि है। बेहोशी में होने पर भी मालती कांप उठी। जिस वक्त उसे चेतना आई, उस वक्त उसे यह नहीं मालूम हुआ कि वह किसकी गोद में लेटी हुई है। आंख खोलकर उसने देखा कि वह अपनी श्य्या पर लेटी हुई है और पास ही बैठे हुए सुरेन्द्र बाबू उसके मुंह की ओर देख रहे हैं। शर्म के कारण उसका चेहरा लाल हो उठा। दोनों हाथों से अपना मुंह ढककर करवट बदल ली।

कुछ देर बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'मालती, कल तड़के मैं बजरा खोल दूंगा, परंतु मैं तुम्हें छोड़ूंगा नहीं। तुम्हें मेरे साथ जाना होगा।' निःश्वास बंद करके मालती सुनने लगी। सुरेन्द्र बाबू कहते ही गए, 'जिस अभिप्राय से तुम कलकत्ता जाना चाहती हो, वह अभिप्राय हो जाएगा। यह वृत्ति संभवतः पहले कभी तुमने की नहीं है, इस वक्त भी तुम्हारे किए न होगी। तुम्हें जितने धन की आवश्यकता हो, जितने आनंद की कामना हो, वह सब तुम मुझसे ही प्राप्त कर सकती हो।'

मालती की रुकी हुई सांसों के साथ आंखों से आंसू निकल पड़े। सुरेन्द्र बाबू यह ताड़ गए। उन्होंने बड़े प्रेम से उसे अपनी गोद में खींच लिया और कहा, 'जरा सोचो तो, तुम्हें यहां छोड़कर अगर मैं चला जाऊंगा तो क्या तुम जीवित रह सकोगी या मैं ही शांत मन से लौट सकूंगा।' सुरेन्द्र बाबू ने उसे और हृदय के पास खींच लिया। वे स्नेहपूर्वक उसके आंसू पोंछने लगे और छि:! छि:! लज्जा के कारण संकुचित हो गए। उसके होंठों को चूमकर उन्होंने कहा, 'चलोगी न?'

मालती का सारा शरीर रोमांचित हो उठा, उसका अंग-प्रत्यंग कांप उठा। अब वह पहले की-सी नहीं रही। अब वह ललना नहीं रही, वह मालती भी नहीं है। अब तो वह जो है, वही है। वह सुरेन्द्र बाबू की चिरसंगिनी है, आजन्म की प्रणयिनी है। वह सीता है, वह सावित्री है, वह दमयंती है। सीता-सावित्री का नाम क्यों लें? वह तो राधा है, वह चंद्रावली है। इसमें ही उसे क्या हानि है? सुख-शांति और स्वर्ग की गोद में आश्रय मिल जाने पर मान-अपमान का क्या प्रश्न रह जाता है? मालती नि:स्पंद, अचेतन, सोने की मूर्ति के समान सुरेन्द्रनाथ की गोद में पड़ी रही। वह गोद अब ऐसी नहीं रही कि उसमें अस्थि-ही-अस्थि हों। अब वह न पत्थर के समान कठोर थी और न अंगार के समान उत्तप्त थी। अब वह शांत, स्नेहमयी, कोमल, मधुमय थी। मालती ने यह अनुभव किया कि इतने दिनों तक वह शापग्रस्त थी, अब स्वर्ग में आ गई है। उसका जो धन छीन लिया गया था, इतने दिनों के बाद उसे फिर मिला है। अब मालती के बंद होंठ फिर खुल उठे थे। सुरेन्द्र बाबू उन होंठों का बार-बार चुम्बन कर रहे थे और पाप के प्रथम सोपान पर अवतरण करके मालती अपने-आपको भूल गई। वह स्वर्ग के सुख का उपभोग करने लगी। उस समय सूर्य अस्त हो रहा था। खिड़की की संधि से यह पाप-कर्म वे देखते रहे। अपराह्न के सूर्य की रक्तवर्ण किरणों के स्पर्श से मालती का मुख-मंडल सुरेन्द्र बाबू की दृष्टि में हजार गुणा अधिक सुंदर प्रतीत हो रहा था। उन्होंने बड़े आवेग से, बड़ी तृष्णा से, उस मुख का बार-बार चुम्बन करके कहा, 'क्यों मालती, चलोगी न, तुम मेरे साथ?'

'चलूंगी।'

सुरेन्द्रनाथ उन्मत्त हो उठे। उन्होंने कहा, 'तो चलो इसी समय चलें।'

'किंतु दीदी!'

'दीदी कौन?'

'वे ही, तुम्हारी स्त्री।'

सुरेन्द्रनाथ मानो एकाएक सोते से जाग पड़े। कांपते हुए उन्होंने कहा, 'मेरी स्त्री! उसकी मृत्यु हुए तो बहुत दिन हो गए।'

'जयावती!'

सुरेन्द्रनाथ ने एक रूखी हंसी हंसकर कहा, 'जयावती मेरी स्त्री नहीं है। उसके साथ मैंने कभी विवाह नहीं किया।'

'तो क्या?'

'कुछ नहीं—कुछ नहीं। तुम मेरी सबकुछ हो, वह कोई नहीं है।'

अब मालती ने सुरेन्द्रनाथ के गले में अपनी बांहें डाल दीं। उसने उसकी गोद में मुंह छिपा लिया। छि: ! छि: ! मुक्त कंठ से वह बोली, 'मैं तुम्हारी चिरकाल की दासी हूं, कभी मेरा परित्याग न करना।'

'नहीं, कभी नहीं करूंगा।'

'तब मुझे ले चलो।'

'चलो।'

'आज ही।'

'इसी समय।'

इतने में धरो, पकड़ो, दौड़ो, डूबा-डूबा! की आवाज हजारों कण्ठ से निकलकर तुमुल कोलाहल के रूप में परिणत हो गई। सुरेन्द्रनाथ दौड़ते हुए कमरे से निकल आए। उसके पीछे-पीछे मालती भी आई। सुरेन्द्रनाथ ने देखा कि इस पार और उस पार चारों ओर मल्लाह और कुली-मजदूर दौड़-दौड़कर इकट्ठे हो रहे हैं और व्याकुल भाव से चिल्ला रहे हैं। साथ ही कुछ दूरी पर बीच गंगा में एक डोंगी स्टीमर से टकरा जाने के कारण लगातार पानी में डूबती जा रही है।

सुरेन्द्रनाथ ने पल-भर में समझ लिया कि क्या घटना हुई है। वे चिल्ला उठे, 'उसी में मेरी जया है।' साथ-ही-साथ वे पानी में कूदने ही को थे कि मालती ने उन्हें पकड़ लिया। पागलों की तरह छटपटाते हुए सुरेन्द्रनाथ फिर चिल्ला उठे, 'पकड़ो मत मुझे, पकड़ो मत। मेरी जया डूबी जा रही है।'

इतने में वह छोटी-सी नाव उस बड़े स्टीमर के नीचे धीरे-धीरे बैठ गई। सुरेन्द्रनाथ मांझी-मल्लाह तथा नौकरों आदि के हाथों पर बेहोश होकर गिर पड़े।

'जया!' चेतना आने पर पहले आंखें खोलकर सुरेन्द्रनाथ ने दुखी भाव से पुकारा, 'जया!'

पास ही बैठी हुई मालती उनकी सुश्रूषा कर रही थी, साथ ही आंखें भी पोंछती जाती थी। सुरेन्द्रनाथ ने जिस भाव से यह बात अपने मुंह से निकाली थी, उसके कारण वह और भी आंखें पोंछने लगी, परंतु उन्होंने यह देखा नहीं। केवल उसकी तरफ उन्होंने एक बार निगाह दौड़ाई थीं, फिर आंखें बंद कर ली थीं।

बड़ी देर तक इस तरह रहने के बाद एक लंबी सांस लेकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'क्या जया की कोई खबर नहीं मिली?'

पास ही एक पुराना नौकर बैठा हुआ था। वह दुखी भाव से बोला, 'नहीं।'

'नहीं मिली तो शायद अब वह बची नहीं है।'

कुछ सोच-विचार करने के बाद नौकर ने कहा, 'जान तो ऐसा ही पड़ता है।'

सुरेन्द्रनाथ ने पूछा, 'कितनी रात बीती होगी?'

'लगभग दस बजे होंगे।'

'दस बजे होंगे! तो भी कोई खबर नहीं मिली?'

नौकर ने उत्तर नहीं दिया।

बहुत अधिक हताश होकर सुरेन्द्र बाबू ने अपने सिर पर कराघात किया। वे बोले, 'तुम सभी लोग जाओ, सारे नगर में तथा गंगा के किनारे-किनारे सब जगह उसकी खोज करो।'

नौकर ने सोचा, कोई बड़ी बुरी आज्ञा नहीं है। मुंह से उसने कह दिया, 'जो आज्ञा।' बाद में वहां से वह उठ आया और अपनी निर्दिष्ट चारपाई पर लेट गया।

कमरे में मालती के अलावा और कोई नहीं था, परंतु सुरेन्द्रनाथ ने उससे कोई बात नहीं की। वे चुपचाप अविराम आंसू बहाते रहे। इसी तरह समय बीतने लगा। कमरे में जो घड़ी लगी हुई थी, वह स्वेच्छानुसार ग्यारह के बाद बारह, उसके बाद एक-दो-तीन-चार और बाद में जो पूंजी थी, सब बजाती गई, किंतु इसकी ओर किसी ने एक बार भी निगाह डाली, ऐसा नहीं मालूम पड़ रहा था। सुरेन्द्रनाथ कभी इस ओर, तो कभी उस ओर लेटते। उन्हें किसी तरह भी चैन न मिलता। पास ही बैठकर मालती उनकी यंत्रणा को देखने लगी। साथ-ही-साथ वह आंखें भी पोंछती जाती थी। उसका भी चित्त बहुत दुखी हुआ। उसे लज्जा आई। साथ-ही-साथ अपने-आप पर बहुत घृणा भी हुई। वह बहुत ही गंभीर भाव से वर्तमान, अतीत और भविष्य की बातों पर सोच-विचार कर रही थी।

एक तो कलकत्ता की गंगा सारी रात में एक पल के लिए भी विश्राम नहीं ग्रहण करती, दूसरे अब चार बज चुके थे। चारों तरफ से थोड़ा-बहुत शोर होने लगा था।

सुरेन्द्रनाथ अचानक उठकर बैठ गए। मालती की तरफ देखने लगे। बाद में उन्होंने कहा, 'बेकार सारी रात जागने से कोई फायदा न होगा, अब तुम सो जाओ।'

मालती उठकर जा ही रही थी कि उसे फिर पुकारकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'बैठो, आओ यहीं। तुमसे मुझे कुछ कहना है।'

मालती दो कदम आगे ही गई थी। लौटकर वह फिर पहले के ही स्थान पर आकर बैठ गई।

सुरेन्द्र बाबू ने एक बार आंख मली और सोच लिया कि मुझे क्या कहना है। तब गंभीर भाव से बोले, 'मालती किसके पाप से ऐसा हुआ?'

मालती के सिर पर मानो आकाश टूट पड़ा। यह बात वह स्वयं अपने-आपसे भी कई बार पूछ चुकी थी। उत्तर भी उसे इस प्रश्न का एक तरह से मिल चुका था, परंतु उस उत्तर को प्रकट कर देने के लिए जब उसने मुंह खोलने का प्रयत्न किया, तब असफल होना पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि मुंह नीचा करके उसे रह जाना पड़ा।

सुरेन्द्र बाबू ने भी कुछ कहने का विचार किया था, परंतु वह कह नहीं सके। थोड़ी देर बाद बोले, 'अच्छा, इस समय तुम जाओ, वे सब बातें बाद में होंगी।'

सुरेन्द्रनाथ के पास से आकर मालती अपने कमरे में लेट गई, परंतु क्या उसे नींद आ सकी? नहीं, शय्या पर पड़ी रहकर छटपटाते हुए वह बाकी रात बिताने लगी। कई बार वह बैठी और कई बार लेटी। कितनी ही देवियों तथा देवताओं की याद करके उसने उनकी प्रार्थना की। बहुत-सी बातें उसके मन में आईं। बाद में प्रातःकाल निद्रा की झोंक में वह तरह-तरह के स्वप्न देखने लगी। कभी तो उसने यह देखा कि जयावती आंखें लाल किए हुए खड़ी है, कभी देखा सदानंद अपनी धुन में आनंद के साथ गा रहा है, कभी देखा माता शुभदा दुखी होकर रो रही है। सबके अंत में उसने यह देखा कि माधव आकर सिरहाने खड़ा है। किसी अज्ञात देश में जाने के लिए वह बार-बार उत्तेजित कर रहा है। मालती की वहां जाने की इच्छा नहीं है, लेकिन वह किसी प्रकार छोड़ता नहीं। एकाएक मालती की निद्रा टूटी। निगाह दौड़ाई तो देखा कि कहीं कोई नहीं है। केवल प्रातःकाल के सूर्य की किरणें खुली हुई खिड़की की राह से आकर उसके मुख पर पड़ रही हैं। चारपाई से उठकर मालती बाहर आई।

उस दिन सुबह से लेकर शाम तक मालती सुरेन्द्रनाथ को देख नहीं पाई। सवेरा होने से कुछ पहले ही वे बजरा छोड़कर चले गए थे। दूसरे दिन भी वे नहीं आए। उसके बाद वाले दिन शाम होने से पहले ही आकर उन्होंने अपने कमरे में प्रवेश किया और द्वार बंद कर लिया। इस प्रकार वह दिन भी वैसे ही बीत गया। दूसरे दिन सुरेन्द्रनाथ ने मालती को बुलवाया। कमरे में जाकर मुंह नीचा किए हुए मालती एक ओर खड़ी रही।

एक कागज लेकर सुरेन्द्र बाबू कुछ लिख रहे थे। शायद वे किसी के लिए पत्र लिख रहे थे। मालती ने आंख बचाकर डरते-डरते देखा कि उनका मुख बहुत ही मुरझाया हुआ है, आंखें लाल हो गई हैं, सिर के बाल बहुत ही रूखे होकर खड़े हैं, कपड़ों में इस वक्त भी जगह-जगह पर कीचड़ लगा हुआ है। यह देखकर मालती अपने-आप ही कांप उठी। उसे जान पड़ा, मानो मैंने बहुत बड़ा अपराध कर डाला है, इसलिए उस पर विचार करने के लिए न्यायालय में लाई गई हूं।

सुरेन्द्र बाबू आधा ही पत्र लिख पाए थे। उसी अवस्था में उसे एक बगल रखकर उन्होंने मुंह ऊपर उठाया और कहा, 'क्या अब तुम्हारा स्वास्थ्य काफी अच्छा हो गया है?'

नीचे की ही तरफ देखते-देखते सिर हिलाकर मालती ने सूचित किया, 'हो गया है।'

'आज मैं बजरा खोल दूंगा। उस पार कलकत्ता है। जहां तुम्हारी इच्छा हो, वहां तुम जा सकती हो।'

यह बात सुनते ही मालती की आंखों में आंसू आ गए। वह कुछ बोली नहीं।

बगल में रखा हुआ कागज हाथ में लेकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'यहां मेरे मित्र रहते हैं। यह पत्र लेकर तुम जाओ और पता लगाकर उनसे मिलो। वे तुम्हारे लिए कोई-न-कोई प्रबंध कर देंगे।'

टप से मालती के नेत्र से एक बूंद जल नीचे बिछी दरी पर गिर पड़ा।

शायद सुरेन्द्र बाबू ने उसे देख लिया। उन्होंने कहा, 'तुम्हारे पास रुपया-पैसा तो कुछ होगा नहीं?'

सिर हिलकार मालती ने कहा, 'नहीं।'

'यह बात मैं पहले से ही जानता था। यह लो।' कहकर तकिए के नीचे से उन्होंने एक मीनबैग निकाला और मालती के पैरों के पास उसे फेंककर कहा, 'इसमें जो कुछ है, उसके द्वारा और कोई इंतजाम न हो सकने पर भी कम-से-कम एक वर्ष तक निर्वाह कर सकती हो। तब तक भगवान की कृपा से कोई-न-कोई प्रबंध हो ही जाएगा।'

और एक बूंद जल आकर दरी पर पड़ा।

'उस दिन मैं उन्मत्त था, इसलिए पूछ बैठा था कि किसके अपराध से ऐसा हुआ है, लेकिन अब मुझे ज्ञात हुआ है। मैं समझ रहा हूं कि मेरे ही अपराध से यह सब हुआ है। तुम पूर्ण रूप से निरपराध हो। अपनी जया को मैंने ही मार डाला है।'

सिर पर पसीने की बूंदें इकट्ठी हो गई थीं, उन्हें सुरेन्द्रनाथ ने हाथ से पोंछ डाला। बाद में वे बोले, 'बहुत हो गया। अब मैं पाप न करूंगा। कुछ दिनों तक अच्छे मार्ग पर रहकर देखता हूं कि मुझे सुख मिलता है या नहीं।'

मालती खड़ी रही। सुरेन्द्रनाथ पत्र समास करने लगे। जब वह समास हो गया तो उसे मोड़कर उन्होंने लिफाफे में भर दिया और पता लिखकर मालती के पैर के पास फेंक दिया। उन्होंने कहा, 'इसे ले लो, श्याम बाजार में जाकर पता लगा लेना। शायद इससे तुम्हारा उपकार हो जाएगा।'

कांपते हुए हाथ से मालती ने पत्र उठा लिया।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'रुपये ले लो।'

मालती ने रुपये भी उठा लिए और दरवाजे की ओर एक कदम बढ़ी।

सुरेन्द्र बाबू का दिल न जाने कैसा हो उठा। उन्होंने कहा, 'धर्म पथ पर रहना।'

मालती ने दरवाजे की तरफ एक कदम और बढ़ाया। अब सुरेन्द्र बाबू का गला कांप उठा, 'मालती, उस दिन की बात भूल जाना।'

मालती ने दरवाजे को पकड़कर खींचा। आधा दरवाजा खुल गया। अब सुरेन्द्रनाथ का गला कांप उठा, 'असमय में, इस प्रकार का संकट आने पर मुझे याद करना।'

मालती बाहर आ गई।

साथ-ही-साथ सुरेन्द्र बाबू की आंखें भर आईं। उन्होंने पुकारा, 'मालती!'

मालती वहीं खड़ी हो गई।

सुरेन्द्र बाबू ने फिर पुकारा, 'मालती!'

अब भीतर जाकर मालती द्वार के सहारे खड़ी हो गई।

आंखें पोंछकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'जया का शोक मैं अब भी भूला नहीं हूं।'

कपाट छोड़कर मालती वहीं पर बैठ गई। उसके पैर कांप रहे थे।

'मालती, क्या लेकर रहूंगा मैं संसार में?' बच्चों की तरह सुरेन्द्रनाथ रो पड़े, 'तुम जब मेरा परित्याग कर दोगी, तब मैं जीवित न रह सकूंगा।' इतना कहकर वे नीचे गलीचे पर लेट गए।

मालती आकर सुरेन्द्र बाबू के पास बैठ गई। उनका सिर उठाकर उसने अपनी गोद में ले लिया और उनकी आंखें पोंछते-पोंछते वह बोली, 'मैं नहीं जाऊंगी।'

वे दोनों ही बड़ी देर तक रोते रहे। मालती ने फिर सुरेन्द्र बाबू के आंसू पोंछ दिए।

सुरेन्द्र बाबू की आंखें बंद थीं। वे उसी प्रकार भग्न स्वर में बोले, 'उस दिन तुमने क्या कहा था, याद है?'

'क्या कहा था?'

'चिरदासी।'

'हां, मैं वही हूं।'

सुरेन्द्र ने उच्च स्वर से पुकारा, 'हरिचरण!'

छत के ऊपर से हरिचरण मल्लाह बोला, 'हुजूर!'

'बजरा इसी समय खोल दो।'

'इसी समय?'

'हां, इसी समय।'

बजरा जब तक आंखों से दूर नहीं हो गया, तब तक गीत बंद करके सदानंद उसकी ओर देखता रहा। बाद में घर जाकर वह लेटा रहा। आज उसका मन ठीक नहीं था। नींद भी उसे अच्छी तरह नहीं आ सकी। प्रातःकाल शुभदा के पास आकर उसने कहा, 'अगर मैं यहीं भोजन कर लिया करूंगा तो क्या ठीक न होगा?'

सूखे हुए मुख से शुभदा ने कहा, 'ठीक क्यों न होगा?'

'अब मेरा ऐसा ही विचार है। मेरा कोई नहीं, दोनों समय यहीं आकर थोड़ा-सा खा लिया करूंगा।'

कुछ देर सोच-विचार करने के बाद शुभदा बोली, 'अच्छी बात तो है।'

'बुआजी की ससुराल में उनकी थोड़ी-सी जगह-जमीन वगैरह है। वह सब मैंने ही पाई है। दो ही एक दिन में वहां जाकर मुझे वह सब देख लेना होगा। मुझे समझना है कि जगह-जमीन सबकी व्यवस्था कैसे की जाए।'

शुभदा ने कहा, 'वह तो आवश्यक ही है। उस सबकी देखभाल न करोगे तो कैसे काम चलेगा।'

'मैं यह भी सोच रहा हूं कि अपने धान-भरे कोठले यहीं रख दूं। नहीं तो उसमें से बहुत-सा धान चुराया जा सकता है।'

रहस्य की बात शुभदा की समझ में आ गई। वह बोली, 'इतने दिनों तक तो किसी ने चुराया नहीं तुम्हारा धान?'

'यह तो ठीक है, लेकिन अब तो उसके चुराये जाने की आशंका है।'

शुभदा चुप रह गई।

इसके बाद दो-तीन दिनों के अंदर ही सदानंद धान के कोठले, चने के कूंडे, आलू के झाबे, नारियल के ढेर और गुड़ का घड़ा वगैरह सभी कुछ एक-एक करके सब उठा लाया और मुखर्जी के घर में उन सबको स्थान मिल गया।

यह सब देखकर शुभदा बोली, 'सदानंद, लोग क्या कहेंगे?'

सदानंद ने हंसकर जवाब दिया, 'चीजें तो मेरी हैं, लोगों की नहीं हैं। मैं यहीं खाता हूं, यहीं रहता हूं, यहीं मेरा सामान भी रहेगा।'

सचमुच ही पास-पड़ोस के दस आदमी दस तरह की बातें कहने लगे। कोई कहता, 'हाराण की बहू ने सदानंद पागल पर जादू कर दिया है।' कोई कहता, 'सदानंद बिलकुल पागल हो गया है।' और कोई यह भी कह डालते थे कि छलना के साथ सदानंद की शादी हो रही है। ये सब बातें सदानंद के कानों में पड़ती तब

वह मन-ही-मन हंसा करता। जब कभी कोई उसके सामने ही उन्हें छेड़ देता, तब वह उसे एक गाना सुना देता। किसी से हंसी करके वह कह बैठता कि जब मैं मरने लगूंगा, तब दो बीघा जमीन तुम्हारे नाम लिख जाऊंगा। उसके लिए तुम्हें चिंतित होने की कौन-सी बात है? इस प्रकार क्रमशः लोगों के मुंह बंद होने लगे, लेकिन जो लोग द्वेष के वश में थे, वे मन-ही-मन जलने लगे। भवतारण गंगोपाध्याय महोदय के कानों तक जब यह बात पहुंची, तब उन्होंने सदानंद को बुलाकर उसे विशेष रूप से उपदेश दिया।'

गंगोपाध्याय महोदय के उपयोगी उपदेश सुनने के बाद सदानंद ने दुखित भाव से कहा, 'जो होना था, वह तो हो गया। अब मैं बुआजी की ससुराल जा रहा हूं। वहां से लौटकर आने पर धान के कोठले और सामान आपके यहां रख जाऊंगा।'

बहुत ही नाराज होकर गंगोपाध्याय महोदय ने कहा, 'देखो सदानंद, तुम्हारे पिता भी मेरी इज्जत करते थे।'

'मैं भी तो आपकी किसी प्रकार की उपेक्षा नहीं करता।'

'तो इस तरह की बात कही क्यों?'

कुछ सहमकर सदानंद ने कहा, 'मेरी बुद्धि सदा ठिकाने पर नहीं रहा करती।'

गंगोपाध्याय महोदय और भी क्रोधित हो उठे और बोले, 'तुम विनाश की तरफ बढ़े जा रहे हो।'

सदानंद मुस्करा दिया। वह बोला, 'आप लोग यदि रक्षा के लिए थोड़ा-सा प्रयत्न करते तो मैं तबाह ही हो जाता।'

'तुम मेरे सामने से दूर हो जाओ।'

'जो आज्ञा।' कहकर सदानंद बाहर चला आया और वह खूब जी भरकर हंस पड़ा। फिर वह ऊंचे गले से रामप्रसादी गीत गाने लगा।

पास से ही होकर सिर पर परवल का बोझा लादे हुए कंगालीचरण बाजार जा रहा था। सदानंद के मुखमंडल पर हंसी देखकर तथा उसका मस्ती से भरा हुआ गाना सुनकर उसने कहा, 'कहो भाई ठाकुर, कौन-सी ऐसी आनंददायक घटना हो गई। जिसके कारण इतने प्रसन्न हो रहे हो?'

सदानंद हंसते-हंसते बोला, 'गांगुली महोदय के यहां आज निमंत्रण था, खूब पेट भरकर खाना खाया है।'

'ओह, यह बात है।'

अब सदानंद ने कंगालीचरण से यह मालूम कर लिया कि आजकल परवल का भाव क्या है। बाद में एक बार हंसकर अभी-अभी जो गाना उसने बंद किया था, उसका स्वर गले में फिर ठिकाने से जमा लिया और झूमते-झूमते अपना रास्ता लिया। कंगालीचरण भी निश्चित स्थान की ओर बढ़ता गया।

यहां एक बात कह देनी है कि किसी कवि ने कहा है कि मन में ही स्वर्ग है और मन में ही नरक है। इनका कोई वैसा सांसारिक अस्तित्व नहीं है। यह बात पूर्ण रूप से चाहे भले ही सत्य न हो, किंतु इसके आंशिक रूप से सत्य होने में तो संदेह का लेश भी नहीं है। कारण हाराणचंद्र के पार्थिव सुख की दो अंतिम सीमा थी, शुभदा उसका उपभोग उस रूप में नहीं कर पाती थी। हाराणचंद्र दोनों समय खूब पेट भरकर भोजन किया करते थे, मांगते ही दो-चार आने पैसे स्त्री से उधार मिल जाया करते थे, उन पैसों को लौटाने के लिए उन्हें तनिक भी चिंता तक नहीं करनी पड़ती थी। अब वे बाजार के भीतर सिर ऊंचा करके चल सकते थे। वे सोचा करते थे कि किसी साले का एक पैसा भी तो मेरे जिम्मे उधार बाकी नहीं है। अब दबने की कौन-सी बात है? अड्डे वालों ने भी उनका पहले का पद सम्मानपूर्वक लौटा दिया और अब चाहिए ही क्या था? उनको थोड़ी-सी आवश्यकता अभी निवृत्ति होने की अवश्य थी। हाराणचंद्र सोचा करते थे कि सदानंद में जरा-सा और पागलपन आया नहीं कि उसकी भी निवृत्ति का साधन तैयार कर लूंगा। उस दशा में तो अफीम की दुकान मैं स्वयं खरीद लूंगा और वह जो नीच जाति की छोकरी कात्यायनी है, उस साली का भी अभिमान चूर-चूर कर दूंगा। उसका साल-भर का खाने-पीने का खर्च पेशगी उसके सामने फेंककर कहूंगा, तू साली नीच जाति की होकर मेरी अवहेलना करने चली है! पुरुष के भाग्य और स्त्री के चरित्र को जब देवता तक नहीं जानते तब तेरी क्या हस्ती है? और भगवान नंदी उसके घर के सामने तक अड्डा कायम करके न छोड़ा, तब मेरा नाम हाराणचंद्र नहीं। आजकल मन-ही-मन गीत गुनगुनाते हुए वे ब्राह्मणपाड़ा में टहलते हैं।

किंतु शुभदा! उसे क्या एक बात की चिंता थी। भगवान जानते हैं, स्वामी का सुख उसने एक दिन के लिए भी नहीं प्राप्त किया था। कम-से-कम शुभदा को तो याद नहीं है। स्वामी के मुख में भोजन का ग्रास डाल देने में ही उसे कितनी तृप्ति होती थी, कितना सुख मिलता था, इस बात की अनुभूति वह स्वयं ही नहीं कर पाती थी। आनंद के अतिरेक के कारण नेत्रों के कोर में पानी आ जाया करता था, लेकिन उसे देखने वाला कौन था, देखने के लिए एक आदमी था, समझने के लिए एक आदमी था, लेकिन वह पहले ही समाप्त हो चुका था। केवल वही अगर होता तो शुभदा इस सुख में भी सांसारिक कहानी समाप्त कर देने में समर्थ हो पाती, लेकिन छलना तो दिन-दिन बड़ी होती जा रही थी। उसका उद्धार किस तरह हो? जो मर गया, उसे सारे झगड़े-झंझट से छुटकारा मिल गया, परंतु माधव के मन में क्या है? शुभदा उस रहस्य को जानने में किसी प्रकार भी समर्थ नहीं

हो पाई। आजकल चिकित्सा के लिए बहुत सुविधा हो गई थी। यथासाध्य चिकित्सा भी हो रही थी, किंतु उससे कुछ फल हो रहा है, यह किसी भी प्रकार नहीं मालूम हो पाता था। शुभदा ये सब बातें सोच-सोचकर अपना सिर पीटा करती, दुखी होकर एकांत में रोया करती और उसके पास जाने की क़ामना करती है। बाद में वह पानी भर लाती, भोजन बनाती, सबको खिलाती-पहनाती। इसी तरह से दिन बीतते जा रहे थे।

एक दिन दोपहर में भोजन करते समय शुभदा की तरफ देखते हुए सदानंद ने कहा, 'छलना अब बड़ी हो गई है।'

शुभदा ने मलिन मुख से कहा, 'हां।'

'अब इसे इस तरह रखना ठीक नहीं है और अच्छा भी नहीं मालूम पड़ता।'

शुभदा ने कहा, 'मां दुर्गा ही जानती हैं।'

सदानंद मुस्करा उठा। वह बोला, 'मां दुर्गा तो आकर शादी का प्रबंध कर न जाएगी।'

शुभदा चुप रही।

'हरमोहन बाबू के लड़के शारदा के साथ यदि इसकी शादी कर दी जाए तो कैसा हो?'

शुभदा अच्छी तरह उसका अभिप्राय नहीं समझ सकी। वह बोली, 'शारदा के साथ?'

'हां।'

'तो क्या यह संभव है?'

'असंभव ही क्यों है?'

'पता नहीं।' यह बात शुभदा ने बहुत ही निराश भाव से मुंह से निकाली थी।

शुभदा के मन की बात पागल सदानंद ने समझ ली। इससे मुंह फेरकर वह तनिक हंस पड़ा। बाद में वह बोला, 'इस बारे में मैंने एक दिन शारदा से बातचीत की थी। वह अस्वीकार नहीं करेगा।'

शुभदा के मुख पर आग्रह का चिह्न उदित हो आया, लेकिन तुरंत ही वह फिर जहां-का-तहां हो गया। वह बोली, 'किंतु शारदा के पिता? क्या वे भी स्वीकार कर लेंगे इसे?'

'स्वीकार क्यों न करेंगे?'

'क्यों न स्वीकार करेंगे।' यह बात शुभदा समझती थी। पुत्र की इच्छा होने पर भी पिता की इच्छा न होगी, यह बात भी उसे मालूम थी, किंतु खोलकर इस बात को वह कह नहीं सकती थी। शुभदा के मन में एक बार आया, वह पूछे कि उसके पिता से बातें करने के लिए कौन जाएगा? किंतु यह बात भी वह मुंह से

न निकाल सकी। वह केवल मौन भाव और कातरतापूर्ण दृष्टि से उसके मुंह की ओर देखती रह गई।

वह मौन भाषा भी पागल सदानंद ने समझ ली। वह बोला, 'हम लोगों को ही किसी-न-किसी उपाय से उसके पिता की स्वीकृति लेनी होगी, क्योंकि शादी तो करनी ही पड़ेगी।'

डरते-डरते आशा और निराशा के बीच गोते खाती हुई शुभदा अस्पष्ट स्वर में बोली, 'लेकिन, क्या उनकी स्वीकृति मिल जाएगी?'

'अवश्य मिल जाएगी।'

'कैसे मालूम हुआ तुम्हें?'

पागल तनिक और मुस्कराया। वह बोला, 'यह मालूम नहीं है मुझे, लेकिन आप चिंता न कीजिए।'

वृद्ध हरमोहन की स्वीकृति लेने का मुख्य उपाय क्या है, यह सदानंद को मालूम था। उपाय का किस प्रकार अवलंबन किया जा सकेगा, यह भी उसने निश्चय कर लिया था।

लेकिन अब शुभदा से रहा न गया। तेजी से पैर बढ़ाती हुई वह दूध लेने के लिए घर में गई। दूध का कटोरा वह हाथ में लिए हुए थी। असावधानी के कारण उसमें आंसू की एक बूंद गिर पड़ी। संकुचित भाव से आकर वह बोली, 'सदानंद, बैठो, मैं उस कमरे से दूध बदलकर आती हूं।'

उस कमरे में जाकर दूध की कढ़ाही पर हाथ रखकर शुभदा ने जरा देर तक रो लिया। सावधान होकर उसने और दो-चार बूंदें भूमि पर गिराईं। बाद में आंखें पोंछकर वह दूध उड़ेलने लगी। शुभदा रोई अवश्य, लेकिन उसकी आंखों से हृदय को भेदने वाले रक्त के बिंदु नहीं निकल। वे थे आनंद के आंसू जो एक अनहोनी आनंददायक बात की संभावना के कारण उमड़ आए थे। एक बूंद जल ललना के शोक के कारण भी गिरा और एक बूंद स्वामी की वेदना के कारण।

भोजन करके सदानंद मैदान की ओर चला। वहां उसके खेत थे, मजदूर उनमें काम कर रहे थे, पशु आनंदपूर्वक चर रहे थे। वहां कुछ देर तक तो वह खेतों की मेड़ों पर टहलता रहा, बाद में एक पीपल की जड़ पर आकर बैठ गया। वहां उसने दो-चार बार कालीजी का नाम लिया, दो-चार चिलम-तंबाकू जलाई, तब हरमोहन बाबू के घर की ओर चल दिया।

सदानंद जिस समय हरमोहन बाबू की बैठक में पहुंचा, उस समय वे दोपहरी में सोकर उठने और हाथ-मुंह धोने के बाद पान खा रहे थे। चिलम का तवा उस समय तक गरम नहीं हो पाया था। उसमें से थोड़ा-थोड़ा धुआं निकल रहा था।

सदानंद को देखते ही वृद्ध बोल उठे, 'क्यों जी बहुत दिनों से मैंने तुम्हें देखा नहीं। कहां थे?'

सदानंद ने कहा, 'इधर बहुत दिनों से काशी में था।'

'यह तो मैंने सुना था। तुम्हारी बुआजी को काशी-लाभ हो गया है, इस बात का भी समाचार मुझे मिल चुका है। तुम कब आए? आओ बैठो।'

बहुत ही तेजी के साथ पास ही सदानंद बैठ गया। कोई बात कहने से पहले भूमिका बांधने का सदानंद का स्वभाव नहीं था। बेकार की बातें बढ़ाना भी उसे पसंद नहीं था। बैठते ही वह बोल उठा, 'श्रीमान के पास मैं शादी का संदेश लेकर आया हूं।'

हरमोहन ने हंसकर कहा, 'किसकी शादी का?'

'आपके पुत्र की शादी का।'

अब वृद्ध गंभीर हो गए। कारोबारी मनुष्य मतलब की बातें छिड़ने पर हंसी की बातों को कोसों दूर भगा देते हैं। हरमोहन के लिए पुत्र की शादी की बातचीत एक बहुत बड़े सौदे से कम महत्व नहीं रखती थी। इतने दिनों तक इस विषय में उन्हें बहुत अधिक दिमाग खपाना पड़ा था, कितने झमेलों का सामना करना पड़ा था। उनका खयाल था कि इस तरह के लेन-देन संबंधी जटिल विषयों पर बातें करते समय यदि समुचित रूप से तर्क करके बुद्धि का उपयोग न किया जाए तो ठीक-ठीक मीमांसा करना संभव नहीं होता। इसके सिवा कोई अपरिपक्व अवस्था का भी आदमी शादी का पैगाम लेकर किसी के पास जा सकता है, यह बात कभी उनके दिमाग में भी नहीं आ पाई थी। ऐसी दशा में यह कठिन विषय एक बालक को छेड़ते देखकर वृद्ध विह्वल हो उठे। कुछ दिन पहले उन्होंने सुना था कि आजकल सदानंद का मस्तिष्क कुछ और विकृत हो उठा है। अब उसके पागलपन का एक प्रमाण भी प्राप्त हो गया। इससे बहुत रुखाई के साथ और अधिक-से-अधिक गंभीर होकर वे बोले, 'किसकी शादी? शारदा की?'

'जी हां।'

वृद्ध ने अन्यमनस्क भाव से घर के भीतर की ओर उंगली से इशारा करके कहा, 'शायद शारदा उधर है। उसके पास जाओ।'

हरमोहन बाबू का रंग-ढंग देखकर सदानंद उनका मतलब समझ गया।

तनिक हंसकर वह बोला, 'शारदा से मेरा मतलब नहीं है। मैं आपके पास ही आया हूं।'

वृद्ध ने पहले की ही तरह फिर पूछा, 'मेरे पास?'

'जी हां।'

'क्यों?'

'मैंने कहा न आपसे? आपके पुत्र की शादी के विषय में बातें करने के लिए। क्या शारदा की शादी न करेंगे आप?'

'करूंगा क्यों नहीं? परंतु उसके विषय में बातें करने की तुम्हें क्या आवश्यकता है?'

'तो क्या मैं बेकार आया हूं यहां पर?'

'तुम्हारा मतलब है मुझसे?'

'जी हां।'

'लेकिन शादी के विषय में तुमसे कोई भी बातचीत नहीं की जा सकती।'

सदानंद ने समझ लिया कि संसार में इस प्रकार के लोगों के सामने मुंह में हंसी का अणुमात्र चिह्न मौजूद रहने पर किसी तरह मतलब की बात नहीं की जा सकती। मुख औंधी हांडी के समान न कर सकने पर लेन-देन और रुपये-पैसे के संबंध की बातें बिंदु मात्र भी समझ में आ सकती हैं, यह बात इस संप्रदाय के लोग कल्पना तक में नहीं ला सकते। यह सोचकर सदानंद ने अधिक-से-अधिक गंभीर होने का प्रयत्न किया। बाद में वह बोला, 'खूब की जा सकती है। बाल्यकाल में ही मेरे पिताजी का स्वर्गवास हुआ है तब से मैं ही उनकी सारी संपत्ति का प्रबंध करता आ रहा हूं। संसार के भिन्न-भिन्न कार्यों के संबंध में बातें करते समय लेन-देन की बातें भी तय करनी होती हैं, यह भी मैं जानता हूं। मुझे आशा है कि इस विषय को जितना आप समझते हैं, शायद उतना ही मैं भी समझ सकूंगा।'

वृद्ध हरमोहन के दिमाग में अब यह बात धंस पाई कि यह ठीक पागलपन की-सी बात नहीं कही गई। जरा-सी झुंझलाहट के साथ उन्होंने कहा, 'जरूरी लेन-देन के बारे में कुछ-न-कुछ तय करना ही होगा।'

सदानंद में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह अपनी हंसी रोक लेता। इससे जरा-सा फिर हंसकर वह बोला, 'श्रीमान से मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं कि सब बातें मुझसे ही करने में कोई हानि नहीं है, क्योंकि मैं यह संबंध किसी-न-किसी प्रकार ठीक कर लेने के ही विचार से आया हूं।'

अब हरमोहन जरा-सा नरम पड़े। उन्होंने कहा, 'लड़की किसकी है? वे कहां रहते हैं?'

'उनका घर इसी गांव में है। श्रीमान हाराणचंद्र मुखोपाध्याय की दूसरी लड़की है।'

'हाराण की?'

'जी हां।'

'भला वह क्या देगा?'

'आप जो मांगेंगे।'

वृद्ध कुछ देर तक सोचते रहे। बाद में वे बोले, 'लड़की देखने-सुनने में कैसी है?'

'आपने उसे देखा है, परंतु शायद आपको याद नहीं है। मेरे विचार से देखने-सुनने में तो वह बुरी नहीं है। आपके पुत्र ने उसे देखा है। उसके साथ शादी करने के लिए भी वे अनिच्छुक नहीं हैं।'

अब जरा-सा हंसकर वे बोले, 'तो फिर ठीक है। इसके सिवा हम गृहस्थ आदमी हैं। हमारे घर में मोम की पुतली की जरूरत तो है नहीं। देखने-सुनने में वैसी बुरी न हो, साथ ही काम-काज भी कर सकती हो, वही काफी है।'

सदानंद ने कहा, 'इस दृष्टि से वह बिलकुल ठीक है।'

'परंतु हाराण दे क्या सकेगा? उसकी हालत तो ऐसी नहीं है।'

'जी हां, हालत उनकी अच्छी नहीं है, लेकिन इस बात को ध्यान में रखते हुए आप जो कुछ मांगेंगे वह देंगे।'

वृद्ध कुछ कठिनाई में पड़ गए। वे सोचने लगे, 'मैंने अभी जो बात कह डाली, उसे अगर मन में रखता तभी अच्छा था।' लेकिन हरमोहन थे बहुत ही नीति-कुशल व्यक्ति। उन्होंने आसानी से बात संभाल ली और बोले, 'अवस्था कैसी भी हो भैया, लड़की की शादी में कुछ तो खर्च करना पड़ता ही है।'

'अवश्य!'

तब हरमोहन ने अपने अभ्यास के अनुसार होंठों की रही-सही हंसी को भी विदा कर दिया और वे पत्थर के आदमी बन गए। उन्होंने कहा, 'एक हजार रुपये नकद लिए बिना मैं किसी प्रकार शारदा की शादी न करूंगा।'

मुस्कराते हुए सदानंद ने कहा, 'यही सही।'

सदानंद की बात सुनकर वृद्ध अपने-आप ही नाराज हो उठे। उन्होंने अपने-आपको एक बहुत ही बड़े आकार के गर्दभ के रूप में संबोधित किया। मैंने डेढ़ हजार रुपयों की बातचीत क्यों नहीं की, यह अफसोस उनके हृदय को फाड़कर निकलने लगा। वे सोचने लगे, 'जब बात मुंह से निकल गई है, तब वह वापस तो की नहीं जा सकती, अब इसे जहां तक सुधार सकूं, वहीं तक अच्छा है।' इस विचार से उन्होंने कहा, 'इन रुपयों के सिवा लड़की को आभूषण तो देने ही होंगे।'

'कोई बात नहीं।'

'साथ में कुछ पात्र, वस्त्र तथा घर-गृहस्थी के काम की दूसरी चीजें भी देनी होंगी।'

'जरूर।'

'तो मुझे स्वीकार है।'

'अच्छी बात है, तो कोई दिन तय कर दीजिए।'

कुछ देर इधर-उधर करके वृद्ध ने कहा, 'इस शादी की बात अभी आपस

में ही रहनी चाहिए। हाराण भी मेरे लिए कोई गैर नहीं है तो भी जो नियम हैं, उन सबका पालन तो करना ही होगा।'

कुछ शंकित होकर सदानंद ने कहा, 'नियम क्या है?'

वृद्ध ने हंसकर कहा, 'नियम वैसे कुछ भी नहीं है, किंतु कुछ लिखा-पढ़ी जरूर कर लेनी चाहिए।'

'अच्छी बात है। लिखा-पढ़ी भी कर ली जाए।'

'किंतु लिखा-पढ़ी किसके साथ की जाएगी?'

'मेरे साथ।'

'बताओ कब?'

कुछ देर बाद सोचकर सदानंद ने कहा, 'महीना-भर बाद।'

वृद्ध इस बात पर सहमत हो गए।

तब सदानंद ने कहा, 'मेरा एक अनुरोध है।'

'वह क्या है बेटा?'

'यही की लेन-देन की बातें तीसरे आदमी के क़ानों तक न पहुंच सके।'

'क्यों?'

'इसका कुछ कारण है।'

हरमोहन व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। सदानंद के मन को समझकर उन्होंने कहा, 'तुम चुपचाप दान करना चाहते हो।'

सदानंद चुप रहा। उसका मुख देखकर, उसकी इस तरह की स्थार्थरहित दया देखकर हरमोहन भी क्षण-भर के लिए लज्जित हो उठे, परंतु यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि हरमोहन में व्यावसायिक बुद्धि काफी मात्रा में थी। इस प्रकार के भाव को अपने मन में उन्होंने अधिक देर तक नहीं रहने दिया। एक रूखी हंसी हंसकर वे बोले, 'बेटा, हमारी अवस्था वृद्ध हो चुकी है, इससे इतनी चक्षुलज्जा भी नहीं होती। अन्यथा हाराण की दशा मुझे बहुत अच्छी तरह मालूम है। जो भी हो, जब तुम चुपचाप दान कर सकते हो तो मैं चुपचाप ग्रहण भी कर सकता हूं। इसके लिए तुम चिंता न करो।'

सदानंद प्रसन्न भाव से हरमोहन बाबू को नमस्कार करके वहां से चलता हुआ।

शुभदा को मालूम हुआ, हाराण बाबू को मालूम हुआ और छलना को भी मालूम हुआ कि शारदा के साथ उसकी शादी हो रही है। सब लोगों को यह भी मालूम हुआ कि शादी सदानंद के प्रयत्न से पक्की हुई है। समाचार पाकर रासमणि ने यह मंतव्य प्रकट किया कि सदानंद पूर्वजन्म में शुभदा का पुत्र था।

यह बात कही गई थी सदानंद के सामने। उसने मौन भाव से इसे स्वीकार कर लिया। कम-से-कम किसी बात का प्रतिवाद नहीं किया उसने।

तरह-तरह के कार्यों में पड़े रहने के कारण आज तक उसे अपनी बुआ की संपत्ति की व्यवस्था करने के लिए जाने का अवसर ही नहीं मिला। समय मिलने पर उसने यह बात शुभदा से कही। शुभदा ने भी उसके इस प्रस्ताव का समर्थन किया। तब बिस्तर आदि बांधकर श्रीमान सदानंद चक्रवर्ती ने कुछ दिनों के प्रवास के लिए यात्रा आरंभ की। शुभदा का परिवार अब उसका परिवार हो गया था, इसलिए जाते समय वह सब प्रकार की व्यवस्था करना भूला नहीं। साथ ही उसने शुभदा से जोर देकर कहा कि तुम शादी के लिए हर प्रकार के प्रबंध करती रहना।

सदानंद ने पहुंचते ही अपनी स्वर्गीया बुआजी की सारी जमीन तथा अन्य प्रकार की वस्तुएं देखकर उन सबकी स्थिति की जानकारी प्राप्त कर ली। बाद में उन सबका एक आदमी को मालिक बनाकर या यों कहिए कि वह सब बेचकर पंद्रह दिन में ही फिर हलुदपुर में लौट आया। तब उसने हरमोहन के साथ लिखा-पढ़ी की, गहने बनवाए, चीज-वस्तु खरीदी और शादी का दिन निश्चित किया। यह सब कर चुकने के बाद उसने शारदाचरण से मुलाकात की। इस बीच में सदानंद को कभी ऐसा मौका नहीं मिला कि वह एकांत में बैठकर उससे दो बातें कर लेता। आज बहुत दिनों के बाद उन दोनों की इच्छा हुई कि कहीं एकांत में बैठकर कुछ देर तक बातें ही जाएं। इसलिए एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए, वे दोनों गंगा किनारे आकर एक जगह पर बैठे।

शारदाचरण ने बैठते ही कहा, 'सदानंद, क्या तुम्हें बचपन की बातें याद आती हैं।'

सदानंद, 'कुछ-कुछ तो याद आती हैं।'

शारदा, 'क्या तुम्हें उस समय की बातें याद आती हैं, जब मैं एक लड़की को बहुत प्यार करता था? तुम्हारे पास जाकर मैं अपने मन की कितनी आशाएं, कितनी कल्पनाएं व्यक्त किया करता था। नाराज होने पर मैं कितना रोता और तुम हंसकर उड़ा दिया करते। कभी-कभी तो तुम मेरा मजाक भी उड़ाने लगते थे। वे सब बातें तुम्हें याद आती हैं न सदानंद?'

सदानंद, 'वे बातें नहीं याद आवेंगी? अभी कल की बातें है वे। शायद सात-आठ साल से अधिक न हुआ होगा, परंतु मजाक तो कभी मैंने तुम्हारा उड़ाया नहीं।'

शारदा, 'मुझे ऐसा ही मालूम पड़ा करता था, मानो तुम मेरा मजाक उड़ा रहे हो। जो भी हो, बाद में जिस दिन उसने मेरी सारी आशा मिट्टी में मिला दी, अभिमान में आकर दोनों आदमियों ने बोल-चाल बंद करके चिरकाल के लिए

विदा ले ली, उस दिन कितनी रात तक तुम्हारे पास बैठे-बैठे मैं रोता रहा। वह बात तुम्हें याद है न भाई?'

सदानंद, 'याद है।'

सदानंद कुछ अन्यमनस्क हो गया, लेकिन उस ओर ध्यान न देकर शारदा ने एक समीपवर्ती स्थान की तरफ उंगली से इशारा किया और बोला, 'यहीं पर वह मरी है।'

शारदा की यह बात मानो सदानंद के कानों तक पहुंची ही नहीं। गंगाजी में सफेद पाल के सहारे एक नौका अपनी धुन में उड़ती चली जा रही थी। उसी की ओर सदानंद देख रहा था। शारदा फिर बोला, 'यहां ललना डूबकर मरी थी।'

अपना मुंह फेरकर सदानंद बोले, 'कहां?'

शारदा, 'यहां!'

सदानंद, 'तुम्हें कैसे मालूम हुआ?'

शारदा, 'यहां उसकी साड़ी मिली थी।'

सदानंद उठकर खड़ा हो गया। वह बोला, 'तो चलो, एक बार वह साड़ी ही देख आएं।'

शारदा हंसने लगा। वह बोला, 'तो क्या वह साड़ी अब भी वहां पर पड़ी होगी?'

सदानंद, 'तो चलो वह स्थान ही देख आएं।'

दोनों आदमी जाकर वहां पर खड़े हुए। पानी लेकर सदानंद ने हाथ-मुंह धोए। बाद में फिर आकर वह यथास्थान बैठा।

शारदा, 'सदानंद, मुझे बड़ा पश्चाताप होता है।'

सदानंद, 'क्यों?'

शारदा, 'किसी-किसी दिन मुझे ऐसा लगता है, मानो मैं ही उसकी मौत का कारण बना हूं।'

सदानंद, 'यह क्यों?'

शारदा, 'भगवान जानें, उसकी आयु समाप्त हो गई थी या नहीं, किंतु मुझे तो ऐसा लगता है कि अगर मैंने उससे शादी कर ली होती तो शायद अभी तक वह जिंदा रहती।'

सदानंद ने एक लंबी सांस ली। वह बोला, 'जो मर गया, उसकी मृत्यु अनिवार्य थी। तुम क्या कर सकते थे इस मामले में?'

शारदा, 'यह तो मैं जानता हूं, तो भी यदि मैं उसकी बात मान लेता! यदि उसके साथ शादी कर लेता तो शायद... ?'

सदानंद हंसा। वह बोला, 'परंतु उस अवस्था में तुम्हारी जाति जो चली जाती।'

कुछ सोचकर शारदाचरण बोला, 'जाती तो जाती।'

सदानंद, 'लेकिन अब तुम क्या करोगे?'

शारदाचरण की आंखों में आंसू आ गए। वह बोला, 'अब मैं करूंगा क्या, लेकिन उसकी बात यदि मैंने मान ली होती तो इतना पश्चाताप न होता।'

दूसरी ओर देखते हुए सदानंद बोला, 'पश्चाताप तुम्हारा धीरे-धीरे दूर हो जाएगा।'

शारदा, 'अहा, अगर मैं उसके आखिरी अनुरोध की भी रक्षा कर सका होता!'

सदानंद, 'वह कौन-सा अनुरोध?'

शारदा, 'उसने मुझसे कहा था कि यदि दरिद्र जाति वाले की रक्षा करो, छलना के साथ शादी कर लो।'

शारदा के मुंह की तरफ देखते हुए सदानंद ने कहा, 'तो क्या छलना के साथ तुम शादी न करोगे?'

शारदा, 'करूंगा, लेकिन इस तरह शादी करके क्या मैं उसके अनुरोध की रक्षा कर रहा हूं।'

सदानंद, 'क्यों नहीं?'

शारदा, 'किसी प्रकार से हुई जरूर, लेकिन अच्छा सदानंद, पिताजी को किस प्रकार राजी किया तुमने?'

सदानंद बोला, 'मैंने उनसे कहा कि शारदा यह शादी करना चाहता है।'

शारदा, 'केवल इतना ही?'

सदानंद, 'और नहीं तो क्या?'

शारदा, 'क्या मैं पिताजी के स्वभाव से परिचित नहीं हूं?'

सदानंद हंस पड़ा। वह बोला, 'तब फिर क्यों पूछ रहे हो?'

शारदा, 'मैं जानना चाहता हूं कि कितने रुपये देने होंगे?'

सदानंद, 'यह बात जानने से तुम्हें कोई लाभ न होगा।'

शारदा, 'सदानंद, यह तो पाप का धन है!'

सदानंद, 'मैं आशीर्वाद दूंगा कि तुम्हारा जीवन सदा सुख से बीते।'

शारदा, 'समय आने पर वे रुपये मैं लौटा दूंगा।'

'लौटा देना।'

कहने के साथ ही सदानंद उठकर खड़ा हो गया और उस स्थान पर आया, जहां ललना की साड़ी पड़ी थी। वहां की मिट्टी उठाई।

शारदा ने चकित होकर कहा, 'यह क्या कर रहे हो? शाम के वक्त मिट्टी क्यों उठा रहे हो?'

सदानंद जोरों से हंस पड़ा। कहा, 'पागलपन कर रहा हूं।'

वास्तव में शारदा ने देखा कि उसकी बातों तथा कार्य में विशेष अंतर नहीं है। उसने कहा, 'पागलपन कर रहे हो, यह तो मैंने नहीं कहा।'

सदानंद, 'तुम क्यों कहोगे? मैं कह रहा हूं।'

शारदा, 'सच बताओ, मिट्टी लेकर क्या करोगे?'

सदानंद, 'मैं शिवजी की पूजा करता हूं। घर पर गंगाजी की मिट्टी नहीं है, इसलिए ले लिया।'

शारदाचरण देखता रहा। सदानंद ने मिट्टी का लोंदा बनाया और उसे गंगा में फेंककर, हाथ धोने के पश्चात कहा, 'चलो, घर चलें।'

इसके बाद दोनों ही गांव में आकर अपने-अपने घर की ओर चले गए। घर आकर सदानंद ने द्वार बंद कर लिया। उस दिन फिर वह बाहर नहीं निकला।

रात में भोजन के लिए सदानंद को बुलाने के लिए पहले छलना आई, बाद में उसकी बुआजी आई, किंतु उसने द्वार नहीं खोला, भीतर से ही कह दिया कि मेरा शरीर बहुत अस्वस्थ है। देखने के लिए शुभदा आई, किंतु तब तक सदानंद सो गया था। कई बार जोर-जोर से आवाज देने के बाद वह लौट गई।

दूसरे दिन सवेरा होने पर सदानंद फिर उठा। वह मैदान में गया, लौटकर भोजन करने आया, हंस-हंसकर गाना गाने लगा, प्रतिदिन जो काम वह किया करता था वे सब करने लगा, परंतु कोई यह न समझ सका कि सदानंद दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है—जैसा वह कल था, आज ठीक वैसा नहीं है। धीरे-धीरे छलना की शादी का दिन आ गया। आज सभी के मुख पर आनंद की रेखा विराजमान थी। सभी के मन में उत्साह था। सदानंद को बैठने के लिए अवकाश नहीं था। हाराण मुखर्जी की बातों का अंत नहीं था। बुआजी के आंसू बंद नहीं हो पाते थे। घर में जो आता उसी से वे रो-रोकर कहा करतीं, 'ऐसे सुख के दिन में भी ललना के अभाव के कारण मेरे हृदय में तिल-भर भी सुख नहीं है।' उनके साथ-ही-साथ संभवत: और भी कई आदमी इस व्यथा का अनुभव कर रहे थे। केवल शुभदा आज बहुत शांत थी, बहुत गंभीर थी।

क्रमशः संध्या हुई। जोर-जोर से बाजे बजने लगे। बहुत-से लोग एकत्रित हुए। अंत में शुभ घड़ी और शुभ लग्न में छलनामयी का विवाह हो गया।

आज सारे गांव में वृद्ध हरमोहन की वाह-वाह की धूम मच गई थी। उनके शत्रुओं ने भी मन-ही-मन यह स्वीकार किया, कहा, 'हरमोहन के मन में बहुत उदारता का भाव है।'

उनके मुंह पर जब कोई प्रशंसा करने लगता, तब वृद्ध हरमोहन प्रसन्न भाव से कहते, 'बताइए, करूं क्या? कोई दूसरा लड़का तो है नहीं मेरा, उसकी इच्छा

हो आई कि मैं यहीं शादी करूंगा। तब मैं क्यों अस्वीकार कर दूं? इसके अतिरिक्त गांव भर में उनकी समानता का केवल मेरा ही एक घर है। बेचारे कहां जाएं शादी करने के लिए? पड़ोसी के भी सुख-दुख की ओर तो जरा-सा ध्यान रखना ही पड़ता है।'

यह बात सुनकर शारदा की भौंहों पर बल पड़ गए।

बहुत-से काम करने को थे। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करने के बाद वे सब सिद्ध हो गए। अब आराम से लौटना-बैठना अच्छा मालूम पड़ता था, परंतु दो-चार दिन के बाद उस आराम में भी आलस्य आ गया। हाथ-पैर समेटकर बिलकुल बेकार बैठे-बैठे भी तबीयत ऊब जाती है। सदानंद ने छलनामयी की शादी के संबंध की हर प्रकार की व्यवस्थाएं कीं, नितांत ही गुप्त रीति से हरमोहन को खूब ठिकाने से उसने चार पैसे घूस दिए। आखिर में जब शादी हो गई, तब वह इच्छानुसार बिस्तरे पर करवटें बदल-बदलकर खूब आराम से तीन-चार दिन तक लेटा रहा। उस समय उसका जी इतना हल्का हो गया था मानो इतने दिनों तक हत्या के अभियोग में वह गिरफ्तार था और अदालत से बरी हो जाने के कारण छोड़ दिया गया है। दो-चार दिन तक इसी प्रकार आराम से लेटे-लेटे समय व्यतीत करने के बाद सदानंद को ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो शय्या कुछ गरम हो उठी है, तकिया कुछ कड़ा हो गया है, साथ ही घर में भी अंधकार कुछ अधिक मात्रा में प्रविष्ट हो गया।

उस समय संध्या हो गई थी। पानी की नन्हीं-नन्हीं बूंदें पूरा दिन पड़ती रहीं। वे उस समय भी रुकी नहीं थीं। काले-काले बादल हवा के छोटे-छोटे झोंकों के कारण थोड़े-बहुत जरूर बिखर गए थे, लेकिन बूंदों का टपकना बंद नहीं हुआ था अभी तक। बूंदों के रुकने का कोई लक्षण भी नहीं मालूम पड़ रहा था। ऐसे समय में, लेकिन वह निकल पड़ा। बड़ी देर तक कभी इस रास्ते में, कभी उस रास्ते में, टहलने के बाद कपड़े भिगोकर और पैरों में कीचड़ लपेटकर सदानंद हाराणचंद्र के घर पहुंचा। शुभदा शायद उस समय रसोईघर में थी। सदानंद उधर गया नहीं, बुआजी शायद पड़ोस में ही किसी के यहां घूमने गई थीं। उनके संबंध भी उसने किसी प्रकार की पूछताछ नहीं की। पैर धोकर तनिक इधर-उधर देखने के बाद वह आकर उसी कमरे चला गया जिसमें माधवचंद्र लेटा हुआ था।

बहुत दिनों से माधवचंद्र से सदानंद की भेंट नहीं हुई थी। आज वह उससे बातें करने के लिए गया। ललना जब से गई है, तब से माधवचंद्र भी क्रमशः बहुत समझदार होता जा रहा था। नितांत ही बहुदर्शी वृद्ध के समान सब विषयों में बहुत सोच-विचारकर वह अपनी सलाह प्रकट किया करता था। खाने को भी वह कभी

कुछ नहीं मांगता। बहाने भी वह इधर-उधर के नहीं बनाया करता था। अब वह बोलता भी बहुत कम था। एक के ऊपर एक तकिया रखकर उन्हीं के सहारे से एक दार्शनिक के समान वह प्रायः मौन भाव से बैठा रहता। कोई उसके पास आए या न आए, इसकी वह परवाह नहीं करता।

माधवचंद्र आज भी उसी प्रकार बैठा था। पास आकर सदानंद के खड़े हो जाने पर वह बोला, 'सदा भैया, अब तुम मेरे पास क्यों नहीं आते?'

सदानंद, 'मुझे बहुत से काम करने को थे, इसीलिए...।'

माधव, 'सब काम-काज खत्म हो गए न?'

सदानंद, 'हां।'

माधव, 'छोटी दीदी कब आएंगी लौटकर?'

सदानंद, 'तीन-चार दिन के बाद।'

माधव, 'सदा भैया, बहुत दिनों से तुमसे एक बात कहनी थी, लेकिन आज तक मैं कह नहीं सका।'

सदानंद, 'क्यों?'

माधव, 'तुम्हें मैं कभी अकेले में पा नहीं सका, इससे वह बात भी नहीं कही जा सकी।'

सदानंद माधव के समीप बैठ गया। उसने कहा, 'एकांत में कहने की कौन-सी बात है माधव?'

माधव, 'दीदी चुपके से तुम्हीं से बतलाने को कह गई थीं भैया।'

सदानंद, 'कौन माधव?'

माधव, 'दीदी! बड़ी दीदी जब रात में गईं, तब तुम नहीं थे न, इससे वे कह गई थीं कि आने पर मैं तुमसे कह दूं कि दीदी चली गईं।'

थोड़ा-सा पास आकर सदानंद ने माधव के शरीर पर हाथ रख दिया। वह बोला, 'क्यों गई माधव, क्या किसी ने उसे कुछ कहा था?'

माधव, 'किसी ने भी नहीं।'

सदानंद, 'तब वे क्यों चली गईं?'

माधव, 'मैं भी जाऊंगा।'

सदानंद, 'छिः!'

माधव तनिक हंसा। बाद में वह बोला, 'और कोई जानता नहीं। केवल मैं जानता हूं और दीदी जानती हैं। वह मुझसे पहले चली गई हैं। मेरे लिए सब ठीक-ठाक करने के बाद मुझे भी ले जाएंगी। वहां हम दोनों खूब सुखपूर्वक रहेंगे।' मावधचंद्र अपने मुख को बहुत प्रफुल्लित करके एक बार फिर मुस्कराया फिर वह घूमकर बोला, 'दीदी आकर मुझे ले जाएंगी।'

सदानंद बड़ी देर तक चुप बैठा रहा। बाद में वह बोला, 'कब?'

माधव, 'जब मेरा समय हो जाएगा।'

सदानंद, 'माधव, यह सब बातें किसने सिखाई?'

माधव, 'बड़ी दीदी ने।'

सदानंद, 'उसने कहा है तुम्हें ले जाने को?'

माधव, 'हां।'

सदानंद, 'अगर वह न ले जाए?'

माधव, 'वह ले क्यों न जाएगी? जरूर ले जाएगी।'

सदानंद, 'अगर वह न ले जाए तो क्या तुम अकेले जा सकोगे?'

माधव जरा-सा खिन्न हो गया। थोड़ी देर तक वह सोचता रहा, बाद में बोला, 'कह नहीं सकता।'

सदानंद भी खामोश रहा। माधव फिर बोला, 'सदा भैया, क्या वहां अकेले जाना संभव हो सकता है?'

सदानंद, 'हां! नहीं तो तुम्हारी दीदी कैसे गई है?'

माधव, 'तो क्या मैं भी जा सकूंगा?'

सदानंद, 'जा सकोगे।'

माधव फिर सोचने लगा। बाद में दुखित भाव से बोला, 'परंतु मैं जाऊंगा किस प्रकार? मेरे शरीर में जरा भी तो बल नहीं है।'

सदानंद माधव का मुंह देखता रहा।

माधव कहने लगा, 'दीदी जब गई हैं, तब उनके शरीर में खूब बल था, लेकिन मैं किस तरह जाऊं? इस समय तो मैं खड़ा तक नहीं हो सकता हूं। क्या मैं इतनी दूर तक जा सकूंगा?'

सदानंद के नेत्रों में आंसू गए। अंधकार में माधव ने उसे देखा नहीं। सदानंद उस वक्त अनुभव कर रहा था कि अब माधव के दिन बीत चले हैं। वह कुछ ही दिनों का अब मेहमान है। बाद में इस संसार से इसका लेना-देना सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। उसका ध्यान गया शुभदा की दशा पर। ललना की भी उसे याद आई। उसने देखा कि अब मैं जरा झमेले में पड़ गया हूं। पांच आदमियों को साथ ले लेने के कारण अब निश्चिंत भाव से आनंदपूर्वक दिन नहीं व्यतीत कर पाता हूं। अब मैं उस तरह गाना भी नहीं गा पाता हूं। इच्छानुसार घूमने-फिरने की भी सुविधा नहीं रह गई है मुझे। उस तरह की मौज नहीं कर पाता हूं अब। पहले मैं सुखी था, अब दुखी हो गया हूं। पहले मैं त्यागी था, अब मुझे आसक्ति आ गई है। आंखों का जल पोंछकर सदानंद ने आज पहले-पहल यह अनुभव किया कि जीवित रहने में वैसा सुख नहीं है, जो जीवित है उसे ही क्लेश है। जो मर गया

है, संसार के इस शोक-संताप से बच गया है। उस दिन रात में बड़ी देर तक कितनी ही बातें सोचता रहा। उसके मन में आया—माधवचंद्र अब मरने को ही है। उसके बाद उसका ध्यान शुभदा की तरफ गया। उसके मन में आया कि मृत्यु के मुख में कूदकर ललना ने अपना सारा दुख-क्लेश उसकी छाती पर लाद दिया है।

उस रात में माधवचंद्र के हृदय में भी अधिक सुख नहीं था। अब एक दुर्भावना ने आकर उस पर अधिकार जमा लिया। इतने दिनों तक तो वह निश्चिंत था। उसकी धारणा थी कि ललना आकर मुझे ले जाएगी, लेकिन सदा भैया ने आज और तरह की बात कह दी। अब वह इस विचार में पड़ गया कि मेरे शरीर में बल बिलकुल नहीं है। किस प्रकार मैं इतनी दूर चलकर वहां तक पहुंच सकूंगा? सोचते-सोचते बड़ी रात को उसने निश्चय किया कि मेरी दीदी कभी झूठ नहीं बोलेगी। समय आने पर वह अवश्य आ जाएगी। तब बहुत-कुछ शांत मन से माधवचंद्र सो गया।

और भी कितने दिन बीत गए। छलना लौटकर पिता के यहां आ गई। पास-पड़ोस की स्त्रियां एक बार फिर नए सिरे से वर-वधू को देख गईं। कितनी हंसी-मजाक, कितना विनोद किया गया। हरमोहन स्वयं आकर अपनी मीठी-मीठी बातों से सबको तृप्त कर गए। समधिन महोदया का नमस्कार ग्रहण करके वे लौट गए। कमर में सफेद चद्दर बांधे हुए हाराण बाबू ने ब्राह्मणपाड़ा की प्रत्येक दुकान पर एक-एक बार बैठकर उन सबको मोहित किया। इस तरह कितनी घटनाएं हो गईं।

आज माधवचंद्र की पीड़ा बहुत अधिक बढ़ गई थी। शय्या पर पड़े-पड़े वह छटपटा रहा था और बगल में सिरहाने और पायताने पर बुआजी, कृष्णप्रिया और छलना वगैरह बैठी थीं। शुभदा वहां नहीं थी, वह रसोईघर में बैठी हुई कुछ खाद्य-पदार्थ तैयार कर रही थी, साथ-ही-साथ रोती भी जाती थी।

सदानंद गया था डॉक्टर बुलाने के लिए और हाराणचंद्र? वे 'अभी आता हूं' कहकर घर से निकले हैं और तीन घंटे बीत गए, फिर भी अभी तक नहीं लौट सके। सभी लोग सामने बैठे थे। कृष्णप्रिया माधव के शरीर पर हाथ फेरती जाती थीं और डॉक्टर के इंतजार में वे मन-ही-मन मिनट-मिनट गिनती जाती थीं।

धीरे-धीरे संध्या हो जाने के थोड़ी देर बाद डॉक्टर साहब आ गए। वे आज छः-सात दिन से प्रतिदिन आया करते थे। वे रोगी को इधर प्रतिदिन देख रहे थे। रोग उसका कम नहीं हो रहा है, बल्कि बराबर बढ़ता ही जा रहा है, यह बात वे जानते थे। यह बच न सकेगा, यह बात भी उन्हें मालूम हो गई थी। आज उनकी

आने की इच्छा भी नहीं थी, लेकिन सदानंद के प्रबल अनुरोध के कारण उन्हें आने के लिए बाध्य होना पड़ा था।

घर आकर डॉक्टर लोग रोगी को जिस प्रकार देखा करते हैं, उसी प्रकार उन डॉक्टर साहब ने माधव को भी देखा। बाद में बाहर आकर उन्होंने सदानंद को बुलाकर कहा, 'सदानंद बाबू, आज अधिक सावधान रहिएगा। यह लड़का शायद आज रात में न बच सकेगा।'

सदानंद भी यह बात जानता था।

बहुत रात बीत जाने पर हाराणचंद्र लौटकर आए। कमरे के बाहर ही चोर की तरह एक जगह खड़े होकर उन्होंने यथासंभव भीतर का समाचार मालूम कर लिया। बाद में थोड़ा-सा द्वार खोलकर मुंह बढ़ाकर वे बोले, 'इस वक्त वह कैसा है?'

कोई कुछ बोला नहीं। केवल शुभदा निकल आई। भोजन की थाली सामने रखकर वह पास ही बैठ गई।

हाराणचंद्र ने कहा, 'माधव कैसा है?'

'शायद अच्छा नहीं है।'

'अच्छा नहीं?' थोड़ा-सा रुककर हाराणचंद्र फिर बोले, 'मेरा भी शरीर अच्छा नहीं है।'

क्या सोचकर हाराणचंद्र ने यह बात कही, क्या सोचकर उन्होंने अपनी अस्वस्थता की चर्चा की, यह कहा नहीं जा सकता। उनकी इस बात में सत्य या असत्य का अंश कितना था, यह भी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, किंतु यह बात शुभदा के कान तक पहुंच नहीं पाई।

हाराणचंद्र मन-ही-मन बहुत दुखी हुए। स्त्री के सम्मुख अपना शरीर अच्छा न होने की बात कहकर भी कोई स्नेहमय प्रत्युत्तर नहीं पा सकना, उन्हें अस्वाभाविक-सा मालूम हुआ। उन्होंने अपने-आपको बहुत ही अपमानित अनुभव किया। वे नशा करके आए थे, इससे वह अपमान का साधारण-सा भी अंकुर दो-चार मिनट में ही एक विशाल तरु में परिणत हो गया और शाखाएं तथा टहनियां हाराणचंद्र के सारे दिमाग में फैल गईं। क्रोध में थाली ठेलकर उन्होंने कहा, 'अब मैं नहीं खाऊंगा? क्या प्राण देना है?'

चौके से उठकर हाराणचंद्र ने हाथ-मुंह धोया, कुल्ला किया और वे निर्दिष्ट कमरे में बिछी चारपाई पर जाकर लेट रहे। उन्होंने मन-ही-मन संभवतः यह स्थिर कर लिया कि मेरी तबीयत बहुत खराब है।

इधर शुभदा हाथ धोकर माधव के पास आई और बैठ गई। उसे देखकर कृष्णप्रिया ने कहा, 'हाराण कहां है?'

'उनकी तबीयत खराब है। वे लेट गए हैं।'

कुछ देर तक कृष्णप्रिया चुप रहीं। बाद में वे धीरे-धीरे बोलीं, 'मनुष्य को दया-माया नहीं होगी तो कम-से-कम आंखों के सामने आने पर तो तनिक शील आ ही जाता है।'

यह बात सुनकर रासमणि ने होंठ टेढ़ा कर लिया। क्रमशः रात अधिक बीतने लगी। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए कितने व्यक्तियों के पास बैठे-बैठे कृष्णप्रिया ने रात बिताई।' कितनी मौतें उन्होंने देखी थीं। उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि माधव की थोड़ी-थोड़ी सांस चल रही है।

कुछ देर बाद माधव बोल उठा, 'सिर में बड़ा दर्द है।'

कृष्णा बुआ उसके सिर पर हाथ फेरने लगीं। थोड़ा-सा रुककर वह फिर बोला, 'पेट में बड़े जोर का दर्द हो रहा है। ऐसा जान पड़ रहा है मानो बड़े जोर से उल्टी आ जाएगी।'

सभी ने एक-दूसरे के मुंह की ओर देखा। मानो वहां के हर एक आदमी ने दूसरे के मुख के भाव का अध्ययन करने का प्रयत्न किया।

फिर कुछ क्षण चुपचाप ही बीत गए। सभी लोग मुंह बंद किए हुए बहुत ही दुखी होकर अंतिम घड़ियों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

कुछ क्षण बाद माधव बहुत ही क्रोधित होकर लड़खड़ाती हुई आवाज में बोला, 'बड़े जोर की प्यास लगी है।'

बुआजी ने दूध के बदले मुंह में थोड़ा-सा गंगाजल डाल दिया। आग्रह के कारण माधव वह सारा-का-सारा पी गया और बड़ी देर तक खामोश पड़ा रहा।

धीरे-धीरे सांस बढ़ गई। सभी का ध्यान उस तरफ गया। कृष्णप्रिया को नाड़ी देखना आता था। काफी देर तक माधव की कलाई पकड़े रहने के बाद सदानंद को पास बुलाकर उन्होंने कहा, 'अब इसे नीचे लिटा देना चाहिए।'

सदानंद चुप रहा।

रासमणि के कानों तक यह बात पहुंच गई थी। सिसकते-सिसकते उन्होंने कहा, 'अब क्या देख रहे हो सदानंद?'

छलना रो पड़ी। कृष्णा बुआ भी रोने लगीं, साथ-ही-साथ माधव का चेतनाहीन शरीर नीचे उतार दिया गया।

बड़ी देर के बाद माधव ने फिर एक बार मुंह खोला। कृष्णा बुआ ने पहले की तरह मुंह में थोड़ा-सा पानी डाल दिया। माधव को मानो थोड़ा-सा बल मिला। अब उसकी आंखें खुल गईं। बाद में धीरे-धीरे हंसकर वह बोला, 'सदा भैया, दीदी आई हैं।'

छलनामयी पास ही बैठी हुई थी। आज सारी रात उसे नींद नहीं आई। माधव

की यह बात कान में पड़ते ही उसका शरीर कांप उठा। डर के मारे वह माता से लिपटकर बैठी। रासमणि का भी सारा शरीर रोमांचित हो उठा।

कुछ देर और बीत जाने के बाद माधवचंद्र बहुत ही अस्थिर हो उठा। उसका माथा घूमने लगा। बड़े जोर-जोर से सांस चलने लगी। यह दशा देखकर कृष्णप्रिया रोते-रोते बोलीं, 'अब क्या देख रहे हो? समय हो गया है।'

रासमणि चीख उठीं, 'परलोक का काम करो। तुलसी के नीचे...।'

उस समय सभी लोग चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। सबके सम्मिलित चीत्कार के कारण हाराणचंद्र की नींद भंग हो गई। दौड़ते हुए बाहर आकर उन्होंने देखा कि माधव को उठाकर बाहर लाया गया है। वे भी पुत्र के शरीर को गोद में लिए हुए चीखते-चीखते तुलसी के पेड़ के पास आ बैठे। रोते-रोते पुकारा, 'बेटा माधव!'

उसने भी एक बार गों-गों करके कहा, 'बा...बा!'

बहुत ही अच्छे ढंग से सजा हुआ एक महल था। उसके एक कमरे में कोच पर अपूर्व सुंदरी मालती अपनी आभा से स्थान को दैदीप्यमान करती हुई विराजमान थी। पास ही संगमरमर पत्थर से बने हुए साइन बोर्ड के ऊपर चांदी के शमादान में बत्ती जल रही थी। उसी की रोशनी में मालती एक पुस्तक पढ़ रही थी। जिस कमरे में वह बैठी थी, उसकी सजावट महल के अन्य कमरों की अपेक्षा कहीं अधिक थी। फर्श पर रंग-बिरंगा गलीचा बिछा हुआ था। दीवार पर भिन्न-भिन्न रंगों में फूल-पत्ती का काम किया हुआ था। उस पर भी बहुत-से आकर्षक और कलापूर्ण चित्र टंगे हुए थे। राजप्रासाद के समान इस भव्य महल में मालती अकेली ही सोने की सजीव प्रतिमा के समान विराजमान थी। दूर पार्थिव सौंदर्य की सहस्त्र गुना वृद्धि करने के लिए उसने कितनी विधियों का अवलंबन किया था, लेकिन उस वक्त उसकी रूपराशि तथा उसके विन्यास-कौशल को देखने वाला वहां कोई नहीं था। इसलिए मालती अपनी धुन में पुस्तक पढ़ रही थी, लेकिन वह पढ़ क्या रही थी खाक? पंक्ति-पर-पंक्ति उसके दृष्टि पथ से हटती जा रही थीं, पृष्ठ-पर-पृष्ठ वह उलटती जा रही थी, लेकिन हृदय में उसके एक भी अक्षर प्रवेश नहीं कर रहा था। शायद वह इससे पहले रो रही थी। सूखे हुए आंसुओं के दाग उस समय भी उसके कपोलों पर दिखाई दे रहे थे। एक ऐसे सुविशाल भवन में जहां सभी तरह की सुख-सुविधाएं प्रचुर मात्रा में विद्यमान थीं, निवास करने का सौभाग्य पाकर भी मालती क्यों रो रही थी, यह बात तो उसके अतिरिक्त कदाचित और किसी को भी नहीं मालूम थी, लेकिन वह रो रही थी, इसमें संदेह नहीं था और अपनी उस रुलाई को रोकने के लिए उसने पुस्तक

का आश्रय ग्रहण किया था। मालती का हृदय उस वक्त बहुत दुखी था। शरीर पर उसने किसी तरह का अलंकार नहीं धारण किया था। वस्त्र भी वह साधारण ही पहने हुई थी। कुछ देर तक पन्ने उलटने के बाद उसने पुस्तक साइनबोर्ड पर फेंक दी और कोच की बाजू पर सिर रखकर वह चुपचाप बैठी रही। फिर उसकी आंखों में आंसू आ गए। इस बार उसने आंसुओं को रोकने का प्रयत्न नहीं किया। इससे शायद आंसुओं की एक के बाद एक बूंद कोच पर बिछी हुई मखमली चादर पर गिरने लगीं। इसी तरह काफी समय बीत जाने के बाद सुरेन्द्रनाथ ने कमरे में प्रवेश किया। इतने ऊंचे गलीचे पर पैरों की आहट हो ही नहीं सकती थी, इससे उनके आगमन की सूचना मालती को नहीं मिल सकी। जिस प्रकार वह आंसू बहा रही थी, उसी तरह बहाती रही। निश्चल भाव से खड़े-खड़े सुरेन्द्रनाथ देखने लगे। कुछ देर के बाद और भी पास जाकर वे खड़े हुए। बाद में उन्होंने पुकारा, 'मालती!'

चौंककर मालती ने देखा। वह बोली, 'आओ!'

सुरेन्द्रनाथ उसके पास बैठ गए। मालती के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर स्नेह से गद्‌गद स्वर में बोले, 'तुम फिर रो रही थीं?'

अब तो मालती रंगे हाथों पकड़ ली गई थी। इसलिए इच्छा होने पर भी वह 'नहीं' न कह सकी। चुप ही रही वह।

सुरेन्द्रनाथ, 'तुम रोती क्यों हो?'

मालती कुछ बोली नहीं।

सुरेन्द्रनाथ भी कुछ देर तक मुंह से कोई शब्द नहीं निकाल सके। बाद में उन्होंने मालती के दोनों हाथों को और भी जोर से दबाकर पकड़ लिया और धीरे-धीरे मुंह से बात निकाली, 'दुख यही है कि इतनी कोशिश करने पर भी मैं तुम्हें सुखी रखने में समर्थ न हो सका। हृदय की हजारों कामनाओं द्वारा भी मैं तुम्हारा हृदय प्राप्त न कर सका।'

कोशिश करने पर भी मालती इस बात का कोई उपयुक्त उत्तर नहीं दे पाई। एक और भी काम उसके द्वारा संपन्न नहीं हो सका। इससे पहले हीं वह मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर चुकी थी कि चाहे कुछ भी हो, मैं रोऊंगी नहीं, लेकिन आंसुओं के ऊपर वह अपना प्रभुत्व दृढ़तापूर्वक स्थापित कर रखने में समर्थ न हो सकी। वे जिस तरह झड़ रहे थे, उसी तरह झड़ने लगे।

सुरेन्द्रनाथ कहने लगे, 'क्या करने से एक आदमी सुखी हो सकता है, यह मनुष्य तो समझ नहीं सकता। देवतागण समझ सकते हैं या नहीं, इसमें भी संदेह है। तृप्ति के लिए, यह भवन मैंने इस तरह सजाया, देवी की यह प्रतिमा इस भवन में, इतने यत्न से स्थापित की, लेकिन क्या मैं सुखी हो सका? सुख की चर्चा ही

करना व्यर्थ है। मुझे तो ऐसा लगता है, मानो मेरे दुख की मात्रा में वृद्धि हुई है। जिसे सुखी करने के लिए मैंने इतना उद्योग किया, उसे एक दिन भी सुखी न देख सका। जब से मैंने तुम्हें पाया हैं, तब से लेकर आज तक, तुम्हारे अधर-प्रदेश में तिल मात्र भी हंसी नहीं देख सका। यह बात कहते-कहते सुरेन्द्रनाथ ने मालती के हाथों को छोड़ दिया और नितांत ही अधीर भाव से उसका आंसुओं से मलिन मुख पकड़कर ऊपर की तरफ उठाया। बाद में वह विह्वल भाव से बोले, 'मालती, कितने दिन बीत गए, लेकिन क्या तुम किसी तरह भी सुखी न होओगी? क्या किसी तरह एक बार भी हंसकर मेरी तरफ न देखोगी?'

हाथ उठाकर मालती ने आंखें पोंछीं।

'इस सौंदर्य में कितना अधिक आकर्षण है, इस रूप पर कितना अधिक मुग्ध हुआ हूं मैं, यह प्रकट करने के उपयुक्त शब्द मेरे पास नहीं हैं। तुम्हें जी भरकर सजाऊंगा, इस कामना से कितने अलंकार ले आया हूं मैं। कितने वस्त्र इकट्ठा करके रखे हैं मैंने, लेकिन एक क्षण के लिए भी तुम उन सबको अपने शरीर पर धारण नहीं कर सकी हो। मालती, क्या तुम मुझे देख नहीं सकती हो?'

सुरेन्द्रनाथ की गोद में सिर रखकर मालती रोने लगी।

यह देखकर सुरेन्द्रनाथ की आंखों में आंसू आ गए। प्यार के साथ मालती के सिर पर हाथ रखकर गद्गद स्वर में बोले, 'तुम मुझे देख नहीं सकती हो, यह नहीं है मेरा कहना। मेरे मन में कितनी बातें आ रही हैं तुम्हारे बारे में। बुरा न मानना। मैं सोचता हूं कि आज मैं अपने मन की बातें कह डालूं। मेरा विश्वास है कि तुमने जिस मार्ग पर पैर रखा है, नीच स्त्रियां आत्मसुख के लिए उसका सहारा लिया करती हैं और वस्त्र-आभूषण, धन-रत्न तथा ऐश्वर्य के अतिरिक्त उनके सुख की और भी कोई सामग्री हो सकती है, यह मुझे ज्ञात नहीं है, लेकिन तुम उस श्रेणी की स्त्रियों के समान नहीं मालूम पड़ रही हो। इससे मैं यह भी नहीं समझ पाता हूं कि क्या करने पर तुम्हें सुख मिल सकेगा और मालूम होता तो आज तुम सुखी हो गई होतीं।'

ये सब बातें कहते-कहते सुरेन्द्रनाथ कुछ देर तक चुप रहे, बाद में कुछ गंभीर होकर वे बोले, 'मालती, क्या तुम्हारे स्वामी जीवित हैं?'

सुरेन्द्रनाथ की गोद में ही रखे-रखे सिर हिलाकर मालती ने सूचित किया, 'मेरे स्वामी अब इस संसार में नहीं हैं।'

'ऐसी दशा में अगर मैं तुम्हारे साथ शादी कर लूं तो क्या तुम सुखी हो सकोगी? बताओ, बताओ, ऐसा करने में भी मैं संकोच का अनुभव न करूंगा।'

यह बात सुनते ही मालती सुरेन्द्रनाथ के चरणों पर गिर पड़ी। हाथों से उनके चरणों को पकड़कर उन्हीं में अपना मुंह छिपा लिया, लेकिन सुरेन्द्रनाथ ने उसका

मुख उठाने की कोशिश नहीं की। उन्होंने यह समझ लिया कि आंखों के पानी से मेरे दोनों ही चरण धोए जा रहे हैं। तो भी उन्होंने मालती को उठाया नहीं। एक लंबी सांस लेकर वे नीरव भाव से बैठे रहे।

इसी प्रकार बहुत दिन बीत गए। अंत में खिन्न भाव से धीरे-धीरे वे कहने लगे, 'भगवान जाने मुझे क्या हो गया है। तुम्हें मैंने अंतःकरण से प्यार किया है या मैं तुम्हारी इस अतुलित रूप-राशि के कारण उन्मत्त हो गया हूं, यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता, लेकिन अब मेरी कर्तव्य-बुद्धि स्थिर नहीं है इस समय। अच्छे-बुरे पर विचार कर के उसका निर्णय करने की शक्ति मुझे छोड़कर चली गई। तुम्हारी एक बात के लिए कदाचित मैं प्राण तक अर्पण कर सकता हूं। ईश्वर जानते हैं, तुम्हारा हृदय प्राप्त करने के लिए—मिथ्या नहीं बोल रहा हूं, मैं सच कह रहा हूं—मैं अपने आपको भूल गया हूं। जो होनी होगी, वह होगी, लेकिन तुम बतला दो कि अगर शादी के ही द्वारा सुखी हो सको तो मैं तुम्हारे साथ शादी करने के लिए तैयार हूं। जाति, कुल, इतने प्रतिष्ठित वंश की मर्यादा की तरफ मैं जरा भी ध्यान न दूंगा।' ये सब बातें मुंह से निकलते-निकलते सुरेन्द्रनाथ की आंखें आंसुओं सें भर गईं। कंठ अवरुद्ध हो गया। कुछ देर तक रुककर उन्होंने आंसू पोंछ डाले। बाद में धीरे-धीरे, बहुत ही मंद स्वर में वे बोले, 'उसके बाद, मालती हम लोगों के समान मनुष्यों के लिए बहुत रास्ता खुला हुआ है। जब मैं सहन न कर सकूंगा, तब आत्महत्या करके सीधे नरक की तरफ चला जाऊंगा।'

मालती से अब न सहा गया। रोते-रोते वह बोली, 'यह बात तुम मुंह से मत निकालो। तुमने मुझे जीवन-दान दिया है, मेरी लज्जा का निवारण किया है, दया करके मुझे आश्रय दिया है। वरना शायद अब तक मैं जीवित न रहती। मैं नीच हूं, पापिष्ठा हूं, लेकिन कृतघ्न न हो पाऊंगी। तुम्हारी दया, तुम्हारा स्नेह इस जीवन मैं कभी न भुला सकूंगी। इन सबका बदला क्या मैं इसी प्रकार दूंगी? क्या इसी तरह मेरा उद्धार होगा तुम्हारे ऋण से?'

एक लंबी सांस लेकर सुरेन्द्रनाथ बोले, 'किस तरह तुम्हारा उद्धार होगा, यह तो भगवान जानते हैं, मैं नहीं जानता। तुमसे मैं किस तरह बतलाऊं कि इधर एक महीने से मैं कैसी यंत्रणा, कैसी आंतरिक व्यथा को सहन कर रहा हूं। मन में दुखी न होना, लेकिन कहने में मुझे लज्जा आ रही है कि इन थोड़े ही दिनों में एक स्त्री का इस तरह का दास बन बैठा हूं। तुम...तुम जो भी हो, मैं तो तुम्हारे लिए अपने पिता-पितामह के वंश की मर्यादा तक का अंत करने पर उतारू हो गया हूं।'

मालती रुक-रुककर रुंधे कंठ से कहने लगी, 'मैं तुम्हारी दासी की भी दासी होने के योग्य नहीं हूं। मैं कौन हूं, जो तुम मेरे लिए इतनी बड़ी हानि स्वीकार करोगे—अपना बाल तक टेढ़ा होने दोगे। मैं आजन्म की दुखियारी हूं। इतनी

करुणा जीवन में मैंने और कभी नहीं पाई।' फिर रोते-रोते वह बोली, 'यही अंत हो, ईश्वर करें, यही मेरे जीवन की अंतिम घटना हो।'

बड़े प्यार से मालती का हाथ पकड़कर सुरेन्द्रनाथ ने उसे उठाया, फिर उसे अपनी बगल में बैठाकर वे बोले, 'लेकिन किसी तरह भी तो तुम सुख नहीं पा रही हो।'

आंखों से आंचल का छोर लगाए हुए मालती बोली, 'हम लोग बहुत दरिद्र हैं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'लेकिन मैं तो दरिद्र नहीं हूं। जो कुछ मेरे पास है, वह तुम्हारे पास भी है।'

मालती, 'मैं स्वयं अपने बारे में नहीं कह रही हूं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तब किसके बारे में कह रही हो? तुम्हारा तो कोई है नहीं।'

मालती, 'भगवान जानें, इस समय कोई है या नहीं, लेकिन जब मैं चली आई थी, तब सब थे।'

सुरेन्द्रनाथ, 'यह कैसे? नाव दुर्घटना के द्वारा...।'

मालती, 'यह सब झूठी बात है। नाव दुर्घटना बिलकुल हुई ही नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ आश्चर्य से मालती के मुंह की तरफ देखते रह गए। कदाचित एक बार उनके मन में यह प्रश्न उदित हुआ था यह प्रवंचना है या इसमें सच्चाई है, लेकिन बाद में उन्हें विश्वास हो गया कि मालती जो कुछ कह रही है, वह सच ही है। इन आंखों, इन आंसुओं के मध्य में भी वंदना, मिथ्या छिपी रह सकती है, यह बात उनके मन में नहीं बैठ सकी। कुछ देर बाद उन्होंने पुकारा, 'मालती!'

'क्या?'

'क्या यह सब सच है?'

अब मालती सुरेन्द्र बाबू के मुंह की तरफ देखती रही। देखते-देखते उसकी आंखों में आंसू भर गए। सुरेन्द्रनाथ लज्जित हो उठे। अपने हाथ से उसके आंसू पोंछकर कहा, 'तो तुम सारा हाल साफ-साफ बताओ।'

अब मालती ने सुरेन्द्रनाथ की गोद में अपना सिर रख दिया और धीरे-धीरे रो-रोकर और कभी स्थिर होकर कहने लगी, 'जिस दिन से मैंने जन्म लिया है, तब से दुख की गोद में पालन-पोषण हुआ है मेरा, लेकिन मेरे सब कुछ था। पिताजी ने यथाशक्ति देख-सुनकर मेरी शादी की थी, लेकिन मेरे भाग्य खोटे थे, इससे मैं एक साल में ही विधवा हो गई। जिसके साथ मेरी शादी हुई थी उन्हें एक बार से अधिक शायद मैं देख भी नहीं पाई। पिता के यहां थी। तब से पांच साल तक वहीं रही। हमारे पिताजी गांव हलुदपुर से प्रायः आधे कोस की दूरी पर जमींदार के यहां काम किया करते थे। वेतन वे बहुत थोड़ा ही पाया करते थे।

इसी से किसी-न-किसी प्रकार हम लोगों का निर्वाह हो जाया करता था।'—इतना कहते-कहते मालती का कंठ स्वर भर उठा।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'उस समय तुम्हारे घर में कौन-कौन थे?'

मालती, 'सभी लोग थे। माता, पिता, बुआ, एक बहन और एक छोटा-सा भाई। बाद को रुपये चुराने के अभियोग में पिताजी की नौकरी छूट गई। अब भिक्षा ही हम लोगों की जीवन-यात्रा का सहारा रह गई। किसी दिन कुछ मिल जाता तो हम लोगों का भोजन होता और किसी दिन निराहार ही रह जाना पड़ता। माताजी मेरी सती लक्ष्मी थीं। मांगने, याचना करने या और किसी तरह से जब कुछ मिलता, तब घर के सब लोगों को वे खिला देतीं। वे स्वयं प्राय: उपवास किया करती थीं। यहां तक कि एक साथ तीन-तीन दिन तक...।' इतना कहते-कहते मालती फफककर रो पड़ी। कुछ देर बाद अपने-आपको संभालकर बोली, 'लेकिन पिताजी इन सब बातों की तरफ जरा-सी निगाह तक नहीं डालते थे। वे गांजा पीते, अफीम खाते, कभी कहीं पड़े रहते, लगातार चार-पांच दिन तक घर नहीं आते थे।

मेरा छोटा भाई माधव लगभग एक साल से बीमार था। उसकी चिकित्सा की कोई व्यवस्था हो नहीं पाती थी। इधर चिकित्सा के बिना वह अच्छा नहीं हो रहा था। शायद वह अब तक जीवित भी न हो!'

इस समय सुरेन्द्रनाथ की भी आंखें आंसुओं से भर गईं।

उसके बाद मालती ने कृष्णप्रिया का हाल बतलाया। सदानंद का हाल बतलाया और सबके आखिर में छलना का हाल बतलाया। उसने कहा, 'छलना की शादी की अवस्था हो गई है, लेकिन दरिद्र के घर की लड़की के साथ शादी कौन करे? उसके लिए कोई वर नहीं मिल रहा है। इधर एक निर्दिष्ट अवस्था के भीतर लड़की की शादी न कर देने पर ब्राह्मण की जाति चली जाती है। हम लोगों के भी जातिच्युत होने का समय शायद आ गया। माताजी ने आहार-नींद का परित्याग कर दिया। पिताजी उनकी दशा की तरफ थोड़ा-सा दृष्टिपात तक नहीं किया करते थे। माता के एकमात्र अवलंब थे सदानंद, लेकिन वे भी उस समय घर में नहीं थे। अपनी बुआ को लेकर वे काशी गए हुए थे।

पिताजी की नौकरी छूटने पर इसी तरह धीरे-धीरे छह महीने बीत गए। गांव तथा पास-पड़ोस के लोग कितने दिन तक सहायता करते! सदा भाई ने काशी जाते समय जो पचास रुपये दिए थे, वे भी समाप्त हो गए। उसी समय की अवस्था का वर्णन अब मुझसे नहीं किया जाता।' इतना कहकर मालती रोने लगी। सुरेन्द्रनाथ भी रो पड़े।

कुछ देर के बाद आंखें पोंछकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'अब रहने दो, किसी और दिन बतलाना।'

आंखें पोंछकर मालती ने कहा, 'आज ही बतलाए देती हूं। लोग मुझे सुंदरी कहा करते थे। इससे मेरे मन में यह बात आई कि कलकत्ता जाकर मैं कुछ कमाऊं। यह सोचकर एक दिन रात में गंगा किनारे पहुंची। मन में आया कि गंगाजी के किनारे-ही-किनारे कलकत्ता चली जाऊंगी। इस तरह मुझें न तो कोई देख पाएगा और न किसी से रास्ता पूछना पड़ेगा। घाट पार पहुंचकर देखा तो पास ही एक बड़ी-सी नौका पाल उड़ाती हुई चली जा रही थी। तैरना मुझे आता था। नौका देखकर मैंने सोचा कि लपककर नौका का हाल पकड़ लूं और उसी के सहारे चुपचाप तैरती हुई चली जाऊं। मैंने सुना था कि हमारे गांव से कलकत्ता अधिक दूर नहीं है, लेकिन यह ठीक नहीं जानती कि कितनी दूर है। सोचा कि रात बीतते-बीतते वह नौका कलकत्ता जरूर पहुंच जाएगी। उस समय मैं भी उतर जाऊंगी। मन में यह निश्चय करके मैं पानी कूद पड़ी। तैरते-तैरते कुछ दूर गई। इतने में मेरी साड़ी हाथ-पैर तथा सारे शरीर में लिपट गई। मैं प्रायः डूबने-सी लगी। तब बड़ी कठिनाई से वह साड़ी मैंने खोल डाली, लेकिन हाथ से छूटकर कहीं बह गई। इतने में नाव पास आ गई। अब तक मेरे हाथ-पैर भी लगभग शक्तिहीन हो चले थे। मैंने सोचा कि अब लौटकर मैं न जा सकूंगी। इससे नौका का सहारा लिया। नौका चलने लगी। मैं भी उसका हाल छोड़ने का साहस नहीं कर सकी। मुझे भय होने लगा कि इसे छोड़ने पर मैं कहीं डूब न जाऊं। इस प्रकार नौका हाल पकड़े-पकड़े मैं बहुत दूर तक चली आई। अब लौटकर जाने का भी कोई उपाय नहीं था। मैंने स्थिर किया—प्रातःकाल स्नान के निमित्त आई हुई किसी-न-किसी स्त्री से एक साड़ी मांग लूंगी। प्रातःकाल स्नान के निमित्त बहुत-सी स्त्रियां आएंगी। उन सबके पास साड़ी होती ही है। उन्हीं में से किसी से मागूंगी। मुझे नग्न देखकर उन्हें दया आ जाएगी। उसके बाद क्या हुआ, वह सब तुम जानते हो।'

सुरेन्द्रनाथ बड़ी देर तक मौन भाव से बैठे रहे। बाद में धीरे-धीरे मालती को अपने पास खींचकर उन्होंने कहा, 'जिनके लिए तुमने इतना सब किया, उनके बारे में क्या तुमने अभी तक कोई उपाय नहीं किया?'

सिर हिलाकर मालती ने कहा, 'नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'यह तो मैं जानता हूं, लेकिन जो मुंह खोलकर इतनी बात नहीं कह सकती, उसने किस साहस के भरोसे पर ऐसा काम किया है?'

मालती चुप होकर सुनने लगी।

'हर महीने कितने रुपये मिल जाने से उन लोगों का काम चल सकेगा?'

मालती, 'बीस रुपये।'

सुरेन्द्रनाथ, 'हर महीने पचास रुपये वहां भेज दिया करो।'

'मालती, 'तुम दोगे?'

सुरेन्द्रनाथ हंसे। वे कहने लगे, 'दूंगा। अगर चाहो तो और दूंगा।'

मन-ही-मन मालती ने कहा, 'इतने दिनों के बाद मेरा जन्म सार्थक हुआ है।'

सुरेन्द्रनाथ, 'इसके सिवा एक काम और करो। तुम मेरे साथ शादी कर लो, क्योंकि नराधम होकर भी मैं इतने शुभ्र हृदय में कलंक न लगने दूंगा।'

सुरेन्द्रनाथ की गोद में सिर रखे-ही-रखे अपना सिर हिलाकर मालती ने अस्फुट स्वर में कहा, 'नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'क्यों? नहीं क्यों कह रही हो? शायद तुम सोचती होगी कि ऐसा करने पर मेरी जाति चली जाएगी, लेकिन मैं यहां का जमींदार हूं। मेरे पास रुपये भी अधिक हैं। जिसके पास रुपये होते हैं उसकी जाति शीघ्र ही नहीं जाती।'

मालती, 'गोलमाल होगा।'

सुरेन्द्रनाथ, 'होगा! लेकिन वह भी अधिक समय तक बना न रहेगा।'

मालती, 'वंश, कुल, मान-प्रतिष्ठा आदि?'

सुरेन्द्रनाथ, 'मालती! कम-से-कम एक दिन के लिए तो इन सबको भूलने दो। जगत में आकर मैंने बहुत-सी वस्तुएं प्राप्त की हैं, लेकिन मैंने सुख कभी नहीं पाया। एक दिन के लिए मुझे यथार्थ सुखी होने दो।'

सुरेन्द्रनाथ की यह बात सुनकर मालती का अंतःकरण तक रो उठा, लेकिन उसने अपने-आपको संभाल लिया। धीरे-धीरे वह बोली, 'तुम्हारे पास मैं सदा ही रहूंगी।'

सुरेन्द्रनाथ, 'ईश्वर करें ऐसा ही हो। तुम सदा रहोगी, लेकिन मैं क्या तुम्हें इस तरह रख सकूंगा। तुमने तो संसार देखा नहीं, लेकिन मैंने देखा है। मैं जानता हूं कि मैं विश्वासपात्र नहीं हूं। जिस प्रेम में पड़कर तुम अपना सारा जीवन बिता दोगी, संभव है कि उसे छिन्न-भिन्न करके मैं बीच में ही किसी दिन भाग जाऊं। मालती, समय रहते हुए ही मुझे बांध लो।'

मालती ने ध्यानपूर्वक सारी बातें सुनीं। बहुत दिनों के बाद फिर स्थिर होकर उसने एक बार विचार किया। बाद में दृढ़ कंठ से वह बोली, 'मैंने तो बांध लिया है। तुममें दम हो तो तोड़ डालो, इस बंधन को। जिस बंधन में मैंने तुम्हें बांधा है, उसके अतिरिक्त और किसी प्रकार के बंधन की जरूरत नहीं है।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तुम्हारी निगाह में नहीं है, लेकिन मेरी निगाह में तो है।'

मालती, 'होगी, लेकिन शादी नहीं हो सकती।'

सुरेन्द्रनाथ, 'क्यों? क्या विधवा के साथ नहीं करनी चाहिए?'

मालती, 'विधवा के साथ तो शादी करनी चाहिए, लेकिन वेश्या के साथ नहीं।'

एकाएक सुरेन्द्रनाथ की सारी देह कांप उठी। वे बोले, 'तो क्या तुम वेश्या ही हो?'

मालती, 'और क्या हूं? जरा खुद ही तो सोचकर देखो।'

सुरेन्द्रनाथ, 'छिः! छिः! ऐसी बात मुंह पर आने न दो। मैं तुमसे कितना प्यार करता हूं।'

मालती, 'इसीलिए तो मुझे यह कहना पड़ा है। वरना शायद मैं शादी करने पर तैयार भी हो जाती।'

सुरेन्द्रनाथ, 'मालती!'

मालती, 'क्या?'

सुरेन्द्रनाथ, 'क्या तुम सारी बातें साफ-साफ बतलाओगी?'

मालती, 'बतलाऊंगी? तुम्हें छोड़कर पहले कोई मेरे शरीर को छू तक नहीं सका है, लेकिन एक आदमी को अपना शरीर और हृदय, सभी कुछ मन-ही-मन अर्पण कर चुकी थी।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो फिर?'

मालती, 'उससे मैंने बहुत आग्रहपूर्वक कहा था कि तुम मेरे साथ शादी कर लो।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तब?'

मालती, 'जाति जाने के भय से उसने शादी नहीं की।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो तुम अपना हृदय और प्राण किस तरह वापस लेने में समर्थ हुई हो?'

मालती, 'जिस तरह उसने वापस कर दिया था।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तुमसे ऐसा करते बना है?'

कुछ देर तक चुप रहने के बाद मालती ने कहा, 'पहले ही कह चुकी हूं कि मैं वेश्या हूं। वेश्याएं सबकुछ कर सकती हैं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'ओह! कौन था वह आदमी। क्या वह सदानंद था?'

मालती, 'नहीं, वह एक दूसरा ही आदमी था?'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो इसका अर्थ यह है कि तुम आदमी पहचानना नहीं जानतीं। सदानंद से क्यों नहीं कहा तुमने, वह तो तुमसे प्रेम करता है।'

एकाएक मालती के सारे शरीर में बिजली दौड़ गई। वह पागल-सा भोला-भाला मुख! मालती के स्मृति-पट पर उदित हो आया। वह दिन जबकि एकाएक वर्षा होने लगी थी। वह दिन जबकि वह घाट से पानी भरकर आ रही थी, रास्ते में एकाएक पानी बरसने लगा और इस आशंका से कि कहीं भीगने पर बुखार न हो जाए, उसने सदानंद के घर में आश्रय ग्रहण कर लिया था। उसे वह दिन

याद हो आया, जबकि उसने पहले-पहल सदानंद से आर्थिक सहायता प्राप्त की थी। बाद को किस तरह सदानंद प्रतिदिन उसके हाथ पर कुछ-न-कुछ रुपया-पैसा रख दिया करता था। काशी-यात्रा के समय किस तरह वह तकिए के नीचे रुपयों की एक राशि छोड़ गया था, दुख के समय वह किस प्रकार की आर्थिक सहानुभूति प्रकट किया करता था। निमेषपात्र में ही कितनी बार नेत्र आंसुओं से भर उठे, लेकिन कहने से पहले ही मालती ने अपनी दोनों ही आंखें पोंछ डालीं।'

सुरेन्द्रनाथ यह देख नहीं सके। कोच की बांह पर टेक लगाए हुए, वे दोनों आंखें बंद किए कोई और बात सोच रहे थे। बोले, 'तब फिर?'

मालती, 'मैं कलकत्ता जा रही थी।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तब फिर?'

मालती, 'दया करके आपने अपने चरणों में जगह दे दी।'

ऊपर जिन प्रश्नों का उल्लेख हुआ है, उन्हें अन्यमनस्क भाव से ही सुरेन्द्रनाथ ने अपने मुख से निकाला था। वे उठकर बैठ गए और बोले, 'मालती, तुम रत्न हो। रत्न अगर अपवित्र जगह में भी पड़ा हुआ मिल जाए तो उसे गले में पहनना होता है।'

मालती, 'यह किसने कहा? जो रत्न एक आदमी गले में धारण करता है, उसी को दूसरा पैरों तक में बांधने में घृणा का अनुभव करता है। तुम मुझे अपने चरणों में जगह दो। अगर मैं रत्न हूं तो इसमें भी मैं अपना सौभाग्य ही मानूंगी।'

सुरेन्द्रनाथ थोड़ा-सा हंसे। वे बोले, 'मालती, मैं समझता था कि तुम नासमझ हो, लेकिन ऐसी बात नहीं है।'

मालती भी थोड़ा-सा मुस्कराई। आज इतने दिनों के बाद किसी प्रकार उसके अधर-प्रदेश में हंसी की रेखा दिखाई पड़ी।

ठीक उसी समय बाहर से आकर दासी ने कहा, 'बाबू साहब, अघोर बाबू की जोड़ी बाहर खड़ी है।'

सुरेन्द्रनाथ विस्मित हो उठे, 'अघोर बाबू की जोड़ी? लेकिन वे बगीचे वाले मकान में क्यों आए हैं?'

'उन्होंने कहला भेजा है कि बहुत आवश्यक काम है।' सुरेन्द्रनाथ उतावली के साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा, 'मालती, तो अब मैं चलता हूं।'

'अच्छी बात है। ये अघोर बाबू कौन हैं?'

'बाद में बतलाऊंगा।'

'अघोर बाबू से पूछना कि उन्होंने शादी कहां की है?'

सुरेन्द्रनाथ ने हंसकर कहा, 'क्या तुमसे उनका परिचय है?'

'शायद कुछ-कुछ है।'

जन्म लेने पर मृत्यु का सामना करना ही पड़ता है। जो पत्थर आकाश की तरफ फेंका जाता है, वह जमीन पर गिरे बिना रह नहीं सकता। हत्या का अपराध करने पर मनुष्य को फांसी के तख्ते पर चढ़ना पड़ता है और चोरी करने पर जेल में जाना पड़ता है। ठीक इसी तरह प्रेम करने पर रोना भी पड़ता है। संसार में जितने नियम प्रचलित हैं, उनमें एक यह भी है, परंतु इस नियम को किसने प्रचलित किया, यह मालूम नहीं है।

संभव है कि प्रेमी के नेत्रों में ईश्वर की प्रेरणा से स्वतः प्रवृत्त होकर पानी आ जाता हो। यह भी संभव है कि उसे रोने का शौक लगता हो, इसलिए आंसू बहने लगते हों या उसके सामने कोई मुसीबत का विषय उपस्थित होकर उसे रोने के लिए बाध्य कर देता हो। यह भी संभव है कि आंसू बहा-बहाकर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित करने की प्रथा चिरकाल से चली आती हो और उसी कारण बाध्य होकर लोग आंसू बहाया करते हों, परंतु इन सबमें से कौन-सा कारण ठीक है, यह तो विशेष रूप से वे ही लोग बतला सकते हैं जिन्होंने प्रेम किया है और बाद में रोए हैं।

मुझ अधर्मी को प्रेम का रस कभी मिला नहीं, अन्यथा इच्छा थी कि प्रेम करके खूब जी भरकर रो लेते और इस बात की परीक्षा करते कि प्रेम के क्रंदन में माधुर्य है या कटुता। प्रेम में पड़ने का साहस मैं जो नहीं कर सका, उसका एक कारण और है। इसके संबंध में बहुत-सी अत्यंत ही चिंताजनक बातें सुनने में आईं हैं। मैंने सुना है कि प्रेम के कारण कभी-कभी बहुत-सी हृदय-विदारक घटनाएं हो जाया करती हैं। यह सुनने से मेरा शरीर कांप उठा। मैं तो कूदकर सौ हाथ पीछे चला गया। मन में आया कि इस युद्ध-विग्रह के बीच में एकाएक मैं अपने-आपको न पड़ने दूंगा। भाग्य अच्छा नहीं है। कोई आश्चर्य नहीं कि मैं जाऊं तो परीक्षा करने के लिए और लौटना पड़े फटा हुआ हृदय लेकर। यह सोचकर इस प्रकार का साहस करने से मैंने त्यागपत्र दे दिया, परंतु मन में मेरे कौतूहल है, जहां कोई प्रेम करके रोता है, आंखें बचा-बचाकर देखता रहा हूं। उसके भावी संकट की आशंका से मेरा मुख आभाहीन हो जाता है। उस पर भय और चिंता की रेखा उदित हो आती है। मैं उद्विग्न भाव से देखता रहता हूं कि अब उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े होना ही चाहता है, परंतु अंत में जब आंखें पोंछकर उठ बैठता है और देखने में पूर्ण रूप से स्वस्थ और सबल मालूम होता है, तब मैं हतोत्साहित होकर लौट आता हूं।

मुझे इस बात की इच्छा नहीं होती कि उस व्यक्ति का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाए और मैं देखकर अपने नेत्रों को तृप्त करूं, परंतु उसे भाग्य रूप में देखने की आकांक्षा भी इस जले हुए मन से निकालकर एकदम फेंक नहीं पाता हूं। इसी

इच्छा से प्रेरित होकर आज भी मालती के यहां आया हूं। जो कुछ मैंने देखा है, वह तो बाद में बतलाऊंगा, परंतु जो सीखा है, वह यह है कि मनुष्य प्रेम करके ईश्वर का समीपवर्ती मालती के समान हो उठता है। प्रेम के ये आंसू धरती पर नहीं गिरते, अपितु भगवान के चरणों के समीप पहुंचकर कमल के समान खिल उठते हैं। इस प्रेम के ही कारण मनुष्य अपने-आपको भूल जाता है। वह योग्य या अयोग्य का विचार न करके दूसरे के चरणों में आत्म-बलिदान करता है। इस प्रकार से आत्म-त्याग के द्वारा अज्ञात रूप से भगवान की ही आराधना की जाती है, केवल उन्हीं की साधना की जाती है और साधना के कारण मनुष्य जीवन-मुक्त हो जाता है। प्रेम-विह्वल व्यक्ति को संभव है कि लोग पागल कहें, शायद मैंने भी इसी तरह की बात कितनी बार कही है, किंतु उस समय यह ग्रहण नहीं कर सका कि इस तरह के पागल संसार में बहुधा मिला नहीं करते, इस तरह का पागल बन सकने पर भी इस तुच्छ जीवन का बहुत कुछ कार्य संपादित हो जाता है।

सुरेन्द्रनाथ के चले जाने पर मालती भूमि पर लेट गई। वह कितना रोई, यह न बतलाऊंगा। शायद वह सोच रही थी कि उस बाल्यकाल के प्रेम और आज के इस प्रेम में कितना अंतर है। मालती ने अपनी इच्छाओं का परित्याग करके प्रेम किया था। उस प्रेम में अपरिमित कृतज्ञता का भी सम्मिश्रण था। वह सोच रही थी—भाड़ में जाए आत्म-सुख की इच्छा। वह अनुभव करने लगी कि उनके लिए मैं हंसते-हंसते प्राण तक दे सकती हूं।

मालती बोली, 'तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। तुम्हारे बालों की एक लट के लिए मैं प्राण-त्याग कर सकती हूं। क्या तुम मेरे कारण कलंकित होओगे? केवल मेरे कारण लोग तुम्हें दस तरह की बातें कहेंगे और तुम सुनोगे? मैं अज्ञात कुलशीला हूं, कोई मुझे जानता नहीं, कोई मुझे पहचानता नहीं। मेरे लिए कोई लज्जा की बात नहीं है, लेकिन तुम महान हो। तुम्हारे कलंक-तुम्हारी लज्जा की बात सारे संसार में फैल जाएगी। लोग कहेंगे कि तुमने वेश्या के साथ विवाह किया है। समाज में तुम नीची निगाह से देखे जाओगे। इससे तुम्हारे हृदय में वेदना हुए बिना न रहेगी। मैं ऐसा न होने दूंगी।' सिर हिलाकर मालती ने कहा, 'नहीं, यह न होने पाएगा, ऐसा मैं कभी न होने दूंगी। मैं यह विवाह नहीं होने दूंगी।'

स्थिर होने पर मालती उठकर बैठ गई। आंसू पोंछकर हाथ जोड़कर बोली, 'भगवान, तुम जानते हो कि इस जीवन में मैंने कितने पाप किए हैं, कितना अपराध किया है। किंतु वह दिन भूलता नहीं। संसार में मेरे लिए और स्थान नहीं है, परंतु जब कभी वह दिन आए, अगर किसी दिन स्वामी का स्नेह खोना पड़े, तो उस दिन मुझे ले लेना, पतिता होने पर भी चरणों में स्थान दे देना।'

उस दिन मालती सारी रात वहीं पड़ी रही। सवेरा हुआ, दोपहर हुई, सांझ हुई, किंतु सुरेन्द्रनाथ लौटे नहीं। दिन-भर वह उत्सुकताभरी दृष्टि से रास्ते की ओर ताकती रही। अंत में सुरेन्द्रनाथ आए। उस समय रात बहुत अधिक बीत चुकी थी। उनके मुख पर उस समय सदा की अपेक्षा कहीं अधिक मलिनता थी, कहीं-कहीं अधिक रूखापन था। यह देखकर मालती को कुछ संदेह हुआ, परंतु कमरे में पैर रखते ही मुस्कराते हुए बोले, 'मालती, शायद तू दिन-भर रास्ता ही ताकती रही है?'

मालती का मुख लाल हो उठा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

'क्यां करूं मैं, बताओ? एक दिन भी तो ऐसा नहीं बीतता जब कोई-न-कोई मुकदमा न हो। जिसके पास जितना धन-वैभव होता है, उतना ही उसे दुख भी मिलता है।'

मालती ने कहा, 'मुकदमे क्यों लड़ा करते हो?'

सुरेन्द्रनाथ हंस पड़े। वे बोले, 'क्यों लड़ता हूं, यह बाद में समझ सकोगी। पहले तुम मेरी हो जाओ, हर एक वस्तु को अपनी समझना सीख लो, तब तुम्हारी समझ में आएगा कि मैं मुकदमा क्यों लड़ता हूं?'

मालती मौन होकर कितनी ही बातों पर विचार करने लगी।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'मालती, क्या तुमने उस विषय विचार किया है?'

मालती, 'किस बात पर?'

सुरेन्द्रनाथ, 'किस बार पर? कल की बात आज ही भूल गई?'

मालती, 'नहीं, कल की बात मैं भूली नहीं। वह याद है मुझे।'

सुरेन्द्रनाथ, 'याद तो होगी ही, लेकिन क्या तुमने उस पर कुछ विचार भी किया है?'

मालती, 'हां, विचार किया। तुम्हारे साथ मेरा विवाह किसी भी हालत में नहीं हो सकता।'

सुरेन्द्रनाथ, 'हो नहीं सकता? यह कैसी बात कह रही हो तुम?'

मालती, 'इसका कारण तो मैं पहले ही बता चुकी हूं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तुम बता चुकी हो मेरा सिर। विवाह मैं करके ही रहूंगा।'

मालती, 'मैं होने नहीं दूंगी। एक मास से अधिक हुआ मुझे यहां आए। अगर तुम्हारी इतनी अधिक इच्छा थी तो पहले ही क्यों नहीं कर लिया? अब तो सभी लोगों ने मालूम कर लिया है कि जयावती की मृत्यु हो जाने पर उसकी जगह पर एक दूसरी वेश्या कलकत्ते से ले आए हो।'

सुरेन्द्रनाथ कुछ असमंजस में पड़ गए। उन्होंने कहा, 'मैं भी यही सोच रहा था, परंतु यह कोई बात नहीं है। मैं...।'

मालती, 'उस हालत में मैं जहर खा लूंगी।'

सुरेन्द्रनाथ ने जरा-सा हंसकर कहा, 'यह तो बाद में सोचने की बात है। अभी मैं अधिक-से-अधिक सात दिन के अंदर सारा प्रबंध किंए लेता हूं।'

मालती, 'तो सात दिन के भीतर ही तुम मुझे न देख पाओगे।'

सुरेन्द्रनाथ विस्मित भाव से कुछ क्षण तक मालती के मुंह की तरफ देखते रह गए। बाद में उन्होंने कहा, 'कहां जाओगी?'

मालती, 'जहां मेरी इच्छा होगी।'

सुरेन्द्रनाथ, 'आत्महत्या करोगी?'

मालती, 'आत्महत्या मैं न करूंगी, क्योंकि यह कार्य मेरे किए न हो सकेगा, परंतु जिस रास्ते से मैं आई थी, उसी रास्ते से फिर चली जाऊंगी।'

'तो भी बंधन में न पड़ोगी?'

'नहीं।'

इस प्रकार का दृढ़ स्वर सुनकर सुरेन्द्रनाथ ने यह बात भली-भांति समझ ली कि मालती झूठ नहीं कह रही है। कुछ देर तक तो सोचते रहे, बाद में जरा-सा हंसकर बोले, 'तुम क्या करोगी? यह तुम लोगों का अपना धर्म है। अच्छी बात है, यही सही।'

सुरेन्द्रनाथ की इस बात के उत्तर में मालती बोली नहीं। मुंह खोले बिना ही वह तिरस्कार सहकर रह गई। कुछ देर तक किसी के मुंह से कोई बात नहीं निकली। बाद में सुरेन्द्रनाथ बोले, 'घर में रुपये तुमने भेज दिए हैं न?'

मालती उस समय रो रही थी। सिर हिलाकर उसने सूचित किया, 'नहीं, रुपये नहीं भेजे गए।'

सुरेन्द्रनाथ, 'भेजे क्यों नहीं गए?'

मालती चुप ही रही। अब सुरेन्द्रनाथ ने समझ लिया कि वह रो रही है। उन्होंने कहा, 'क्यों? क्या हाथ में रुपये नहीं थे?'

मालती, 'नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'कुछ भी नहीं था?'

मालती, 'नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तुम्हें यहां आए इतने दिन हो गए, अपने पास में कुछ जुटा नहीं सकी हो?'

मालती रोने लगी, वह कुछ बोली नहीं। सुरेन्द्रनाथ ने यह प्रश्न उससे बेकार किया था। उन्हें स्वयं यह अच्छी तरह मालूम था कि उसके पास कुछ नहीं है। जरा देर के बाद वे हाथ पकड़कर उसे अपने पास ले आए, तब उसे बगल में बैठाकर स्नेह-भरे स्वर में वे बोले, 'इस तरह शोक के मारे तुम सूरत बनाए रहोगी

तो भला मैं क्या करूंगा? एक कपड़ा न पहनोगी, शरीर पर एक अलंकार न धारण करोगी, तुम्हें किस वस्तु की जरूरत है, कौन-सी चीज तुम पसंद करती हो, ये सब बातें मुंह खोलकर कभी बतलाओगी नहीं तो मैं करूंगा क्या?' इतना कहकर सुरेन्द्रनाथ ने जेब से नोटों का एक बंडल निकाला और मालती के हाथ पर उसे रखकर कहा, 'इसे तुम रख लो। इसमें से जितना चाहो, उतना घर भेज दो, बाकी अपने पास रखे रहो। इच्छानुसार तुम इसे खर्च करना, बीच-बीच में मुझसे और भी मांग लिया करना।' आखिर में जरा हंसकर वे बोले, 'अब रुपये जोड़ना भी सीखो।'

मालती मौन होकर सुनती रही।

सुरेन्द्रनाथ, 'भूलना नहीं, आज ही रुपये भेज देना।'

मालती, 'किस तरह भेजूं?'

सुरेन्द्रनाथ, 'रजिस्ट्री करके।'

मालती, 'मुझसे यह न होगा। तुम और किसी के नाम से भिजवा देना।'

सुरेन्द्रनाथ, 'क्यों, क्या इस बात से डरती हो कि कहीं पकड़ी न जाओ?'

मालती, 'हां।'

सुरेन्द्रनाथ, 'अच्छी बात है। मैं अपने वकील अघोर बाबू से कह देता हूं। वे कलकत्ता में रहते हैं, वहीं से भेज देंगे।'

मालती, 'यह ठीक है, लेकिन अगर कोई उनके पास पता लगाने के आए तो वे क्या कहेंगे?'

सुरेन्द्रनाथ, 'जो मुनासिब समझेंगे, वही जवाब दे देंगे।'

मालती, 'नहीं! उन्हें रोक देना कि वे किसी भी हालत में तुम्हारा नाम प्रकट न करें।'

सुरेन्द्रनाथ, 'अच्छा, ऐसा ही होगा।'

जयावती तो मर गई, किंतु उसकी मां जिंदा थी। नारायणपुर से उत्तर की तरफ कुछ दूरी पर वासपुर नामक एक गांव में उसका घर था। वहीं जयावती और उसकी मां रहा करती थीं। उन मां-बेटी के भोजन-वस्त्र की व्यवस्था किस उद्यम से हो जाया करती थी, यह तो वे ही जानती थीं और जानते थे, वासपुर के दो-चार कुत्सित आचरण के लोग, परंतु यह जानने से हम लोगों को कोई लाभ नहीं है। जानने की उतनी इच्छा भी नहीं है। हटाओ यह बात। जयावती उसी प्रकार वासपुर में कुछ दिनों तक अपना निर्वाह करती रही। आखिर में पता नहीं किस तरकीब से जयावती ने नारायणपुर के जमींदार साहब की स्वयं अपने रहने की कोठी के एक कोने में स्थान प्राप्त कर लिया। जब उसे स्थान मिल गया, तब

उसकी मां भी आ गई। तब मां-बेटी ने मिलकर अपनी गृहस्थी बांध ली, परंतु जयावती की मां के भाग्य अच्छे नहीं थे, इससे पांच महीने भी न बीत पाए कि मां-बेटी में कलह आरंभ हो गया। कुछ दिनों के बाद यह स्थिति आ गई कि वे दोनों समय बाकायदा चिल्ला-चिल्लाकर परस्पर एक-दूसरे की अमल-कामना तथा शीघ्र ही इस संसार के बंधन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए विशेष प्रार्थना किए बिना पानी तक नहीं पिया करती थीं। इसी तरह दिन बीतते ही गए। परस्पर लड़ते-झगड़ते छह महीने उन दोनों ने और बिता दिए। अंत में जयावती की मां को राजभवन में निवास करने की लालसा का परित्याग करना पड़ा। अपना जो पुराना घर छोड़कर वह आई थी, उसी में जाकर उसने फिर डेरा डाला। वहां से जाने के लिए संभवतः उसे नितांत ही बाध्य किया गया था। बात यह है कि जिस समय वह राजप्रासाद से निकल अपने निवास-स्थान की तरफ चली थी, उस समय बहुत ही कठोर होकर छाती पीट रही थी। साथ ही जयावती भी काफी जोर-जोर से उसकी अकल्याण-कामना प्रकट कर रही थी। यह देखकर किसी के भी हृदय में यह धारणा नहीं उत्पन्न हो सकती थी कि इसने स्वेच्छा से अपने घर की राह ली है। जमींदार सुरेन्द्रनाथ ने सब नौकरों से कह दिया था कि यह स्त्री अब किसी तरह भी फाटक के भीतर पैर न रखने पाए, लेकिन उनकी इस आज्ञा का कोई फल न हुआ। जयावती की मां का आना-जाना बराबर लगा ही रहा। वह स्त्री प्रायः आया करती और भीतर तक पहुंच जाती, किंतु आना उसका हुआ करता बेकार ही। आकर वह तरह-तरह की गालियां बकती, जयावती को शाप देती, बाद में वह भी गालियां सुनती तथा उसके द्वारा अभिशप्त होने पर क्रोध में आकर जोर-जोर से छाती पीटती, सिर के बाल नोचती और आखिर में जमींदार के किसी नौकर से झाड़ प्राप्त करके उसे वासपुर को लौट जाना पड़ता, परंतु हर एक महीने या दो महीने के बाद ऐसा अवश्य होता। संभव है कि ऐसा करके भीतर-ही-भीतर वह कुछ लाभ भी उठा लिया करती थी, अन्यथा केवल गालियां सुनने तथा गला पकड़कर निकाली जाने के लिए इतना परिश्रम करके वह इतनी दूर तक आती नहीं। वह जैसे चरित्र की स्त्री थी, उसके कारण तो वह सब कहीं कम क्लेश सहन करके उपार्जित कर सकती थी।

जाने दो यह बात! इसका यह भी एक कारण हो सकता है कि कन्या-रत्न से अत्यधिक प्यार किया करती थी। इस कारण विपथगामिनी होने पर भी वह माया का बंधन तोड़ नहीं पाती थी, बेटी को देखने के लिए आ ही जाया करती थी। समय बराबर बीतता रहा। अंत में एक दिन जयावती की मां के कानों तक संवाद पहुंचा कि जयावती ने गंगा में समाधि लेकर अपनी इहलौकिक लीला का संवरण कर लिया है। इस संवाद का पहुंचना था कि अपने ऊंचे गले के क्रंदन

से उसने पास-पड़ोस में रहने वाले आधे आदमियों को तो दरवाजे के सामने इकट्ठा कर ही लिया।

वासपुर में अधिकतर नीच जाति के लोग रहते हैं, इसलिए किसानों के घर की वृद्धाओं, प्रौढ़ाओं, युवतियों से जया की मां का आंगन भर गया। सभी लोग विस्फारित नेत्रों से चुपचाप इस कहानी को सुनते रहे कि गांव-जितना बड़ा जहाज पांच सौ दास-दासियों सहित कलकत्ता में जलमग्न हो गया।

जया की मां ने कहा, 'जिन लोगों ने देखा है, उनका कहना है कि उतना बड़ा जहाज कलकत्ते में नहीं है।'

एक वृद्धा ने कहा, 'सो ठीक है, नहीं है।'

एक प्रौढ़ा ने पूछा, 'कितनी कीमत का था?'

'अरे बेटी, दाम का कोई हिसाब-किताब है?'

वह चुप हो गई।

जया की मां ने कहा, 'लाट साहब स्वयं आकर देख गए थे।'

युवतियों के कान खड़े हो गए।

'लाट साहब तक रोते रहे, क्योंकि मेरी बेटी को सभी चाहते थे।'

जया की मां की आंखें भर आईं। लोगों का विचार था कि पूर्वजन्म के पुण्य कर्मों की वजह से ही जयावती जैसी संतान का जन्म होता है।

इसी तरह की बातचीत में शाम हो गई। जो लोग सहानुभूति दिखाने नहीं आए थे, उन्हें सुनाने के लिए रात को वह चीख-चीखकर जहाज तथा जयावती की कहानी कहती रही।

दूसरे दिन रात्रि का अंधकार दूर होते ही जया की मां ने नारायणपुर की राह ली। धीरे-धीरे वह नारायणपुर पहुंच गई। वही सड़क थी, वे ही गलियां थीं, वे ही पेड़ों की कतारें थीं। सारी वस्तुएं उससे परिचित थीं। जया की मां के मन में यह बात आई कि इसी रास्ते से होकर मैं जाया करती थी और बाद में इसी से होकर छाती पीटते-पीटते लौट आया करती थी। जिससे मेरा झगड़ा हुआ करता था, वह अब इस संसार में नहीं रही। इससे वैसा झगड़ा अब कभी न हो सकेगा। उस तरह छाती भी अब नहीं पीट पाऊंगी। ये सब बातें सोचते-सोचते जयावती की मां के मन में अत्यधिक वेदना बढ़ गई। उस कारण वह दुखी होकर हजार गुना अधिक चिल्लाहट से उसे शांत करती हुई चली जा रही थी। जिसके दरवाजे से होकर वह निकलती, उसे सैकड़ों काम छोड़कर भी कम-से-कम एक बार खिड़की के पास आना ही पड़ता।

इस तरह चलते-चलते वह सुरेन्द्र बाबू के महल के सामने पहुंच गई। जया की कितनी स्मृतियां उससे जड़ित थीं। जया की मां ने अब अपने रुदन के वेग

में और भी कई गुना अधिक वृद्धि कर ली थी। पहले सदर फाटक से वह पहले कभी घुसने नहीं पाती थी। बात यह थी कि बाबू साहब ने इसके लिए मनाही कर दी थी, परंतु आज यह इस तरह शेरनी की तरह दौड़ती हुई घुस आई कि चौकीदारों में से किसी को भी रोकने की हिम्मत न हो सकी। वे सभी दस हाथ पीछे हट गए।

उस समय सुरेन्द्र बाबू भोजन से निवृत्त होकर विश्राम करने का प्रयत्न कर रहे थे। कानों में चिल्लाहट पहुंचते ही सुरेन्द्रनाथ ने समझ लिया कि जया की मां तूफान के समान ऊपर चढ़ आई है। उनके पास पहुंचते ही वह झटपट प्रार्थना कर बैठी कि मेरी जयावती को तुम मुझे वापस कर दो। उसके बाद उसने सैकड़ों प्रकार की प्रार्थनाएं कीं, सैकड़ों प्रकार की इच्छाएं प्रकट कीं, सैकड़ों प्रकार के उलाहने दिए और सैकड़ों प्रकार के जवाब-तलब किए। इस प्रकार तरह-तरह से उसने सुरेन्द्रनाथ को परेशान कर डाला। कभी वह माथा पीटती, कभी छाती पीटती और कभी सिर के बाल उखाड़ती। इस प्रकार उसने और भी कैसे-कैसे कृत्य किए, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करने की क्षमता मुझमें नहीं है।

अंत में जया की मां ने यही कहकर इस संघर्ष का क्रिया-कलाप समाप्त किया कि मेरे पास एक पैसा भी नहीं है, जिसके द्वारा मैं अपनी जीविका चला सकूं। अगर आप कृपा न करेंगे तो मुझे भूखों मरना पड़ेगा। उस अवस्था में संभव है कि यहीं पर गले में फांसी लगाकर मैं उसी धाम में चली जाऊं, जहां जयावती चली गई है।

सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'जो होना था, वह तो हो गया। अब यह बतलाओ कि किस प्रकार की व्यवस्था से तुम्हारा निर्वाह हो सकेगा?'

आंखें पोंछकर जया की मां बोली, 'बेटा, थोड़े में ही मेरा निर्वाह हो जाएगा। मैं विधवा हूं। मेरा कोई है नहीं। खर्च ही क्या है मेरा?'

सुरेन्द्रनाथ, 'फिर भी कितने रुपये चाहती हो तुम?'

जया की मां, 'हर महीने पंद्रह रुपये मिलते रहने पर मेरा निर्वाह हो जाएगा।'

सुरेन्द्रनाथ, 'इतने रुपये मिलते रहेंगे तुम्हें। जब तक तुम जीवित रहो, हर महीने आकर कचहरी से ये रुपये ले जाया करो।'

तब जया की मां ने बहुत-बहुत आशीर्वाद दिए, बहुत-सी संतोषप्रद बातें कहीं और वहां से उसने प्रस्थान किया।

सुरेन्द्रनाथ से विदा लेकर जया की मां सीधे घर की ओर चली। जाते समय वह पहले की तरह रोती हुई नहीं गई, बल्कि तरह-तरह की बातें सोचती गई। जयावती के मरने का क्लेश मन में था ही, पर जाते-जाते कुछ सुविधा दे गई।

जया की मां सुरेन्द्र बाबू से विदा लेकर सीधे घर न जाकर वह दास-दासियों

के कमरे की ओर चली आई। यहां के कुछ लोग परिचित थे। वे जया के मरने का दुख प्रकट करने लगे। बातचीत में उसने सुरेन्द्र बाबू की कृपा का भी उल्लेख किया और जब उसे यह मालूम हुआ कि जयावती की जगह एक और लड़की यहां आई है, जो बगीचे वाले मकान में रहती है।

जयावती के स्थान पर अधिकार करने वाली युवती का हाल सुनकर वृद्धा के मन में एक बारगी जो उत्तेजना का भाव उत्पन्न हुआ, उससे उसे इस बात का ध्यान न रहा कि मैं कैसे स्थान पर हूं और मैं जिस प्रकार का आचरण करने जा रही हूं, उसके लिए यह उपयुक्त है या नहीं। उस वक्त वह युवती को तरह-तरह की गालियां देने लगी, साथ ही उसे जी भरकर कोसने लगी। उसके क्रंदन की ध्वनि भी क्रमशः बढ़ने लगी। अपने अदम्य उत्साह में नवीनता लाकर वह फिर माथा पीटने लगी, सिर के बाल उखाड़ने लगी और छाती को खूब ज़ोर से पीटने लगी। अब सभी नौकरों और नौकरानियों के शरीर थर-थर कांपने लगे। भय से व्याकुल होकर उन सबने उसे बहुत समझाया। इस बात की भी धमकी दी कि बाबू साहब यदि नाराज हो जाएंगे तो तुम्हें जो वृत्ति देने को कहा है वे न देंगे, परंतु जया की मां ने बड़ी देर तक इन सब बातों की ओर ध्यान तक नहीं दिया। अंत में बाध्य होकर उन सबने एक दूसरा उपाय सोच निकाला, जिसके द्वारा उन्हें जया की मां से बड़ी कठिनाई से छुटकारा मिला।

मार्ग में आकर जया की मां बगीचे वाले मकान की ओर रवाना हुई। उसका कन्या-वियोग का शोक चौगुना उमड़ आया था। उसके मन में यह बात आने लगी कि इस दुष्टा ने मेरी पुत्री को डुबोकर बलपूर्वक उसके स्थान पर अधिकार कर लिया है। गरजते-गरजते उसने उस बगीचे वाले मकान में प्रवेश किया। जो दासी दृष्टि के सम्मुख पड़ी, उसकी तरफ आंखें लाल-लाल करके ताकती हुई वह बोली, 'कहां है वह डाइन?'

बेचारी दासी अभी नई-नई आई थी वहां। डर के मारे पीछे हटकर वह बोली, 'वहां!'

जया की मां ने जैसा प्रश्न किया था, वैसा ही उत्तर भी उसे मिला। दासी जिस प्रकार प्रश्न का आशय नहीं समझ पाई थी, उसी प्रकार जया की मां उत्तर का भी आशय नहीं समझ पाई। दासी की तरफ पहले की ही तरह एक बार और देखकर वह बोली, 'कहां है?'

दासी ने उंगली हिलाकर एक बार इच्छानुसार किसी दिशा की ओर संकेत कर दिया और वहां से वह सरक गई। इधर जया की मां सीढ़ी से ऊपर चढ़ गई। वहां घूम-घूमकर एक-एक कमरा देखने लगी। किसी से भी उसकी भेंट नहीं हुई, परंतु कमरों की सजावट तथा उनमें रखी हुई बहुमूल्य सामग्रियों को देखकर

वह चकित हो गई। उसने मन-ही-मन कहा, 'अहा, कैसी अनुपम शोभा है यहां की! कितनी उत्तम-उत्तम वस्तुएं रखी हुई हैं यहां पर! पहले भी तो मैं सुरेन्द्र बाबू के यहां आई हूं और काफी समय तक रह भी चुकी हूं, परंतु इस प्रकार की सजावट, इस तरह का ठाठ-बाट तो कभी नहीं देखने में आया। जितना ही वह देखती, उतना ही वह क्रुद्ध नागिन की तरह फुफकारने लगती। उसके मन में यह बात आने लगी कि ये सभी वस्तुएं जयावती की होतीं या कौन जाने किसी समय स्वयं मेरी ही होतीं। इस प्रकार का तर्क-वितर्क करते-करते एक स्त्री दिखाई पड़ी।

जया की मां ने उस स्त्री को पीछे से देखा और उसके संबंध में अपने मन में यह धारणा बनाई कि यह कोई परिचारिका है। उसे पुकारकर उसने कहा, 'क्यों जी, तुम्हारी मालकिन कहां है?'

अस्वाभाविक कठोर वचन सुनकर उस स्त्री ने घूमकर देखा। जया की मां ने देखा कि वह बहुत साधारण वस्त्र पहने हुए है। शरीर पर उसके नाममात्र को भी आभूषण नहीं है, लेकिन मुख देखकर वह ठमककर खड़ी हो गई। कर्कश कंठ स्वर नरम हो गया। बोली, 'तुम कौन हो जी?'

'मैं यहीं रहती हूं। आप बैठिए।'

जया की मां, 'कितने दिनों से तुम आई हो यहां?'

स्त्री, 'एक महीने से कुछ अधिक हुआ।'

जया की मां, 'तुम्हारी मालकिन कहां है? शायद तुम उन्हीं के साथ आई हो?'

स्त्री ने सिर हिलाकर कहा, 'उनसे तुम्हें कुछ काम है क्या?'

जया की मां, 'काम मुझे बहुत अधिक है। आज मैं उस हरामजादी डाइन का सिर चबाकर खाए बिना न रहूंगी।'

यह बात कहते-कहते फिर उसका पहले का-सा भाव हो गया। वह रूखी-रूखी मुख की कांति, नेत्रों में वही अमानुषिक भाव, वह ठीक पहले जैसी ही हो गई। बहुत ही कर्कश स्वर में वह बोली, 'तू जानती है, मैं कौन हूं? मैं हूं जयावती की मां। मुझे देश-भर के लोग जानते हैं। हरामजादी डाइन ने मेरी बेटी को खा लिया है। आज मैं उसे खाऊंगी।'

वह स्त्री सांस बंद किए हुए यह अलौकिक लीला देखने लगी।

'अरी हरामजादी, तुझे मैं खाऊंगी। (छाती पीटती है) अरी अभागी, सैकड़ों को ग्रास कर जाने वाली, छिनाल, डाइन (सिर के बाल उखाड़ती है) तुझे मैं खाऊंगी। खाकर रहूंगी—मां काली के चरणों के पास तेरा बलिदान करूंगी। तेरे हृदय का रक्त उनके चरणों में अर्पित करूंगी। (भूमि पर सिर पटकती है) इसी तरह, (दांत पीसती है) कहो, कहां है वह?'

जिसे लक्ष्य करके ये सब कांड किए जा रहे थे, वह सामने ही बैठी थी, लेकिन जया की मां यह जानती नहीं थी। अगर वह जान पाती तो कदाचित उस दिन कोई अनहोनी बात होकर रहती।

पास जाकर मालती ने उसका हाथ पकड़ लिया। धीरे-धीरे वह बोली, 'शांत होओ।'

'मैं शांत होऊं? तू अभागी यह बात कहने वाली कौन है? मेरी लड़की को खा लिया है उस डाइन ने और मैं शांत होकर रहूंगी?'(जया की मां फिर भूमि पर माथा पटकने लगी।)

मालती समझ गई कि कमरे में अगर इतना मोटा गलीचा न बिछा होता तो आज जया की मां समूचा माथा लेकर घर लौट न पाती। जया की मां बोली, 'आज वे यहां नहीं हैं क्या?'

मालती, 'नहीं।'

जया की मां, 'लेकिन एक पग भी मैं यहां से हटूंगी नहीं। देखूंगी हरामजादी को आज उसे खा लूंगी, तब जाऊंगी।'

मुस्कराती हुई मालती बोली, 'जाइएगा क्यों? आराम से यहीं रहिए, लेकिन देर बहुत हो गई है। खाना-पीना तो अभी तक कुछ हुआ नहीं होगा आपका?'

जया की मां, 'खाना-पीना? यह सब तभी करूंगी।'

मालती, 'अहा, पुत्री का शोक! माता के हृदय की कैसी अवस्था होती है, यह मैं जानती हूं।'

जया की मां कुछ नरम पड़ी। वह बोली, 'तुम्हीं जरा सोचकर देखो बेटी!'

मालती, 'यह क्या आप कहेंगी, तब समझूंगी मैं? लेकिन अब आप कर ही क्या सकती हैं? मुंह में जरा-सा अन्न डालना ही पड़ता है। यह पापी पेट क्या मानता है?'

जया की मां, 'यह बात तो सच है बेटी!'

मालती, 'इसी से तो कहती हूं कि यहीं कोई व्यवस्था कर दूं?'

जया की मां, 'कर देगी, बहुत अच्छा होगा बेटी।'

मालती, 'अहा! जया दीदी कितनी चर्चा किया करती थीं आपकी।'

जया की मां, 'तो शायद तू उसके साथ थी?'

मालती, 'हां, वे ही मुझे मेरे निवास-स्थान से यहां लिवा लाई थीं। मुझसे आपकी ज्यादा चर्चा किया करती थीं।'

जया की मां, 'ऐसा तो वह करती ही रही होगी।'

मालती, 'स्वभाव उनका बहुत ही अच्छा था।'

जया की मां, 'शायद चुड़ैल ने बाबू साहब को कोई वैसी दवा दे दी जिससे वे बिलकुल मुग्ध हो उठे हैं।'

मालती, 'सुनती तो मैं भी हूं।'

जया की मां, 'किंतु आज मैं उसकी यह सारी धोखेबाजी मिट्टी में मिला दूंगी।'

मालती, 'अच्छा तो है। जैसी है वह चुड़ैल, उसे वैसा ही पाठ पढ़ा देना, तब जाना।'

जया की मां, 'अच्छा, यंत्र-तंत्र भी कुछ जानती है वह चुड़ैल?'

मालती, 'सुनती तो हूं कि कामाख्या से सीखकर आई है वह।'

जया की मां, 'कब तक आएगी?'

मालती, 'दोपहर तक।'

खिड़की से ताककर जया की मां ने बाहर की तरफ देखा। उसे मालूम हुआ कि दोपहर होने में अब अधिक देर नहीं है। इससे जरा इधर-उधर करके वह बोली, 'आज तो मुझे बहुत-से काम करने हैं, इस समय जा रही हूं, कल आऊंगी।' यह कहकर जयावती की मां उठकर खड़ी हो गई।

मालती, 'नहीं, नहीं, आज यहां खा-पी लो, तब जाना।'

जया की मां, 'तो झटपट ले आ बेटी! अच्छा, नाम क्या है तेरा?'

'मेरा नाम है मालती।'

जया की मां, 'अहा! कितना मधुर नाम है।'

अब नीचे आकर जया की मां ने झटपट कुछ खा लिया। मालती भी पास ही बैठी हुई थी। वह देख रही थी कि वृद्धा निश्चिंत होकर भोजन नहीं कर रही है।

मालती, 'एक बात अभी आपको बतलाने को है। जया दीदी से मैंने दस रुपये उधार लिए थे। वे तो अब हैं नहीं। इससे आप अगर मुझे ऋण से मुक्त कर देतीं...।'

जया की मां बात अच्छी तरह समझ नहीं सकी। वह बोली, 'क्या करूं?'

मालती, 'वे दस रुपये आप ले लें।'

जया की मां, 'मुझे दोगी तुम?'

मालती, 'हां।'

दस रुपये लाकर मालती ने जया की मां के हाथ पर रख दिए।

जया की मां देर तक मालती के मुंह की ओर देखती रही। बाद में धीरे-धीरे बोली, 'बेटी, तुम निःसंदेह किसी भले घर की लड़की हो?'

धीरे-से हंसकर मालती बोली, 'हम बहुत दुखी हैं।'

जया की मां के नेत्रों की कोर में जरा-सा आंसू आ गया। वह बोली, 'हो सकता है, लेकिन यदि तुम भले घर की लड़की न होतीं तो ऐसा मधुर व्यवहार कैसे होता तुम्हारा! बात मैं बिलकुल सच कह रही हूं। मेरी जया के हाथ में इतने रुपये थे, लेकिन कभी न सोचा उसने कि ये मेरी मां है, इकट्ठे दस रुपये रख दूं इनके हाथ पर।' इतना कहकर उसने आंखों की कोर पोंछ डाली।

मालती, 'हम लोग तो दुखिया हैं, लेकिन धर्म का खयाल तो करना ही पड़ता है।'

जया की मां, 'धर्म तो निःसंदेह बहुत बड़ी वस्तु है, लेकिन कितने आदमी हैं उसकी तरफ ध्यान देने वाले?'

मालती, 'अच्छा, तो क्या तुम कल आओगी?'

जया की मां, 'हां आऊंगी।'

मालती, 'तो क्या अपनी मालकिन से तुम्हारी चर्चा कर दूं आज?'

'हां! नहीं, नहीं, अभी मेरी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं।' बहुत ही खिन्न भाव से जया की मां ने कहा, 'अब तो मैं चलती हूं, कभी-कभी तुम्हारे पास आती रहूंगी।'

मालती, 'अच्छी बात है।'

यह बातें सुनकर सुरेन्द्रनाथ हंसे और बोले, 'तो तुमसे खूब झगड़ा हो गया?'

मालती बोली, 'झगड़ा क्यों होने लगा, अपितु खूब मेल हो गया।'

सुरेन्द्रनाथ, 'लेकिन अपनी जो कन्या थी, उससे कभी नहीं बनती थी उसकी। हमेशा झगड़ा होता रहता था।'

मालती, 'यह तो मैंने सुना है।'

सुरेन्द्रनाथ, 'यह किस तरह?'

मालती, 'मानसिक वेदना के कारण उसने स्वयं कुछ-कुछ बतलाया है, परंतु उसकी वेदना का कारण क्या है, यह उसने नहीं बतलाया।'

सुरेन्द्रनाथ, 'पहले शायद घर में पैर रखते ही उसने तुम्हें खूब गालियां दी थीं।'

मालती हंसकर बोली, 'मुझसे उसने कुछ नहीं कहा, जिस डाइन को तुम कलकत्ता से ले आए हो, उसे ही उसने गालियां दी हैं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'वह डाइन तो तुम्हीं हो।'

मालती, 'मैं क्यों हूं? मैं तो कलकत्ता से आई नहीं हूं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'आई कहीं से भी हो, लेकिन हो तुम्हीं।'

मालती, 'मुझे तो पहचान भी नहीं सकी। उसने सोचा था कि यह कोई दासी होगी।'

जरा-सा दुख का भाव प्रकट करते हुए सुरेन्द्रनाथ बोले, 'इसके सिवा कोई और क्या समझ सकता है!'

मालती, 'इसी कारण आज मेरी रक्षा भी हो गई, अपितु आज वह कदाचित मुझे जीती न छोड़ती।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो क्या मार डालती?'

मालती, 'मालूम तो यही पड़ता था।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो फिर?'

मालती, 'मैंने कह दिया कि वह चुड़ैल आज यहां नहीं है। तब वह बोली, 'आने पर उसे मैं खाऊंगी।'

सुरेन्द्रनाथ हंसने लगे।

मालती फिर बोली, 'तब उसने मुझसे पूछा कि क्या उसने बाबू को कोई बूटी पिला रखी है। मैंने कहा मालूम तो होता है। अन्यथा क्या वजह है कि उसके कहने से ही उठते हैं और उसी के कहने से बैठते हैं?'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो क्या सचमुच मेरा यह हाल है?'

मालती, 'इसमें भी क्या कोई संदेह है?'

सुरेन्द्रनाथ, 'क्या फिर कभी न आएगी वह यहां?'

मालती, 'आएगी तो, किंतु अब वह तुम्हारी उस डाइन के पास न आएगी, मेरे पास आएगी।'

सुरेन्द्रनाथ, 'वह चाहे किसी के भी पास आए, किंतु तुम इस समय मेरे पास आओ।'

मालती ने उनकी आज्ञा का पालन किया। तब उसके दोनों हाथ पकड़कर सुरेन्द्र ने कहा, 'मालती, और कितने दिन इस तरह व्यतीत करने होंगे? इस तरह का हाल तो अपनी आंखों से नहीं देखा जाता।'

मुंह दबाकर हंसती हुई मालती बोली, 'आभूषण पहनने से क्या सुंदरता बढ़ जाती है?'

सुरेन्द्रनाथ, 'तुम्हारे सौंदर्य की सीमा नहीं है। जो पास है, उसे कोई बढ़ाएगा ही कैसे? किंतु कम-से-कम मेरी तृप्ति के लिए तो...।'

मालती, 'गहने पहनने होंगे?'

सुरेन्द्रनाथ, 'हां।'

मालती, 'मैं पहन सकती हूं, लेकिन पहले यह बताओ कि मुझे गहने पहनाने का तुम्हें इतना शौक क्यों है?'

सुरेन्द्रनाथ, 'अगर मैं बतला दूं वह बात तो तुम्हारे मन को दुख तो न होगा?'

मालती, 'बिलकुल नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो बतलाता हूं, सुनो। तुम्हारी यह आभामय मूर्ति बहुत ज्योतिर्मय है। तुम्हारे पास बैठा रहता हूं, किंतु एक अज्ञात भय एक क्षण के लिए भी मेरा पीछा छोड़कर नहीं हटता। इससे मुझे वैसा सुख नहीं मिलता। तुम्हें अलंकार पहनाकर तुम्हारे तेज को कुछ मंद कर लेना चाहता हूं।'

मालती ने चुपचाप अपने सारे अंगों पर निगाह दौड़ाई। कमरे में जो बड़ा-सा आईना टंगा हुआ था, उसमें उसका सारा-का-सारा शरीर प्रफुल्लित हो उठा। उसे भी देखा उसने। उसने महसूस किया—शायद यथार्थ ही मेरे शरीर का वर्ण बहुत उज्ज्वल है, बहुत ही ज्योतिर्मय है। उसके मन में आया—मानो पुण्य की अतीत स्मृति अभी तक मेरे शरीर को छोड़कर गई नहीं। पवित्रता की छाया कदाचित इस समय भी इस शरीर में जरा-सी लगी है। रात्रि में, शांतमय कमरे में, मालती के मन में जरा-सा भ्रम उत्पन्न हुआ। उसने देखा, सामने दर्पण में एक कलंकित देवीमूर्ति है और उसकी बगल में जीवन के आराध्य सुरेन्द्रनाथ की कलंकहीन देवमूर्ति है।

विस्मय और आनंद के क़ारण मालती ने आंखें मूंद लीं।

दूसरे दिन ठीक संध्या होने के बाद ही सुरेन्द्रनाथ ने नटवर मोहन के वेश में मालती के मंदिर में दर्शन किया। गले में उनके फूलों के कई एक हार पड़े हुए थे और सब एक साथ जुड़कर इस तरह जान पड़ रहे थे मानो बेला, चमेली, जूही, बकुल तथा अन्यान्य कितने ही फूलों की एक खूब मोटी-सी माला बनाई गई है। उन मालाओं के कारण उनका कंठ से वक्ष तक ढक गया था। एक हाथ में वे फूल का एक तोड़ा लिए हुए थे और दूसरे में मखमल से मढ़ा हुआ एक बढ़िया-सा बक्स। पीतांबर धारण किए हुए और पैरों में मखमली जूते पहने हुए झूमते-झूमते वे मालती के सामने आकर खड़े हुए। उनका साज-श्रृंगार देखकर मालती मुस्कराती हुई बोली, 'यह कैसा रूप धारण कर रखा है तुमने आज?'

सुरेन्द्रनाथ, 'तुम्हीं बताओ, कैसा है मेरा रूप?'

मालती, 'मैं तो नहीं बतला सकती।'

बाह्य गंभीरता प्रदर्शित करते हुए सुरेन्द्रनाथ बोले, 'पूजा करना आता है तुम्हें?'

मालती, 'हां, आता है।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो तुम्हारे घर में चंदन है! थोड़ा-सा चंदन घिस लाओ और माथे पर लगा दो। आज मेरा विवाह है।'

मालती, 'किसके साथ?'

सुरेन्द्रनाथ, 'मैं जो कुछ कह रहा हूं पहले वह करो, बाद में मालूम हो जाएगा तुम्हें।'

मालती नीचे गई। वहां से चंदन घिसकर ले आई और सुरेन्द्रनाथ के माथे पर उसने बहुत ही आकर्षक ढंग से लगा दिया। तब वह बोली, 'अब बताओ?'

सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'मालती, क्या अभी तक समझ नहीं सकी तुम यह बात?'

अब सुरेन्द्रनाथ अपने गले से एक-एक माला निकाल-निकालकर मालती को पहनाने लगा। बाद में उन्होंने वह मखमल से मढ़ा हुआ बक्स खोला। उसमें से नाना प्रकार के जड़ाऊ आभूषण निकालकर उन्होंने मालती को यथास्थान पहनाए। मालती ने वैसे अलंकार जन्म-जन्मांतर में कभी देखे नहीं थे। विस्मित होकर वह देखती रह गई। अंत में उसका मुख चुंबन करके वह बोले, 'मैंने तुम्हारे साथ विवाह कर लिया। इतने दिनों के बाद आज तुम मेरी स्त्री हुई हो। अब तुम कहीं भागकर जा न सकोगी। जो माला आज मैंने तुम्हें पहनाई है, उसे तुम जन्म-जन्मांतर में भी गले से निकाल न सकोगी।'

दोनों की ही आंखों में आंसू आ गए। दोनों के ही मुख से कुछ देर तक बात न निकल सकी। बाद में सुरेन्द्रनाथ आंसू पोंछकर बोले, 'अब घर चलो, अपनी गृहस्थी का कारोबार संभाल लो। मैं आशीर्वाद देता हूं कि जीवन में तुम सदा सुखी रहो।'

सुरेन्द्रनाथ को प्रणाम करके मालती फिर उनकी बगल में बैठ गई। उसकी आंखों में आंसू आज बहुत बढ़ गए थे। सैकड़ों बार उसने आंखें पोंछीं, लेकिन वे फिर भर आईं। उसके आंसू किसी तरह सूखते ही नहीं थे। सुरेन्द्रनाथ यह समझ गए। समझकर वे बोले, 'मालती, क्या आज माता-पिता की याद आ रही है?'

सिर हिलाकर मालती बोली, 'हां।'

सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'मेरी जो इच्छा थी, उसकी पूर्ति में तुम स्वयं ही अंतरीय हो उठी हो। मेरे मन में यह बात आई थी कि इस तरह नहीं रहूंगा मैं अब। तुम्हें जब पा गया हूं, तब खुलकर तुम्हारे साथ विवाह करूंगा और एक बार फिर गृहस्थ बन जाऊंगा। तुम्हारे माता-पिता को यहीं ले आऊंगा। उस अवस्था में संसार मुझे चाहे कुछ भी कहे, लेकिन मैं स्वयं सुखी होऊंगा।' इतना कहकर सुरेन्द्रनाथ ने एक लंबी सांस ली और बोले, 'वह आशा तो अब दुराशा है, परंतु क्या तुम अब घर चलोगी?'

मालती बोली, 'कहां?'

'वहीं, अपने घर में। जहां मैं रहता हूं।'

'यह क्या मेरा घर नहीं है?'

'तो क्या वहां न चलोगी?'

'नहीं।'

'ठीक यही बात मैं भी सोच रहा था।'

यह बात सच है कि दुख के दिन देर से कटते हैं, किंतु कट जाते हैं, वे बने नहीं रहते। माधव की मृत्यु हो जाने पर शुभदा के भी बहुत-से दिन कट गए। उन दिनों बरसात थी आकाश में मेघ थे, राह में कीचड़ थी, फिसलन थी—अब शरद ऋतु है। न वह बादल हैं और न कीचड़ की फिसलन, राह-घाट फिटफाट है। कभी-कभी दो-एक बादल के टुकड़े उद्देश्यहीन भाव से कहीं चले जा रहे हैं। उस समय भी प्रकृत्ति की आकृति म्लान थी, आंखों में आंसू थे—अब वह सब नहीं है। कभी-कभी आकृति म्लान जरूर हो जाती है, उसकी आंखों में दो-चार बूंद आंसू आ जाते हैं—पर क्षणभर के लिए। उन आंसुओं को पोंछकर वह हंसती है। अतीत की स्मृतियों से जुड़े दुखों के कारण। गगन के अनिर्देश कोने से 'गुड़गुड़' आवाज करती हुई रोती जरूर है, पर उसमें गंभीरता नहीं है। एक तरह का नीरस जीवन अच्छा नहीं लगता, इसे प्रकृति समझती है।

परिवर्तन के बिना संसार नहीं चलता, इस बात को सभी समझते हैं, समझते नहीं केवल शुभदा के सृष्टिकर्ता! जन्म से लेकर आज तक शुभदा इस बात को सोचा करती। इस बात को सोचने वाले दूसरे व्यक्ति थे श्री सदानंद चक्रवर्ती। पास-पड़ोस के दस आदमी देखा करते। शुभदा स्नान करके घाट से जा रही है। पानी से भरी हुई कलशी बगल में दबाए हुए धीरे-धीरे मंथर गति से कांपती चली जा रही है। घर का काम-काज कर रही है लेकिन शरीर दिन-दिन क्षीण होता जा रहा है। विषाद की रेखा एक क्षण के लिए भी उसके मुख पर से दूर नहीं होती।

मुहल्ले की जो बूढ़ी स्त्रियां थीं, वे शुभदा की दशा देखकर आह भरा करती थीं। कहतीं, 'यह छोकरी बचेगी नहीं।'

और जो उसकी हमजोली थीं, वे कहतीं, 'इस तरह का भाग्य शत्रु का भी न हो।'

पीठ पीछे शुभदा के संबंध में सभी लोग आह भरा करते थे, परंतु जब वह उपस्थित रहा करती, तब उस प्रकार की बात मुंह से निकालने में उन सबको लज्जा आया करती थी। उन सबको महसूस होता कि यह आह भरने की बात शुभदा की मानसिक अवस्था के लिए शुभ नहीं है, कोई और ही तरह का शब्द, जो संसार में नहीं है, जिसका प्रयोग कभी किसी ने किया नहीं, जिसका प्रयोग करने का आज तक कभी समय भी नहीं आया, वैसा कोई शब्द यदि मिल जाता तो वह प्रयोग करने के बहुत कुछ उपयुक्त हो जाता। इसलिए शुभदा के सामने कोई कुछ बोलता नहीं था, उसके आते ही सब लोग चुप हो जाया करते थे।

स्नान करते समय गंगा-तट पर उपद्रव करने का बच्चों को बचपन से ही अभ्यास हुआ करता है। वे प्रायः पानी के छींटे फेंका करते थे। उनके शोरगुल और हंसी-ठट्ठे के कारण घाट पर बैठकर शिवजी की पूजा करने वाली प्रौढ़ाएं मंत्र भूल जाया करती थी। इसी प्रकार के और भी कितने ही उत्पात वे किया करते थे, लेकिन जिस समय शुभदा बहुत ही शांत भाव से घाट पर पहुंचती और एक किनारे पर सबसे दूर अपनी कलशी रखकर नितांत ही अछूत, एक नीच जाति की स्त्री के समान पानी में प्रवेश करती, तब बालक-बालिकाओं के मन में भी यह बात आ जाया करती थी कि इस समय कोलाहल न करना चाहिए, पानी के छींटे न फेंकने चाहिए। ऐसे अवसर पर तो चुप होकर, बहुत ही शांत और सभ्य होकर माता या अन्य किसी आत्मीय का आंचल पकड़कर खड़ा रहना चाहिए। अंत में स्नान कर शुभदा चली जाती, तब फिर उन सबमें पहले का भाव आ जाता।

शुभदा हंसना भूल गई थी। दुख का भाव प्रकट करना भूल गई थी। रोने से उसे क्रोध आता, बीती हुई बातों पर विचार करने में लज्जा आती। आजकल घर बिलकुल सूना हो गया था। छलना ससुराल चली गई थी। रासमणि प्रायः पूरा दिन घर में आया ही नहीं करती थी और हाराण मुखर्जी! वे आजकल बहुत सीधे-सादे हो गए थे। दोनों समय वे घर आया करते, पहले की तरह कभी दो आना, कभी चार आना उधार मांग लेते और चले जाते। शुभदा दोपहर में रसोईघर के कच्चे फर्श पर आंचल बिछाकर जब लेटती, तब से बराबर पड़ी ही रहती। संध्या होने पर वह फिर उठती। तब घाट पर जाती, दीपक जलाती, भोजन बनाती। एक थाल लेकर स्वामी के लिए रख देती, तब सदानंद को भोजन कराती। फिर सवेरा होता, सांझ होती और रात होती।

प्रतिदिन की ही तरह शुभदा आज भी दोपहर के बाद रसोईघर में लेटी हुई थी। बाहर से पुरुष-कंठ से किसी ने पुकारा, 'मांजी!'

शुभदा के कानों में यह आवाज आई, लेकिन वह कुछ बोली नहीं। वह सोचने लगी—शायद कोई किसी को पुकार रहा है।

फिर वही आवाज आई, 'मांजी, क्या कोई घर में है?'

बाहर आकर शुभदा बोली, 'क्या है?'

'मैं डाकिया हूं। एक पत्र लाया हूं।'

शुभदा बड़े आश्चर्य में पड़ गई। यह सोचने लगी—चिट्ठी कौन लिखेगा? पास आकर बोली, 'लाओ।'

'ऐसे नहीं पाओगी मांजी। यह रजिस्ट्री चिट्ठी है। श्रीमती शुभदा देवी के नाम से आई है। उन्हें हस्ताक्षर करने होंगे।'

शुभदा की समझ में रजिस्ट्री का अर्थ ठीक-ठीक न आ सका। वह बोली, 'लाओ, मेरा ही नाम शुभदा है।'

डाकिया ने एक कागज निकाला और कहा, 'इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए।'

शुभदा बोली, 'लाओ, कलम दो।'

डाकिया बोला, 'मेरे पास नहीं है। क्या आपके घर कलम-दवात नहीं है?'

तभी शुभदा को याद आया कि छलना लिखती-पढ़ती रहती थी। उसके कमरे में जाकर खोजने लगी। दवात की स्याही सूख गई थी। उसमें पानी डालकर किसी तरह उसने हस्ताक्षर किए। इस कमरे में आते ही उसे माधव की याद हो आई। छलना और माधव इसी कमरे में बैठकर पढ़ते थे। ललना इनकी मास्टरनी थी। बहुत ही दिन हुए इस कमरे में नहीं आई थी। यह ललना का कमरा है। बचपन की पढ़ी पोथी, स्लेट, पहाड़े की पुस्तक, नरकट के कलम रखे हैं।

थोड़ी देर बाद शुभदा चुपचाप नीचे चली आई। हस्ताक्षर किया हुआ कागज उसने डाकिया को दिया।

डाकिया चिट्ठी देकर और रसीद लेकर चला गया।

भीतर जाकर उसने उसे खोलकर देखा। पचास रुपये के नोट उसमें रखे थे। शुभदा ने सोचा, यह पत्र और किसी का होगा। शायद डाकिए ने इसे मुझे भूल से दे दिया है। उसे बुलाने के लिए वह घर से निकली, लेकिन डाकिया तब तक दूर निकल गया था। वह यहां की बहू थी, इसलिए चिल्लाकर पुकार न सकी। इससे नोट लेकर उसे स्वभावतः भीतर लौट जाना पड़ा। वह सोचने लगी, जरा देर के बाद वह अपने-आप दौड़ा आएगा, परंतु ऐसा हुआ नहीं। वह न तो उस दिन आया, न दूसरे दिन आया, तब शुभदा ने यह बात सदानंद को बतलाई।

सदानंद ने लिफाफे को ध्यानपूर्वक देखा। बाद में वह बोला, 'भूल नहीं हुई। इस गांव में आपके नाम की कोई और स्त्री नहीं है। साफ लिखा हुआ है। हाराण मुखोपाध्याय महाशय का मकान। चिट्ठी आपकी ही है, परंतु कलकत्ता में आपका है कौन?'

'कलकत्ता में मेरा तो कोई नहीं है।'

'दूसरे दिन सदानंद डाकघर में गया। वहां पूछताछ करके उसने मालूम किया कि रुपये कलकत्ता से अघोरनाथ बसु वकील ने भिजवाए हैं। आश्चर्यचकित होकर शुभदा बोली, 'इस नाम के किसी भी व्यक्ति को मैं नहीं जानती।'

'तो फिर?'

शुभदा, 'तुम कोई उपाय करो।'

सदानंद हंसकर बोला, 'उपाय क्या करना है? रुपये लेने की इच्छा अगर न हो तो इन्हें लौटा दीजिए।'

शुभदा, 'भैया, जब साथ में लड़का-लड़की थीं और उन सबको भूखों मरना पड़ता था, तब भी शायद मैं ये रुपये न लेती। इस समय मुझे क्या दुख है, जो मैं लेने लगी? ये रुपये मेरे नहीं है, इन्हें तुम लौटा दो।'

कुछ सोच-विचार करने के बाद सदानंद ने कहा, 'मैं कलकत्ता जाकर पता लाऊंगा। ये रुपये अभी अपने पास रखिए। जब लौटाना होगा, तब लौटा दीजिएगा।'

शुभदा, 'तुम रुपये अपने साथ लेते जाओ। इसमें सोच-विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इन्हें आंख मूंदकर लौटा दो। मुमकिन है, उन्होंने और किसी के धोखे में इन्हें मेरे पास भेज दिया हो।'

'जो कुछ होगा, वहीं जाकर निश्चय करूंगा।'

शुभदा, 'वैसा ही करना।'

अपने ऑफिस के खूब लंबे-चौड़े कमरे में वकील बाबू अघोरनाथ बसु बैठे थे। सामने मेज की दूसरी बगल में नारायणपुर के बाबू सुरेन्द्रनाथ बैठे थे। मेज के ऊपर मुकदमे के ढेर-के-ढेर कागज-पत्र पड़े थे। एकाग्र मन से वे दोनों आदमी उन्हीं सबके मामले में सोच-विचार कर रहे थे।

कुछ देर बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा, 'अघोर बाबू, लगता है यह मुकदमा मैं जीत नहीं सकूंगा।'

अघोर, 'अभी कहा नहीं जा सकता।'

सुरेन्द्र, 'बिलकुल कहा जा सकता है। इसमें हार निश्चित है।'

अघोर, 'अभी ऊपर हाईकोर्ट भी है।'

सुरेन्द्र, 'है जरूर, पर वहां तक जाने की इच्छा नहीं है।'

अघोर, 'तो क्या मालपुर की जमीन छोड़ दी जाए?'

सुरेन्द्र, 'चारा क्या है?'

अघोर, 'आय बहुत घट जाएगी।'

सुरेन्द्र, 'इसमें कोई संदेह नहीं, आधी हो जाएगी।'

अघोर बाबू चुप होकर विचार करने लगे।

इसी समय एक नौकर ने आकर कहा, 'बाहर एक सज्जन खड़े हैं, वे आपसे मिलना चाहते हैं।'

नौकर के मुंह की ओर देखते हुए अघोर बाबू बोले, 'कौन है?'

'मैं पहचानता नहीं। देखने में कोई ब्राह्मण पंडित-से जान पड़ते हैं।'

'तो जाकर कह दो कि अभी हमें फुरसत नहीं है।'

नौकर कुछ देर बाद फिर लौटकर आया और बोला, 'वे जाना नहीं चाहते। उनका कहना है कि मैं बहुत आवश्यक काम से आया हूं।'

अघोर बाबू को और झुंझलाहट हुई। सुरेन्द्र बाबू के मुंह की ओर देखते हुए बोले, 'तो क्या इसी कमरे में बुलवा लूं?'

'हानि क्या है?'

नौकर को उन्होंने उसी आशय की आज्ञा दे दी। कुछ देर के बाद ही गौर वर्ण का एक खूब लंबा-तगड़ा ब्राह्मण आकर खड़ा हो गया। गले में उसके जनेऊ था। सिर पर चोटी थी, लेकिन माथे पर तिलक या चंदन का टीका आदि कुछ नहीं था। वह धोती पहने था और शरीर पर एक अधमैला दुपट्टा था। पैरों में जूते नहीं थे। घुटनों तक गर्द जमी हुई थी। वे दोनों ही आदमी उसे गौर से देखने लगे। अघोर बाबू ने कहा, 'बैठ जाइए।'

पास की चौकी पर बैठकर ब्राह्मण ने कहा, 'वकील साहब श्रीमान बाबू अघोरनाथ बसु महोदय से...।'

'मेरा ही नाम अघोरनाथ है।'

ब्राह्मण, 'तो आपसे ही मुझे काम है। मुझे जो कुछ कहना है वह क्या यहीं कहूं?'

अघोर बाबू, 'बिलकुल निश्चिंत होकर कहिए।'

अपने दुपट्टे के छोर से एक कागज निकालकर ब्राह्मण ने पूछा, 'ये रुपये शुभदा जी के पास क्या आपने भेजे थे?'

उसे गौर से देखकर अघोर बाबू ने कहा, 'हां, मैंने ही भेजे थे।'

विस्मित होकर ब्राह्मण ने कहा, 'हलुदपुर के श्री हाराण मुखोपाध्याय के पते पर? उन्हीं शुभदा देवी के नाम?'

अघोरनाथ, 'हां, उन्हीं शुभदा देवी के नाम।'

ब्राह्मण, 'किसलिए?'

अघोरनाथ, 'मालिक की आज्ञा से।'

ब्राह्मण, 'मालिक कौन है?'

सुरेन्द्र बाबू की ओर जरा-सा आंख का इशारा करके अघोर बाबू ने कहा, 'यह बतलाने की आज्ञा मुझे नहीं है।'

ब्राह्मण, 'तो ये रुपये आप वापस ले लीजिए। जिनके लिए आपने ये रुपये भेजे हैं, वे इन्हें ग्रहण न करेंगी। आपको जानती नहीं। शायद आपके मालिक को भी न पहचानती होंगी। उन्होंने यहां मुझे इसलिए भेजा है कि मैं आपका पता लगाकर यह नोट वापस कर दूं। हम लोग यह समझ रहे थे कि आपने भूल से किसी और के स्थान पर और का नाम लिख दिया था।'

अघोर बाबू हंसे! वे बोले, 'भूल वकील से नहीं होती।'

ब्राह्मण, 'न होती होगी, लेकिन इसे आप वापस लीजिए।'

अघोर बाबू, 'यह भी नहीं कर सकता। मालिक की आज्ञा के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता।'

तो उनसे पूछकर मुझे सूचना दीजिए। मैं और किसी दिन आकर दे जाऊंगा।' यह कहकर वह ब्राह्मण उठने लगा तो सुरेन्द्र बाबू ने छेड़कर उनसे पूछा, 'श्रीमान का शुभ नाम?'

'मेरा नाम है सदानंद चक्रवर्ती।'

सुरेन्द्रनाथ चकित हो उठे। कुछ देर तक मौन भाव से देखते रहने के बाद उन्होंने कहा, 'श्रीमान यहां कहां ठहरे हुए हैं?'

सदानंद, 'कहां ठहरूंगा, अभी कुछ निश्चय नहीं है। मैं सीधे यहीं चला आया हूं और शायद आज ही लौट जाऊंगा।'

सुरेन्द्रनाथ ने अघोर बाबू से कहा, 'अच्छा तो अब मैं चलता हूं, रात में फिर आऊंगा।' बाद में सदानंद को देखकर वे बोले, 'मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं?'

सदानंद, 'कहिए।'

सुरेन्द्रनाथ, 'यहां नहीं। मेरा मकान पास ही है। यदि आपत्ति न हो तो वहीं चलने की कृपा कीजिए। वहां विस्तारपूर्वक बातें होंगी।'

सदानंद को इसमें आपत्ति नहीं हुई। दोनों व्यक्ति आकर गाड़ी में बैठे। सदानंद ने कहा, 'इससे पहले भी कभी मैंने आपको देखा है, ऐसा मालूम नहीं पड़ता किंतु...किंतु आपने मुझे कभी देखा है क्या?'

सुरेन्द्रनाथ, 'जी नहीं, मैंने आपको कभी नहीं देखा, लेकिन मैं आपको जानता हूं।'

'तो आप किस प्रकार जानते हैं मुझे?' सदानंद ने आश्चर्य के साथ सुरेन्द्रनाथ की ओर देखा।

सुरेन्द्रनाथ, 'मकान पर चलिए, वहीं बतलाऊंगा।'

कुछ ही देर में गाड़ी मकान पर पहुंच गई।

सुरेन्द्रनाथ बाबू ने कहा, 'मैं भी ब्राह्मण हूं। भोजन का समय है। इससे यदि आप यहीं भोजन कर लें तो क्या कोई हर्ज है?'

'बिलकुल नहीं।'

अंत में दोनों आदमी भोजन करने बैठे, तब सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'शुभदा देवी तो निर्धन हैं न?'

सदानंद, 'निर्धन तो हैं, किंतु इसीलिए...।'

सुरेन्द्रनाथ, 'समझ गया इसलिए वे दान क्यों लेंगी, यही न?'

सदानंद, 'हां, शायद यही। विशेषत: ऐसी परिस्थिति में जब कि देने वाले का नाम तक न मालूम हो।'

सुरेन्द्रनाथ, 'लेकिन इसमें हर्ज ही क्या है? जिसने दान दिया है, वही कह रहा है कि मुझसे किसी तरह की भूल नहीं हुई। जान-बूझकर ही उसने दान दिया है। सुपात्र को ही दान दिया है।'

सदानंद, 'लेकिन प्रश्न यह है कि वह दान दिया किसने है?'

सुरेन्द्रनाथ, 'मान लीजिए कि अघोर बाबू ने ही यह दान दिया है।'

सदानंद, 'अघोर बाबू को क्या अधिकार है?'

कुछ संकुचित होकर सुरेन्द्रनाथ बाबू ने कहा, 'दान करने का तो सभी को अधिकार है।'

सदानंद, 'हो सकता है, किंतु क्या सभी आदमी वह दान ग्रहण कर सकते हैं?'

सुरेन्द्रनाथ, 'नहीं, सभी आदमी नहीं ग्रहण कर सकते, लेकिन जिसका निर्वाह नहीं होता वह?'

इस बात से सदानंद को गुस्सा आ गया। वह बोला, 'इस तरह की भिक्षा ग्रहण किए बिना भी शुभदा देवी का निर्वाह हो जाता है।'

सुरेन्द्रनाथ, 'आजकल शायद हो जाया करता होगा, लेकिन कुछ दिन पहले भी क्या हो जाया करता था?'

सदानंद, 'इस प्रश्न की आवश्यकता क्या है? इसके सिवा यह बात आपको मालूम कैसे हुई?'

सुरेन्द्रनाथ, 'मुझे बहुत-सी बातें मालूम हैं। हाराण बाबू नौकरी नहीं करते। इसके विपरीत वे अपव्यय ही किया करते हैं। उनमें कई प्रकार के दोष भी हैं। वे अपने परिवार का पालन नहीं करते। दूसरे की सहायता के बिना क्या उनके परिवार के लोगों का खाना-कपड़ा चल सकता है?'

सदानंद कुछ दुविधा में पड़ गया। तत्काल कोई उत्तर न दे सका।

सुरेन्द्रनाथ फिर बोले, 'हाराण बाबू आजकल क्या किया करते हैं?'

सदानंद, 'कुछ भी नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'मैं समझ गया। तो शायद आपकी ही सहायता से आजकल उनके घर का खर्च चल रहा है?'

सदानंद, 'भगवान की सहायता से चलता है। मैं तो स्वयं ही दरिद्र हूं, निर्धन हूं।'

सुरेन्द्रनाथ, 'क्या छलना का विवाह हो गया?'

सदानंद, 'हां हो गया।'

सुरेन्द्रनाथ, 'कहां? किसके साथ?'

सदानंद, 'हमारे गांव में ही। शारदाचरण राय के साथ।'

सुरेन्द्रनाथ, 'माधव कैसा है?'

सदानंद, 'अब वह जीवित नहीं है। उसे मरे हुए बहुत दिन हो गए।'

सुरेन्द्रनाथ, 'हाय! अच्छा, उनकी बड़ी लड़की आजकल कहां है?'

आश्चर्य में आकर सदानंद बोला, 'वह भी जीवित नहीं है अब?'

सुरेन्द्रनाथ, 'जीवित नहीं! मरी कैसे?'

सदानंद, 'गंगाजी में डूबकर उसने आत्महत्या कर ली थी।'

सुरेन्द्रनाथ, 'यह कैसे मालूम हुआ? क्या उसकी लाश मिली थी?'

सदानंद, 'लाश तो नहीं, मिली, लेकिन गंगा-तट पर उसकी साड़ी मिली थी। इसी से अनुमान होता है कि उसने आत्महत्या कर ली है?'

सुरेन्द्रनाथ, 'क्या सभी लोगों की यह निश्चित रूप से धारणा हो गई है? किसी को इसमें संदेह नहीं है?'

कुछ देर तक दोनों ही आदमी चुप रहे।

बाद में सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'अच्छा, मान लीजिए कि ये रुपये अगर उसी ने भेजे हों।'

सदानंद, 'वह कौन? ललना?'

सुरेन्द्रनाथ, 'ललना कौन? क्या उसका नाम ललना था?'

सदानंद, 'हां।'

सुरेन्द्रनाथ, 'मैं भूल गया था। ललना ही नाम था। ललना-छलना दो बहनें हैं, ठीक है न?'

सदानंद, 'हां।'

सुरेन्द्रनाथ, 'अच्छा, मान लीजिए उसी ने अगर ये रुपये भेजे हों?'

सदानंद, 'जो मर गई है उसने?'

सुरेन्द्रनाथ, 'हां उसी ने। गंगा-तट पर उसकी साड़ी मिली है, इसी से यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि वह मर गई है। यदि वह अभी तक जीवित हो और ये रुपये उसी ने भेजे हों?'

सदानंद बहुत विह्वल हो उठा। कुछ देर तक मुंह नीचा किए हुए वह सोचता रहा, बाद में बोला, 'नहीं, वह जीवित नहीं है। यदि वह जीवित होती तो पत्र अवश्य लिखती।'

सुरेन्द्रनाथ, 'पत्र लिखने में अगर उसे लज्जा आती हो?'

सदानंद, 'ललना को मैं जानता हूं। वह कभी इस प्रकार का काम नहीं कर सकती, जिसके कारण उसे लज्जा का सामना करना पड़े।'

सुरेन्द्रनाथ, 'वह मरी नहीं, जीवित है। उसी ने रुपये भेजे हैं और प्रतिमास भेजती रहेगी।'

अपना माथा दबाकर सदानंद ने कहा, 'आपका शुभ नाम?'

'सुरेन्द्रनाथ राय।'

'निवास?'

'नारायणपुर।'

सदानंद, 'हाराण बाबू के संबंध की इतनी बातें आपको कैसे मालूम हुईं?'

सुरेन्द्रनाथ, 'ललना ने बतलाई हैं।'

सदानंद, 'ललना ने नहीं बतलाई, वह तो मर गई है।'

सुरेन्द्रनाथ, 'वह मरी नहीं है। सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही है।'

'वह स्वर्ग में होगी।'

इतना कहकर सदानंद उठकर खड़ा हुआ और बाहर आकर तेजी से चला गया।

सुरेन्द्र बाबू चिल्ला उठे, 'थोड़ा-सा ठहरिए, मैं अभी आता हूं। ठहरिए—दो बातें और कहनी हैं।'

'ललना से अगर मुलाकात हो तो कहना, सदा भैया ने उसे बहुत-बहुत आशीर्वाद कहा है।'

'उसकी मां से कहिएगा...।'

'हां कह दूंगा, वह स्वर्ग चली गई है।'

सदानंद धीरे-धीरे चला गया। वह फिर नहीं लौटा...नहीं लौटा।

उसके चले जाने पर सुरेन्द्रनाथ बड़ी देर तक निस्तब्ध भाव से बैठे रहे। कुछ दिन पहले यदि इस तरह की घटना हुई होती तो शायद वे हंसते, लेकिन आज! आज उनकी आंखों में आंसू आ गए।

इतने में बाहर से नौकर ने पूछा, 'बाबू साहब, गाड़ी तैयार की जाए?'

'हां, तैयार करो।' छिः! छिः! इस प्रकार का भी जहर मनुष्य अपनी इच्छा से खाता है।

बहुत रात हो गई थी तो भी मालती अपने कमरे में बैठी हुई सीता-वनवास पढ़ रही थी। बहुत रो चुकी, बहुत आंखें पोंछ चुकी थी तो भी वह पढ़ रही थी। अहा, बहुत अच्छा मालूम पड़ रहा था, किसी तरह छोड़ने को जी नहीं चाहता था।

उसी समय बाहर द्वार के पास खड़े होकर मोटी आवाज से किसी ने पुकारा, 'ललना!'

मालती कांप उठी। हाथ में जो सीता-वनवास नामक पुस्तक थी, वह गिर पड़ी।

'ललना!'

मालती का अंतस्तल कांप उठा। वह क्षीण कंठ से बोली, 'कौन है?'

अब हंसते-हंसते भीतर प्रवेश करके सुरेन्द्रनाथ ने फिर पुकारा, 'ललना!'

'तुम हो?'

'हां, मैं हूं, लेकिन तुम्हारा भेद खुल गया। तुमने अपना असली नाम क्यों छिपाया था?'

'कहां?'

'फिर झूठ बोल रही हो?' उसके सूखे हुए अधर-पल्लव का चुंबन करके सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'मैं सब सुन आया हूं। पहले तुम ललना थी, अब मालती बन बैठी हो?'

'कहां सुना?'

'कलकत्ते में।'

'कलकत्ते में तो मुझे कोई नहीं जानता।'

सुरेन्द्रनाथ, 'यह तो ठीक है कि कलकत्ते में तुम्हें कोई नहीं जानता, लेकिन जो जानता है, वह हलुदपुर से आया था।'

मालती, 'कौन आया था?'

सुरेन्द्रनाथ, 'तुम्हारे सदा भाई आए थे, वही नोट लौटाने के लिए अघोर बाबू के पास।'

मालती, 'नोट लौटाने के लिए?'

सुरेन्द्रनाथ, 'हां।'

मालती, 'सदा भाई?'

सुरेन्द्रनाथ, 'हां, वही।'

मालती चुप बैठी रही।

कुछ देर के बाद सुरेन्द्रनाथ ने कहा, 'बोलती क्यों नहीं हो?'

मालती, 'कैसे हैं सदा भाई?'

सुरेन्द्रनाथ, 'अच्छी तरह हैं। तुम्हारी मां भी अच्छी तरह हैं। उनकी हालत अब बुरी नहीं है, इसलिए वे तुम्हारा दान ग्रहण न करेंगी। सदानंद बाबू ने उनकी दशा बदल दी है।'

मालती, 'मेरा नाम ललना है, यह बात कैसे मालूम हुई तुम्हें?'

सुरेन्द्रनाथ, 'सदानंद ने बतलाया—वे सब समझते हैं कि जल में डूबकर तुम ने आत्महत्या कर ली।'

मालती ने एक लंबी सांस ली।

सुरेन्द्रनाथ, 'लेकिन मैंने बतला दिया कि तुम जीवित हो और सुख से हो।'

मालती, 'यह क्यों बतलाया?'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो क्या मैं झूठ बोलता? तुम जीवित भी हो और जहां तक समझता हूं, सुखी भी हो। क्या सुख में नहीं हो तुम?'

मालती, 'हूं, लेकिन यह बात क्या सदा भाई ने पूछी थी?'

सुरेन्द्रनाथ, 'नहीं मैंने स्वेच्छा से बतलाया था और तुम्हारी मां से भी बतलाने को कह दिया है।'

मालती, 'मैंने ही रुपये भेजे थे, क्या यह बात भी कह दी तुमने?'

सुरेन्द्रनाथ, 'हां, कही तो है।'

मालती, 'तुम मुझे बदनाम कर आए हो। वह पागल आदमी है, यह बात गांव भर में कहता फिरेगा। उन लोगों के लिए जब मैं मर ही चुकी थी, तब झमेला खड़ा करने के लिए मुझे क्यों जिंदा कर दिया?'

दुखित भाव से सुरेन्द्रनाथ मुस्कराए। बाद में वे बोले, 'जिसको तुम पागल समझती हो, वस्तुतः वह तिल-भर भी पागल नहीं है। संभव है, किसी समय वह पागल रहा हो, लेकिन उसके वे दिन अब बीत चुके हैं। उसके द्वारा हलुदपुर में तुम कभी जीवित न हो सकोगी। तुमने जब अपने-आपको छिपा रखा है, तब वह कभी इस बात को प्रकट न करेगा।'

मालती, 'तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ?'

सुरेन्द्रनाथ, 'मैंने मालूम कर लिया। जब मैंने उससे तुम्हारी मां से यह कह देने को कहा कि तुम जीवित हो, तब वह बोला—ललना कभी लज्जाजनक काम न करेगी, वह कभी अपने-आपको छिपाएगी नहीं। वह अब जीवित नहीं है, वह मर गई है। मैंने उससे कहा—सदानंद बाबू जरा और ठहरिए, उसने कहा—मैं आज जा रहा हूं। उससे जब कभी मुलाकात हो, तब कहना कि तुम्हारे सदा भाई ने तुम्हें बहुत-बहुत अशीर्वाद कहा है। मालती मैंने यह अच्छी तरह अनुभव कर लिया है कि जो जहर मैंने खाया है, वही जहर उसने भी खाया है। मेरे लिए वह अमृत के रूप में बदल गया है और उसके लिए प्राण-संहारक सिद्ध हुआ है।'

मालती मुंह नीचा किए हुए बातें सुन रही थी। उसके मन में आ रहा था कि खूब जी भरकर रोऊं, लेकिन उसे रोने में लज्जा आ रही थी।

'एक शुभ समाचार और है। तुम्हारी छलना की शादी हो गई है।'

'कहां? किसके साथ?'

'उसी गांव में। कोई शारदाचरण हैं, उन्हीं के साथ।'

मालती समझ गई। उसने मन-ही-मन उसे हजार बार धन्यवाद दिया। वह बोली, 'अगर कोई विवाह करेगा तो वही करेगा, यह मैं कुछ-कुछ जानती थी।'

सुरेन्द्रनाथ, 'यह कैसे जानती रही हो तुम? क्या पहले से कुछ बातचीत चल रही थी?'

मालती, 'नहीं, बातचीत नहीं चल रही थी, लेकिन मैंने ही एक बार उससे अनुरोध किया था कि छलना के साथ तुम विवाह कर लो, लेकिन उस समय पिता के भय से मेरी बात मानने के लिए तैयार नहीं हुआ था। बाद में मुझे मरी समझकर संभव है, उसे दया आ गई हो और उसने विवाह कर लिया हो।'

सुरेन्द्रनाथ, 'पिता से उसे क्यों भय था?'

मालती, 'वे बहुत ही लालची आदमी थे। पुत्र के विवाह में कुछ धन प्राप्त करने की उनकी इच्छा थी।'

सुरेन्द्रनाथ, 'तो वह इच्छा परिवर्तित क्यों हो गई? यह तो निश्चत ही है कि तुम्हारे पिता धन दे नहीं सकते।'

मालती, 'संभव तो यही है।'

मालती ने मन-ही-मन कहा कि जिस तरह प्रेम के जाल में तुम फंस गए हो, ठीक वैसे ही शारदाचरण के प्रति उनके पिता के हृदय में जो प्रेम था, उसी के जाल में वे फंस गए होंगे, लेकिन इस बात को उसने मन में ही रखा, प्रकट नहीं होने दिया।

मालती के दिमाग में आज ऐसे बहुत-से विषय थे, जिन पर उसे विचार करना था, लेकिन उसे माधव की बात याद हो आई, फिर बोली, 'और माधव? क्या उसका हाल पूछा था तुमने?'

'वह अच्छी तरह है।'

मालती ने एक लंबी सांस ली। उस रात को बड़ी देर तक वह जागती रही। कितनी बातों की उसने उधेड़-बुन की। उसने सोचा, 'सदानंद आया था। उसने रुपये वापस करने की कोशिश की। अब रुपयों की जरूरत नहीं है। मैं भी अब न भेजा करूंगी। उसके बाद मन में आया—शारदा का पहले उसने सौ बार धन्यवाद किया था, अब हजार-हजार बार धन्यवाद किया।' मन-ही-मन वह बोली—तुम मेरे अपराधों पर ध्यान न देना। उस समय मैं तुम्हें पहचान न पाई। कदाचित अब कभी मैं देख न पाऊंगी, लेकिन जब तक जीतिव रहूंगी, तब तक तुम्हारी दया भूलूंगी नहीं। हृदय में सदा ही तुम्हारे प्रति भक्ति की है, अब भी करती रहूंगी।

मालती ने खोजकर देखा, शारदा की अस्पष्ट छाया अब भी उसके हृदय में पूर्णरूप से विलीन नहीं हुई थी। आज वह और भी स्पष्ट हो उठी। मन-ही-मन उसने कहा—स्वामी कहते थे, वह सदानंद था, लेकिन था वह शारदा!

·

इधर सदानंद लौट आया। रास्ते में वह बहुत ही अन्यमनस्क होकर चल रहा था। कहीं बाहर से आते देखकर किसी ने उसे पुकारकर पूछा, 'भाई साहब किधर से? कहां गए थे?'

सदानंद खड़ा हो गया। प्रश्नकर्ता के मुंह की तरफ देखकर वह बोला, 'घर जा रहा हूं।'

इतने में उस आदमी के झुण्ड की एक गाय एक आदमी के बैंगन के खेत की तरफ बढ़ने लगी। गालियां देते-देते वह गाय के पीछे दौड़ा। इधर सदानंद ने भी अपना रास्ता लिया। बाद में गाय को लौटाकर जब उसने फिर झुण्ड में कर दिया, तब वह कहने लगा, 'इस पागल का मन आज वैसा प्रसन्न नहीं मालूम पड़ता, लेकिन आदमी मजे का है।'

रामू मामा नंद हलवाई की दुकान वाले घर की चौखट में पीठ लगाए हुए तंबाकू पी रहे थे। पैरों में धूल लपेटे हुए सदानंद को कहीं से आते देखकर वे बोले, 'ओ सदानंद, चार-पांच दिन से मैंने तुम्हें देखा नहीं, तुम कहां थे?'

उनकी तरफ मुंह फेरे बिना ही पीछे की तरफ उंगली से इशारा करके सदानंद ने कहा, 'वहां।'

'कहां? ब्राह्मणपाड़ा में?'

'हूं।'

'इतने दिन तक!'

'हूं।'

सदानंद तेजी से पैर बढ़ाता हुआ चला गया।

रामू मामा भी झुंझलाकर बोले, 'धत्, क्या कहता है कुछ समझ में नहीं आता।'

रामू मामा की यह बात सदानंद के कानों तक पहुंच गई थी या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता, किंतु वह सीधे शुभदा के पास जाकर उपस्थित हुआ। उसके सामने नोट रखकर वह बोला, 'कोई पता नहीं चला।'

शुभदा बोली, 'तो बेकार तुम्हें इतना कष्ट हुआ?'

सदानंद चुप रहा।

शुभदा फिर बोली, 'तो फिर इन रुपयों का क्या किया जाए?'

सदानंद, 'जो आपकी इच्छा हो। अगर आप चाहें तो इन रुपयों को फेंक दें और जी चाहे तो रख लें। जब कभी पता चलेगा, वापस कर दीजिएगा।'

विवश होकर शुभदा ने उन नोटों को संदूक में रख लिया।

सदानंद ने पूछा, 'हाराण काका कहां हैं?'

बगल वाले कमरे की तरफ इशारा करके वह बोली, 'लेटे हैं।'

'कहीं गए नहीं?'

'गए थे, अभी-अभी लौटकर आए हैं।'

उस दिन शाम को बड़े जोर से आंधी आई। पानी भी बरस गया। शुभदा ने

सवेरे-सवेरे भोजन बना लिया। भोजन-वगैरह से निवृत्त होकर हाराण बाबू ने कहा, 'कुछ पैसे दो।'

'आज अब कहीं न जाओ। आसमान पर बादल घिरे हुए हैं। रात में अगर कहीं पानी बरसने लगा तो... ?'

'तो होगा क्या ?'

'तो लौटकर आने में कष्ट होगा।'

'कुछ भी कष्ट न होगा। आज कई काम हैं। जाना ही पड़ेगा।'

काम जो थे, वे शुभदा को मालूम थे। तो भी वह बोली, 'आज एकादशी है। दीदी की तबीयत खराब है। वे बेहोश पड़ी हैं।'

हाराण बाबू ने ये बातें नहीं सुनीं। टेंट में पैसे खोंसकर, सिर पर छाता लगाकर, हाथ में स्लीपर लेकर और धोती की लांग खोंसकर पानी और कीचड़ में निकल पड़े। एक लंबी सांस लेकर शुभदा बोली, 'स्वामी!'

आखिर में शुभदा का अनुमान ठीक ही निकला। पहर-भर रात न बीत पाई थी कि फिर पानी बरसने लगा। आजकल शुभदा को प्रतिदिन ही रात में थोड़ा-थोड़ा बुखार हो आया करता था, लेकिन यह बात किसी से कहना तो दूर रहा, इसे वह एक तरह से अपने-आपको भी नहीं जानने देती थी। रात में उसे ठंड देकर बुखार आता, तभी उसे याद हो आता।

पानी बरसने के साथ-ही-साथ शुभदा को जाड़ा लगने लगा। हाथ के पास जो भी वस्तु मिली, उसको खींचकर वह ओढ़ने लगी। काफी रात गए उसे कुछ-कुछ नींद आई। उस वक्त भी पानी बरस रहा था, लेकिन वह बहुत कुछ कम हो गया था। शुभदा का शरीर तो बहुत शिथिल हो ही गया था, साथ ही उसे कुछ आलस्य भी आ गया था। इसी बीच में उसे ऐसा जान पड़ा, मानो कोई दरवाजा ठेलकर सांकल को खोलने का प्रयत्न कर रहा है। उसके बाद ही खट से द्वार खुल गया। कमरे के भीतर चिराग जल रहा था। शुभदा की आंख खुल गई थी। उसने ताककर देखा तो एक आदमी कमरे में घुस रहा था। हाथ में वह बांस का लट्ठ लिए हुए था, मुंह तथा शरीर के अन्य समस्त अंगों में स्याही पोते हुए था और ऊपर से जरा-जरा दूर पर सफेद टिप्पे लगाए हुए था।

कांपती हुई शुभदा चिल्ला पड़ी, 'कौन है ? कौन भीतर घुस रहा है ?'

'चुप!'

इस वज्र के समान गंभीर स्वर ने शुभदा के हृदय में इतना अधिक भय पैदा कर दिया कि उसे आंख खोलने की भी हिम्मत न हुई।

लट्ठ से दो बार ठक-ठक करने के बाद वह आदमी शय्या के पास आ गया और बोला, 'अपने बक्स की कुंजी दो।' उसकी आवाज बहुत मोटी और भारी

थी। एकाएक सुनने पर ऐसा जान पड़ता था, मानो यह आदमी प्रयत्न करके भारी आवाज से बोल रहा है। हारान बाबू बोले

शुभदा कुछ बोली नहीं।

उस आदमी ने फिर एक बार कमरे के फर्श पर लट्ठ से खट की आवाज करके कहा, 'कुंजी लाओ नहीं तो गला घोंटकर मार डालूंगा।'

अब शुभदा उठकर बैठ गई। तकिए के नीचे से कुंजियों का गुच्छा निकालकर उसने फेंक दिया। बाद में वह बोली, 'मेरे बड़े बक्स में दाहिनी तरफ के खाने में पचास रुपये के नोट हैं, वही लेना। बाईं तरफ विश्वनाथ जी का प्रसाद रखा हुआ है, उसे न छुना।' जिस प्रकार शांत भाव से उसने ये सब बातें मुंह से निकालीं, उससे यह नहीं जान पड़ रहा था कि उसे तनिक भी डर है।

चूना और स्याही शरीर पर पोते हुए जो आदमी आया था, उसने बड़ा बक्स खोला। बाईं तरफ उसने बिलकुल हाथ ही नहीं लगाया। दाहिनी तरफ के खाने से नोट निकालकर उन्हें टेंट में खोंस लिया। शुभदा के कहने के अनुसार उसने जिस प्रकार स्वच्छंद रूप से बक्स खोला और दहिनी तरफ का खाना खोज लिया, उससे मालूम हो रहा था कि वह सब उसका समझा-बूझा है।

वह आदमी जब जाने लगा, तब एक लंबी सांस लेकर शुभदा ने आहिस्ता से कहा, 'शायद नोट पर नाम लिखा हुआ है, नंबर भी पड़ा हुआ है, इसे जरा सावधानी से खर्च करना।'

8840759626

9005587454

उसी दिन हारान बाबू हमेशा के लिए पलायन कर गये कभी नहीं लौटे और सदानन्द योगी बन गये तथा बुआ जी का भी देहावसान हो गया था शुभदा उसके भी अच्छे दिन आ गये थे वह अपनी बेटी ललना के घर सुखपूर्वक व्यतीत करने लगी ॥